गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

सातवाँ अंक-2015

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल-132001, हरियाणा

गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

सातवाँ अंक-2015

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल-132001, हरियाणा

अनुज कुमार, राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, जे के पाण्डेय, अनिता मीणा एवं राजेन्द्र कुमार (2015) गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल – 132001, पृष्ठ सं.–124

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

सातवाँ अंक

सम्पादक मंडल :
मुख्य सम्पादक : अनुज कुमार
सम्पादक : राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, जे के पाण्डेय, अनिता मीणा एवं राजेन्द्र कुमार

संरक्षक एवं प्रकाशक : **आर. के. गुप्ता**
निदेशक
भा. कृ. अनु. प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
करनाल – 132001, हरियाणा
दूरभाष : 0184–2267490 फैक्स : 0184–2267390
वेबसाइट : *www.dwr.in*

प्रतियाँ : 500

छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

मुद्रण : **श्रीकोशी रैप्रोग्राफिक्स**
121, इंडस्ट्रियल एरिया, एच.एस.आई.आई.डी.सी.
सैक्टर – 3, करनाल – 132001
दूरभाष : 9812053552, 8607654545
ई–मेल : *shrikoshi@gmail.com*

प्राक्कथन

गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से वर्ष 2014–15 को अच्छा नहीं माना जा सकता क्योंकि 2013–14 के दौरान अप्रत्याशित गेहूँ उत्पादन (95.85 मिलियन टन) के बाद अचानक 86.53 मि.टन के स्तर पर पहुंचना अर्थात् 9.32 मिलियन टन (10.19%) की गिरावट आश्चर्यजनक थी। इसकी मुख्य वजह कटाई से ठीक पहले आंधी, तूफान, ओलावृष्टि व अत्यधिक वर्षा थी। यही कारण था कि किसानों की आमदनी काफी कम हुई तथा गेहूँ की गुणवत्ता भी प्रभावित हुई। ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र व राज्य कृषि विभाग ने कई कदम उठाएं हैं तथा किसानों के बीच जागरुकता अभियान के माध्यम से कई उपाय सुझाए गए हैं। जिन खेतों में किसान भूमि समतलीकरण के लिए लेजर लैंड लेवलर का उपयोग करने जा रहे हैं उनको 1 से 1.5 प्रतिशत ढलान रखने की सलाह दी गई है ताकि वर्षा के अत्यधिक जल का निकास हो सके। संरक्षण कृषि के विकल्पों जैसे जीरो टिलेज से बुआई के लिए टर्बो/हैप्पी सीडर या जीरो टिल–ड्रिल का अधिकाधिक प्रयोग करने पर बल दिए जाने की आवश्यकता है। जीरो टिलेज वाले खेतों में विगत् वर्ष अधिक वर्षा की स्थिति में नगण्य जल–जमाव देखने को मिला। अतः ऐसी तकनीक को किसानों के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए दूर संचार माध्यमों का समुचित उपयोग करने की आवश्यकता है, साथ ही इन मशीनों को किसानों के खेतों पर प्रदर्शनी के माध्यम से पहुंचाना भी उतना ही आवश्यक है।

वर्ष 2015 में हमारे संस्थान ने **''मेरा गाँव मेरा गौरव''** योजना शुरु की है। इस योजना के माध्यम से हरियाणा, उत्तर प्रदेश व हिमाचल प्रदेश के 56 गाँवों के किसान लाभान्वित हो रहे हैं। हाल ही में भारत सरकार द्वारा प्रारंभ की गई **''प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना''** एक अच्छी पहल है जिससे किसान को होने वाले नुकसान की भरपाई काफी हद तक की जा सकती है। सूखा प्रभावित व वर्षा आधारित क्षेत्रों में **''प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना''** का लाभ किसान उठा सकते हैं इससे उनकी फसलों का उत्पादन बढ़ेगा, जोखिम कम होगा और आमदनी भी अच्छी होगी।

''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा'' के सातवें अंक में कृषि संबंधित बहुउपयोगी लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं जिससे सभी वर्ग के पाठक लाभान्वित होंगे।

इस पत्रिका के अनवरत प्रकाशन व गुणवत्ता बनाए रखने के लिए मैं सभी लेखकगणों एवं संपादक मंडल के सभी सदस्यों को उनके इस रचनात्मक प्रयास के लिए धन्यवाद देता हूँ साथ ही इस पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

आर. के. गुप्ता

डॉ. आर. के. गुप्ता
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

विषय सूची

1	**गेहूँ में उद्यमता विकास** अनुज कुमार, स्नेह नरवाल, बी एस त्यागी, आर के गुप्ता एवं जे के पाण्डेय	1
2	**गेहूँ के रतुआ रोग : पहचान एवं नियंत्रण** प्रमोद प्रसाद, हनीफ खान, ओ पी गंगवार एवं किरण शर्मा	7
3	**गेहूँ का पर्ण झुलसा रोग एवं उसका समेकित प्रबंधन – एक अवलोकन** आशीष ओझा, ज्ञानेन्द्र सिंह, भूदेव सिंह त्यागी, श्रवण कुमार एवं प्रदीप कुमार	10
4	**चूर्णिल आसिता रोग गेहूँ अनुसंधान की एक नई उभरती चुनौती** विजय राणा, सुधीर राणा, अश्वनी बसन्दराय, डेज़ी बसन्दराय एवं संदीप मनूजा	15
5	**विभिन्न फसल रोगों में 'नीम उत्पाद' की महत्वपूर्ण भूमिका** पंकज कुमार सिंह	17
6	**गेहूँ के प्रमुख कीट एवं रोग का प्रबंधन** सुनील कुमार मण्डल	19
7	**सूत्रकृमियों द्वारा उत्पन्न खाद्यान्न फसलों में प्रमुख रोग एवं प्रबंधन** एस पी विश्नाई	23
8	**रबी फसलों में खरपतवार प्रबन्धन** दिनेश जीनगर, हरि सिंह, सीमा सेपट एवं नवल सपेट	30
9	**खरपतवार एवं उनका प्रबंधन** सचिन मलिक, विकास जून, ममता काजला, राहुल कुमार, अंकुर चौधरी, गिरीश पाण्डेय, आर के सिंह, आर एस छोकर एवं आर के शर्मा	33
10	**कृषकों को लाभान्वित करती जैविक खेती** दीपक कुमार, देवमणि बिंद, जयदेव कुमार, सुरेश कुमार एवं एस के सिंह	37
11	**आधुनिक युग में जैव उर्वरक व कार्बनिक खेती की आवश्यकता व उपयोगिता** विकास जून, आर एस छोकर, एस सी गिल, आर के सिंह, सचिन मलिक, ममता काजला, अंकुर चौधरी एवं आर के शर्मा	39
12	**गेहूँ की उन्नत खेती एवं उत्पादन प्रौद्योगिकी** विनय कुमार यादव, ममता काजला, गीता, एच एम मामृथा, कर्णम वेंकटेश एवं अनीता मीणा	44
13	**उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में जौ की उन्नत खेती** अरूण भट्ट, भगत सिंह एवं राजेश कुमार प्रसाद	47
14	**जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से कृषि को बचाने की चुनौतियाँ** विवेकानन्द पी राव, काशीनाथ तिवारी, विकास गुप्ता, सतीश कुमार एवं चन्द्रनाथ मिश्र	50
15	**कृषि में सूखे का प्रभाव व उसका प्रबंधन** गीता देवी, एम एम मामृथा, विनय यादव, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, बी एस त्यागी एवं प्रदीप शर्मा	53
16	**पूर्वी उत्तर प्रदेश में देरी से गेहूँ की बुवाई के लिए शून्य जुताई तकनीक का महत्त्व** अजीत सिंह, अमित कुमार, श्रवण कुमार, अनुज कुमार, आशीष ओझा, जयदेव कुमार एवं प्रदीप कुमार	55
17	**सुरक्षित अनाज भण्डारण** शकुन्तला गुप्ता	58
18	**दूसरी हरित क्रान्ति : एक चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व** लालचन्द प्रसाद एवं अनंत मडकेमोहेकर	60
19	**किसानों के समग्र विकास के लिए भारतीय गेहूँ एंव जौ अनुसंधान संस्थान की नवीनतम प्रौद्योगिकियाँ** देवमणि बिन्द, दीपक कुमार, जयदेव कुमार, सुरेश कुमार एवं संजय कुमार सिंह	64
20	**युवाओं के लिए खेती में आजीविका के अवसर एवं संभावनायें** आत्मानंद त्रिपाठी, मुकेश कुमार, सुनीति कुमार झा एवं जे के पाण्डेय	68

21 **विषाक्त होते खाद्य पदार्थ** 70
जीतेन्द्र सिंह, कर्णम वेंकटेश, अनिता मीणा एवं मामृथा एच एम

22 **जैव सूचना विज्ञान का कृषि के क्षेत्र में योगदान** 72
जीतेन्द्र सिंह, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, कर्णम वेंकटेश, मामृथा एच एम, अनिता मीणा एवं अनुज कुमार

23 **कृषि उत्पादों की जीवनावधि (शेल्फ) तथा गुणवत्ता बढ़ाने के विभिन्न तरीके** 74
रिंकी, आशुतोष श्रीवास्तव, काशीनाथ तिवारी एवं संदीप दुहन

24 **न्यूट्रीजीनोमिक्स** 77
भारती अनेजा, गिरीश चन्द्र पाण्डेय एवं रतन तिवारी

25 **आधुनिक परिवेश में कृषि क्षेत्र में नैनोटेक्नोलोजी का भविष्य** 79
आशुतोष श्रीवास्तव, रिंकी एवं काशीनाथ तिवारी

26 **जी एम फसलें** 82
निशा वालिया, मनोज, गिरीश चन्द्र पाण्डेय एवं रतन तिवारी

27 **जौ के विभिन्न स्वास्थ लाभ उपयोगिता एवं उपलब्धता** 83
कीर्तिमणि त्रिपाठी, थीरू सेलवन एवं सुखदेव सिंह

28 **हर्बल हाइड्रोजल लेपित बीज, गेहूँ व अन्य फसलों में सिंचाई पानी व दूसरे संसाधनों के बचत की नई तकनीक** 87
वीरेंद्र सिंह लाठर, अशोक सिवाच, अमित कुमार एवं धीरेन्दर चौधरी

29 **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन में गेहूँ का उपयोग** 89
अनिता मीणा एवं अजय वर्मा

विविध

30 **प्याज बीज उत्पादन प्रौद्योगिकी** 91
धिरेन्द्र चौधरी, सुरेश चंद राणा, विनोद कुमार पंडिता एवं पी बी सिंह

31 **भिण्डी बीज उत्पादन प्रौद्योगिकी** 95
भाग चंद, वी के पंडिता एवं एस सी राणा

32 **मुर्गीपालन के जरिए कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त आय** 99
राकेश कुमार, अमनदीप कौर, रेखा, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, कर्णम वेंकटेश, मामृथा एच एम एवं अनिता मीणा

33 **खेती–किसानी में मेरे अनुभव का सफर** 101
महेन्द्र सिंह कटियार

34 **मेरा खेत– मेरा अनुभव** 103
आनंद कुमार ठाकुर

राजभाषा खण्ड

35 **हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट** 105

भाव बदलने लगे हैं 108
रामप्रीत आनंद (एम.जे.)

बेटी की जीवन कथा 109
नीशू राघव

सब्र वतन का 110
रामप्रीत आनंद (एम.जे.)

हरियाली 111
भारती अनेजा

गेहूँ में सेहूँ की पहचान 112
पंकज कुमार सिंह

प्यार का बुखार 113
दीपेन्द्र कुमार

गेहूँ में उद्यमता विकास

अनुज कुमार, स्नेह नरवाल, बी एस त्यागी, आर के गुप्ता एवं जे के पाण्डेय

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ आज भी देश की लगभग 56% आबादी अपने जीवनयापन के लिए कृषि पर निर्भर है। अनेक सर्वेक्षणों में यह पाया गया है यदि उनके जीविकोपार्जन का अन्य श्रोत उपलब्ध हो तो 40% किसान कृषि कार्य छोड़ देंगे। ऐसी स्थिति में किसानों को कृषि से जोड़े रखना एक चुनौती है। लगातार बढ़ते कृषि आदानों की कीमतों की वजह से खेती में लागत बढ़ी है तथा उसके अनुरुप आमदनी नहीं बढ़ पाई है। एक तरफ किसानों का कृषि से मुख मोड़ना और दूसरी तरफ कृषि में घटती हुई आमदनी इस समय सबसे बड़ी चुनौती बनती जा रही है।

चित्र 1

आज देश की आबादी लगातार बढ़ती जा रही है और यह 125 करोड़ तक पहुंच गई है। इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए भोजन मुहैया कराना सरकार के समक्ष एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। हाल ही में सरकार द्वारा घोषित खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत अनाज उपलब्ध कराना भी सरकार की नैतिक जिम्मेवारी बन गई है। अतः किसानों को कृषि व्यवसाय से जोड़े रखना तथा प्रति हैक्टर अधिक आमदनी सुनिश्चित करना आज की आवश्यकता है। युवाओं की कृषि कार्यों में घटती रूचि के परिपेक्ष्य में उद्यमता विकास एक सशक्त विकल्प साबित हो सकता है।

उद्यमता विकास की तीन अवस्थाएं हैं;

1 उद्यम के लिए उत्प्रेरण
2 उद्यम में सहयोग
3 उद्यम का संपोषण

I. उद्यम के लिए उत्प्रेरण

यह बहुत जरुरी है कि किसी भी व्यक्ति को सर्वप्रथम किसी कार्य विशेष के प्रति उत्प्रेरित किया जाये, क्योंकि उद्यमता विकास की यह पहली सीढी है। अगर किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय के प्रति प्रेरणा है तो निश्चित तौर पर वह इस दिशा में प्रयास करेगा/अग्रसर रहेगा। अतः उसे उत्पादन, परिस्करण, मूल्य संवर्धन और विपणन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी और प्रशिक्षण शुरु में आवश्यक है। विगत् एक वर्ष से सरकार द्वारा भी कौशल विकास द्वारा उद्यमता के नए आयाम स्थापित करने के लिए कई संस्थाएं खोली जा रही हैं जो इस दिशा में नवयुवकों/नवयुवतियों /ग्रामीण महिलाओं आदि को सही मार्गदर्शन दे सकें। आज आवश्यकता है इच्छुक व्यक्तियों को गेहूँ आधारित उत्पादन बनाने के विषय में शिक्षित करने की तथा ये उत्पाद कैसे बनाए जाए इस पर प्रशिक्षण देने की। इस क्रम में उनको शिक्षित करना जरुरी है कि किस प्रकार के गेहूँ से कौन सा उत्पाद अच्छा बनता है तथा उसको बनाने के मानदंड क्या हैं।

तालिका–1. : गेहूँ से बनने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थ

गेहूँ के प्रकार	उत्पादन प्रतिशत	गेहूँ से बनने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थ
सामान्य गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम)	95%	चपाती/रोटी/फुलका, तन्दूरी रोटी, रूमाली रोटी, नान, कुलचा, भटूरा, पिज्जा, पूरी, कचौरी, समोसा, पाव, रस्क, सेविया, मठ्ठी, नमक पारा, पापड़, पराठा, पायसम, जलेबी, बालूसाई, घेवर, सत्तू, नूडल्स, लड्डू, ब्रेड, बिस्कुट, केक, बन्स और पेस्ट्री इत्यादि।
कठिया गेहूँ (ट्रिटिकम ड्यूरम)	04%	चपाती, पराठा, धेबरा, भाखरी, पौरीज, रवा ईडली, पट्टू, खिचड़ी, दलिया और पास्ता पदार्थ जैसे मेक्रोनी, कॉसकस, बुलगुर, फ्केकेट, स्पैघटी और वरमीसेली।
खपली गेहूँ (ट्रिटिकम डायकोकम)	01%	कुलाडी के लड्डू, गोदी हग्गी, स्वीट पैन केक और पास्ता ईत्यादि ।

i. उद्यमता के अवसर मुहैया करना

प्रसंस्करण आंकड़े बताते हैं कि किसानों को उपभोक्ता द्वारा अदा किए गए एक रुपये का सिर्फ 31 पैसा प्राप्त होता है। कुछ अन्य स्त्रोतों ने तो इसे महज 19 पैसा ही बताया है। अतः किसान के हिस्सेदारी को बढ़ाने के लिए यह जरुरी है कि कुछ किसान या उसके परिवार के सदस्य गेहूँ आधारित उत्पादन बनाने वाली छोटी या बड़ी इकाईयाँ स्थापित करें। ऐसा देखा गया है कि गेहूँ का अधिकतम उत्पादन उत्तरी राज्यों में होता है जबकि इसके उत्पादन बनाने वाली अधिकांश कंपनियां दक्षिणी भारत में हैं। अतः उत्तरी भारत में इस पर उद्यमता विकास कर अधिक से अधिक नवयुवकों को जोड़ने की अपार संभावनाएं हैं। किसानों की सहकारी समितियां, उत्पादन समितियां, स्वयं सहायता समूह आदि को इसमें सशक्त भूमिका अदा कर सकते हैं। कई स्वयं सहायता समूह दलिया, सूजी, पास्ता, सेवई आदि पर लघु उद्योग शुरु कर सकती हैं और आय के नए विकल्प खोले जा सकते हैं। ऐसे समूहों की पहचान कर इस दिशा में काम करने की आवश्यकता है।

गेहूँ एक ऐसी फसल है जिसकी खेती देश के लगभग सभी हिस्सों में की जाती है। हाल के वर्षों में जीवन स्तर में सुधार व खान–पान की आदतों में बदलाव की वजह से मूल्य संवर्धित गेहूँ आधारित कई उत्पादों की मांग बढ़ी है। पारंपरिक तौर पर गेहूँ से चपाती, पूरी, परौठा आदि उत्पाद बनाने के लिए उपयोग में लाए जाते रहे हैं परन्तु आज दलिया, सूजी, सेवई, नूडल, मैक्रोनी, पास्ता पदार्थ जैसे; कॉसकस, बुलगुर, फ्रेकेट तथा सेमोलिना उत्पाद फाफी तेजी से प्रचलित हो रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी इन उत्पादों को काफी पंसद कर रही है। गेहूँ से बनने वाले अन्य उत्पादों में बिस्कुट, ब्रेड, केक तथा अन्य बेकरी उत्पादों की मांग में भी काफी वृद्वि हुई है जिसकी वजह से उद्यमता विकास के कई नए विकल्प उभरे हैं। इसके अतिरिक्त मल्टीग्रेन आटा, आटा, मैदा आदि का बाजार भी काफी विस्तृत हुआ है। मूल्य संवर्धित गेहूँ आधारित उत्पादों के बढ़ते व्यापार व बाजार को देखते हुए उद्यमता विकास के कई विकल्प आज की युवा पीढ़ी व किसानों के समक्ष उपलब्ध है। कोई भी इन विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चयन कर छोटे, मध्यम या बड़े आकार के ईकाई की स्थापना कर व्यवसाय की शुरुआत कर सकता है। परंतु इसके लिए भारत में उगाए जाने वाले गेहूँ के प्रकार, गुणवत्ता के मापदंड, उपयुक्त उत्पादन क्षेत्र व प्रजातियां आदि का समुचित ज्ञान अति आवश्यक है।

चित्र 2

चित्र 3

चित्र 4

चित्र 5

चित्र 6

तालिका–2 : गेहूँ के विभिन्न उत्पादों के लिए दानों की गुणवत्ता के मापदंड

उत्पाद	दाने की संरचना	प्रोटीन की मात्रा	ग्लूटेन स्ट्रेन्थ
सामान्य गेहूँ			
चपाती	सख्त	10–13%	मध्यम एवं फैलने वाली
बिस्कुट, केक	मुलायम	8–10%	कमजोर एवं फैलने वाली
ब्रेड	सख्त	>13%	मजबूत एवं फैलने वाली
सफेद नूडल	मुलायम	10–12%	मध्यम
पीली नूडल	सख्त	10–13%	मध्यम
कठिया गेहूँ			
पास्ता	अधिक सख्त	>13%	मजबूत

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 85.5–86.0 मि. टन गेहूँ की आवश्यकता बीज, खाद्यान्न, दाना व निर्यात के लिए होती है जिसमें से लगभग 4.25–4.5 मि. टन बीज, 3.5–4.0 मि. टन दाना, 68–69 मि. टन खाद्यान्न (गेहूँ एवं उत्पाद) तथा कुछ निर्यात में उपयोग किया जाता है। भारत में उगाए जाने वाले गेहूँ का अधिकांश उपयोग (65–66 मि.टन) आटा के रुप में किया जाता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्था के अनुमान के मुताबिक वर्तमान में 68–69 मिलियन टन गेहूँ एवं उसके बने उत्पादों की वार्षिक खपत है। कुल गेहूँ की खपत का 68% खपत ग्रामीण क्षेत्रों में होता है। एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में गेहूँ एवं उसके उत्पादों की खपत में जहां 1.5% की वृद्धि दर्ज की गई है वही शहरी क्षेत्रों में 7 प्रतिशत प्रति व्यक्ति खपत में कमी देखी गई।

एनएसएसओ के वर्ष 2009–10 की गणना के अनुसार राजस्थान में प्रति व्यक्ति गेहूँ एवं गेहूँ उत्पादों की खपत पूरे देश में सर्वाधिक थी उसके बाद हरियाणा, पंजाब, मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश आदि राज्य थे। आटा के रुप में गेहूँ का सर्वाधिक उपयोग हमारे देश में होता है। प्रति व्यक्ति गेहूँ एवं गेहूँ उत्पाद की खपत का 95% हिस्सा आटा के रुप में होता है। गेहूँ के आटा का निर्यात भी भारत द्वारा किया जाता है। वर्ष 2014 के दौरान 135000 टन आटा का निर्यात इंडोनेशिया, मेडागास्कर, यू.ए.ई, सोमालिया, अमेरिका आदि देशों को किया गया जबकि वर्ष 2013 में यह मात्रा 308000 टन थी। गेहूँ के मुख्य आयातक देश बंग्लादेश एवं कोरिया हैं।

चित्र 7

तालिका–3 : गेहूँ का निर्यात

वर्ष	मात्रा (000 टन)
2011–12	579
2012–13	5795
2013–14	5032
2014–15	2920

भारतवर्ष में आटा प्रसंस्करण आधारित उद्योग काफी अव्यवस्थित है। पारंपरिक तौर पर आटा बनाने के लिए हमारे देश में आटा चक्की का प्रयोग होता रहा है और आज भी इनका प्रयोग बदस्तुर जारी है। इसकी मुख्य वजह कणों का आकार/संरचना एवं खुशबु है जिसकी वजह से उपभोक्ताओं के बीच आज भी पंसद की जाती है। गेहूँ प्रसंस्करण में आटा खंड में आज भी वर्चस्व छोटे व मझोले प्रसंस्करणकर्त्ताओं का है जो काफी अव्यवस्थित है। लेकिन वर्तमान परिदृश्य में बड़ी क्षमता वाली ईकाईयों की वजह से इस क्षेत्र में भी क्रांति आई है। आज रॉलर फ्लोर मिल्स की प्रतिदिन आटा बनाने की क्षमता 30–50 टन तक की है। आटा का बड़े पैमाने पर व्यवस्थित बाजार लगभग 1.5

मिलियन टन का है जिसमें आई.टी.सी. फूड्स (आशीर्वाद), जेनरल मिल्स, पिल्सबरी तथा शक्ति भोग आदि का खुदरा बाजार में उपलब्ध हैं जिनमें आई.टी.सी. अग्रणी है और यह अकेले 1 मि. टन का हिस्सेदारी बनाए हुए है।

ii. आटा का फोर्टिफिकेशन

हाल के वर्षों में सिर्फ आटा की जगह मल्टीग्रेन आटा तथा आटा में विभिन्न पोषक तत्वों व खनिज लवणों का फोर्टिफिकेशन कर उपयोग करने की चाहत उपभोकताओं में काफी बढ़ी है। इसकी मुख्य वजह उपभोक्ताओं के मन में सेहत की प्रति जागरुकता है। यही कारण है कि आज आटा बनाने वाली सभी–बड़ी कंपनियां इस उद्योग में भी अपने उत्पाद बनाने लगी हैं। पहले भी गेहूँ को सोयाबीन, चना, जौ आदि के साथ मिलाकर पिसा जाता रहा है और फिर उस आटे की चपाती बनाकर खाई जाती रही है। अतः अगर इसे दूसरे परिपेक्ष्य में देखें तो मल्टीग्रेन आटा का प्रचलन बहुत पहले से हमारे देश में रहा है।

तालिका–4 : गेहूँ के आटा का मानक

गुण	आवश्यक %
कैल्शियम (मि.ग्रा./100 ग्राम)	120
लोहा (मि.ग्रा./100 ग्राम)	5
राइबोफ्लेविन (मि.ग्रा./100 ग्राम)	0.25
थाएमिन (मि.ग्रा./100 ग्राम)	0.50
नियासिन (मि.ग्रा./100 ग्राम)	2.5

लेकिन आज के दौर में तकनीकी तौर पर उपयुक्त अन्य अनाजों को गेहूँ के साथ मिलाकर आटा बनाने से पोषक तत्वों की आपूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है। जिंक, कैल्शियम, आयोडीन, विटामिन ए साथ ही आटा में लोहा व विटामिन बी12 की मात्रा डालकर इसे और पौष्टिक बनाया जा रहा है। आज देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा खून की कमी, अनिमिया, विटामिन की कमी का शिकार हो रहा है ऐसे में मल्टीग्रेन एवं फोर्टिफाइड आटा इस समस्या का समाधान करने में एक सक्षम विकल्प है। आज लोहा की कमी एक भयावह समस्या बनती जा रही है। यह विकसित व विकासशील देशों की महिलाओं, गर्भवती महिला, बच्चों के सेहत पर बुरा असर डाल रहा है। एशिया, अफ्रिका व लैटिन अमेरिका के देशों के 50 प्रतिशत महिलाएं एवं बच्चे इससे प्रभावित हैं। आज विश्व की लगभग 20 मिलियन व्यक्ति लोहा की कमी से प्रभावित है। इसके निवारण के लिए कई सस्ते एवं सरल विकल्प उपलब्ध हैं जैसे भोजन में विविधता, संपूरक आहार, पुष्टीकरण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों से युक्त फसलों का उत्पादन व भोजन श्रृंखला में समावेश आदि। इनमें से विकासशील देशों के संदर्भ में सबसे किफायती व उपयुक्त विधि आटा का खजिन लवण से पुष्टिकरण है। फेरस सल्फेट तथा सोडियम सल्फेट इथाइलीन डाइएमीन टेट्रा एसिटेट से लोहा का पुष्टिकरण किया जा सकता है। इनकी जैव उपलब्धता सर्वाधिक है। अतः गेहूँ को ज्वार, बाजरा, रागी, मडुआ आदि को मिलाकर पिसने से तैयार आटा पौष्टिक होगा तथा लोहा, जिंक, कैल्शियम आदि की कमी को पूरा करने में सहायक होगा। मल्टीग्रेन आटा में गेहूँ, मक्का, जई, सोयाबीन, चना तथा जौ को मिलाकर पिसा जाता है। जौ एक संतुलित आहार है क्योकि इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामीन, खनिज लवण, रेशा आदि का समुचित मात्रा में समावेश होता है जो आवश्यक पोषक तत्व; लोहा, जिंक, फौलिक एसिड खाने में स्वादिष्ट व सुपाच्य होता है।

II उद्यम में सहयोग

किसी भी उद्योग–धंधे की शुरुआत में सहयोग की आवश्यकता होती है। इसके लिए तकनीकी ज्ञान, बाजार की समझ, उत्पादन बनाने की विधि, कच्चा माल, उसकी पैकेजिंग आदि की जानकारी बहुत आवश्यक है। साथ ही उद्योग स्थापना के लिए पूंजी के सस्ते स्रोत, सरकार की इस संबंध में सहयोगी योजनाएं आदि की जानकारी भी उतनी ही आवश्यक है। एक नए उद्यमी के लिए इन सभी पहलुओं की जानकारी उत्प्रेरक का काम करता है। यह बताना कि छोटे/बड़े उद्योग स्थापित करने के लिए मशीनें कहां से मिलेंगी, कौन सी कंपनी अच्छी और सस्ती है आदि द्वारा मार्गदर्शन भी उतना ही जरुरी है। सरकार द्वारा दी जा रही सब्सीडी का कैसे लाभ मिलेगा। सबसे महत्वपूर्ण है उत्पादों का विपणन और इसमें सही मार्गदर्शन बहुत ही जरुरी है अतः उद्यमी को बाजार की समझ, उत्पाद की मांग, उपभोक्ताओं की रुचि आदि का ज्ञान होना जरुरी है तभी उसके उत्पादों की मांग बढ़ेगी साथ ही उसे प्रतिस्पर्धा का भी उतना ही ध्यान रखना होगा। खाद्य पदार्थों के लिए एफ. एस.एस.ए.आई.से पंजीकरण एवं उसके मानदंडों का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

तालिका– 5 : गेहूँ से बनने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों के लिए उपयुक्त किस्में

उत्पादन	क्षेत्र	उपयुक्त किस्में
चपाती (>8.0/10.0)	**उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र** (पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुवा जनपद और हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी)	सी. 306, राज 3765, एच.डी. 2864, एच.डी. 2285, पी.बी.डब्ल्यू. 226, पी.बी.डब्ल्यू. 175, पी.बी.डब्ल्यू. 373
	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र (पूर्वी–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम एवं उत्तर–पूर्वी राज्यों के मैदानी भाग)	सी. 306, के. 0307, के. 8027, के. 9107, एम.ए.सी.एस. 6145, यू.पी. 262, एन.डब्ल्यू. 1014, एच.यू.डब्ल्यू. 234, एच.यू.डब्ल्यू. 533, एच.डी. 2888
	मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश का बुंदेलखण्ड क्षेत्र)	लोक 1, सी. 306, सुजाता, एच.आई. 1500, एच.आई. 1531, एच.आई. 1563, एच. डब्ल्यू. 2004, डी.एल. 788–2, जी.डब्ल्यू. 173, जी.डब्ल्यू. 273, जी.डब्ल्यू. 322, राज 4238, राज 3077
	प्रायद्वीपीय क्षेत्र (महाराष्ट्र एवं कर्नाटक)	लोक 1, एच.डी. 2987, एच.डी. 2833, जी.डब्ल्यू. 496, एम.पी. 3336, एन.आई.ए.डब्ल्यू. 34, एन.आई.ए.डब्ल्यू. 1415
ब्रेड (>755 मी.ली. लोफ वॉल्यूम)	**उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र** (जम्मू कश्मीर (जम्मू और कठुआ जिलों को छोड़कर), हिमाचल प्रदेश (ऊना और पोंटा घाटी को छोड़कर), उत्तराखंड (तराई क्षेत्रों को छोड़कर), सिक्किम, पश्चिमी बंगाल एवं पूर्वोत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्र)	एच.एस. 240, वी.एल. 738
	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुवा जनपद और हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी)	एच.डी. 2285, पी.बी.डब्ल्यू. 396, डब्ल्यू.एच. 1021, डब्ल्यू.एच. 1080
	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र (पूर्वी–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम एवं उत्तर–पूर्वी राज्यों के मैदानी भाग)	एच.डी. 277, एच.डी. 2733, एन.डब्ल्यू. 2036, डी.बी.डब्ल्यू. 14, डी.एल. 788–2
	मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश का बुंदेलखण्ड क्षेत्र)	लोक 1, जी.डब्ल्यू. 120, जी.डब्ल्यू. 173, जी.डब्ल्यू. 190, जी.डब्ल्यू. 496, एच.डी. 2864, एच.डी. 2932, एम.पी. 1203
	प्रायद्वीपीय क्षेत्र (महाराष्ट्र एवं कर्नाटक)	एच.आई. 977, एच.डी. 2189, एच.डी. 2501, एच.डी. 2781, डी.डब्ल्यू.आर. 162, डी.डब्ल्यू.आर. 195, एम.ए.सी.एस. 2496, एम.ए.सी.एस. 6222, एम.ए.सी.एस. 6273, यू.ए.एस. 304, ए.के.ए.डब्ल्यू. 4627, एन.आई.ए.डब्ल्यू. 34, राज 4083, एन.आई.ए.डब्ल्यू. 1415, एन.आई.ए.डब्ल्यू. 917, एन.आई. 5439
बिस्कुट (>11.0 फैलाव कारक)	**उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र** (जम्मू कश्मीर (जम्मू और कठुआ जिलों को छोड़कर), हिमाचल प्रदेश (ऊना और पोंटा घाटी को छोड़कर), उत्तराखंड (तराई क्षेत्रों को छोड़कर), सिक्किम, पश्चिमी बंगाल एवं पूर्वोत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्र)	एच.एस. 490, सोनालिका
	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुवा जनपद और हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी)	यू.पी. 2425

पास्ता (>7.09.0)	**उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र** पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुवा जनपद और हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी)	पी.डी.डब्ल्यू. 233, डब्ल्यू.एच. 896, डब्ल्यू.एच.डी. 943, पी.डी.डब्ल्यू. 291, पी.डी.डब्ल्यू. 314
	मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश का बुंदेलखण्ड क्षेत्र)	एच.आई. 8627, एच.आई. 8663, एच.आई. 8498, एच.आई. 8713, एच.डी. 4672
	प्रायद्वीपीय क्षेत्र (महाराष्ट्र एवं कर्नाटक)	एम.ए.सी.एस 2846, डी.डी.के. 1009, एन.पी. 200, एच.आई. 8663

III उद्यम का संपोषण

उद्यमता के कार्य–कलापों को लंबे समय तक सहयोग की आवश्यकता होती है चाहे वह तकनीकी ज्ञान के रुप में हो या उत्पादों में विविधता लाने का हो लेकिन सबसे अहम है सरकारी नीतियों द्वारा सहयोग जैसे करों में रियायत, बैंकों द्वारा सस्ता व रियायती ऋण की सुगम व सरल उपलब्धता, उद्योग विस्तार में सहयोग, बिजली, पानी व जमीन की उपलब्धता, सरकार द्वारा अनुदान, उद्योग स्थापित करने की प्रक्रिया में सुगमता तथा आयत–निर्यात शुल्क में रियायत आदि के माध्यम से नए उद्यमियों को लंबे समय तक प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए सहयोग किए जाने की आवश्यकता है। इस दिशा में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्र, राज्य कृषि विश्वविद्यालय, एमएमएमई, आत्मा आदि संस्थाएं बहुत सहयोग कर सकती हैं। करनाल स्थित भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान समय–समय पर इच्छुक उद्यमियों के लिए ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है और बहुत से उद्यमी लाभन्वित होते हैं।

आज भारत में अनेक स्वयं सहायता समूह आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए अच्छा कार्य कर रहे हैं। उनका गेहूँ आधारित लघु उद्योग जैसे सेवई, दलिया, सूजी, मैक्रोनी एवं पास्ता उत्पाद बनाना आदि क्षेत्र में क्षमता विकास एवं प्रशिक्षण द्वारा सक्षम बनाया जा सकता है। कठिया गेहूँ से बनने वाले उत्पादों की गुणवत्ता उत्तम होती है तथा पौष्टिकता भी अधिक होती है। अतः इस बात को बताना जरुरी है कि कठिया गेहूँ से बने दलिया, सूजी एवं पास्ता उत्पादों की बाजार में कीमत अच्छी मिलती है और बीटा कैरोटीन की मात्रा अधिक होने की वजह से उत्पादों का रंग पीलापन लिए हुए होता है तो उपभोगताओं के लिए और रोचक होता है। इससे न सिर्फ उनकी आय बढ़ेगी बल्कि किसान परिवार के नवयुवक, युवतियां एवं घरेलू महिलाओं को रोजगार का अवसर उपलब्ध होता। अतः गेहूँ आधारित सह उद्यमता विकास नई पीढ़ी को जहां एक तरफ खेती के प्रति रुझान पैदा करेगी वही बेरोजगारी की समस्या का भी निराकरण करेगी।

गेहूँ का रतुआ रोग : पहचान एवं नियंत्रण

प्रमोद प्रसाद, हनीफ खान, ओ पी गंगवार एवं किरण शर्मा

भा कृ अनु प– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, फ्लावरडेल, शिमला–171002 हि.प्र.

गेहूँ भारत की मुख्य खाद्यान्न फसलों में से एक है धान के बाद इसका दूसरा स्थान है। भारत के कुल खाद्यान्न उत्पादन का 32 प्रतिशत भाग गेहूँ का है। वर्ष 2013–14 के दौरान अब तक का सर्वाधिक उत्पादन 95.91 मिलियन टन प्राप्त हुआ जिसकी उत्पादकता पहली बार 3 टन प्रति हैक्टर से अधिक दर्ज की गई। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ ही गेहूँ की पैदावार को भी बढ़ाने की आवश्यकता है। गेहूँ पर भी अन्य धान्य फसलों की भांति अनेक रोग उत्पन्न होते है। कवक (फफूंद), जीवाणु, विषाणु, फाईटोप्लाज्मा, पादक परजीवी, सूत्रकृमि रोग उत्पन्न करने वाले प्रमुख जैवीय घटक हैं।

गेहूँ पर लगने वाला रतुआ रोग सबसे व्यापक और विनाशकारी रोग है जो कि भारत के विभिन्न भागों में रस्ट, किट्ट, शेली, गेरूआ, गेरवी, तांब्र इत्यादि नामों से जाना जाता है। गेहूँ का रतुआ रोग एक कवक द्वारा उत्पन्न होता है जो कि रोगजनक कवक, जीनस पक्सीनिया वर्ग में आता है, गेहूँ की फसल में लगने वाला रतुआ तीन प्रकार का होता है।

1. गेहूँ का काला अथवा तना रतुआ (*पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटिसाई*)
2. गेहूँ का भूरा अथवा पत्ती रतुआ (*पक्सीनिया ट्रिटिसिना*)
3. गेहूँ का पीला अथवा धारीधार रतुआ (*पक्सीनिया स्ट्राईफार्मिस*)

काला रतुआ

पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटिसाई द्वारा होने वाला काला रतुआ ज्यादातर गर्म क्षेत्रों में पाया जाता है। इसमें गेहूँ की पत्ती के अलावा तने पर भी रतुआ रोग के लक्षण दिखाई देते हैं इसलिए इसे तना रतुआ भी कहते हैं। इस रोग के फैलाव के लिए उपयुक्त तापमान 28–35° सेल्सियस है। यह मुख्यतः दक्षिणी भारत तथा मध्य भारत में पाया जाता है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान इस रोग को उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू एवं कश्मीर के अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में भी देखा गया है।

काला रतुआ को गेहूँ के तने एवं पत्ती पर हल्के लाल, भूरे रंग के चतुर्भुजाकार धब्बों (फ्यूसफोटिकाओं) से पहचान सकते हैं। आरम्भ में ये प्यूसफोटिकाएं (पॉस्चूल) बहुत ही सूक्ष्म आकार के होते हैं परन्तु धीरे–धीरे एक दूसरे से मिलकर बड़े–बड़े गहरे भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। ये फ्यूसफोटिकाएं आरम्भ में पौधे की झिल्लीमय बाह्य त्वचा में बंद रहती है जो बाद में फट जाती है और भूरे रंग के यूरिडियो बीजाणु चूर्ण की भांति हवा में बिखर जाते हैं। हर 15 दिन की अवधि में यूरेडियो बीजाणु एक नए सहिष्णु पौधे को सक्रंमित करते हैं और इस तरह से कुछ ही दिनों में तने का रतुआ उग्र रूप धारण कर लेता है। इस रोग से प्रभावित पौधे छोटे रह जाते हैं, फसल जल्दी परिपक्व हो जाती है, पौधे गिरने लगते हैं और दाने बारीक एवं संकुचित या कभी–कभी बिलकुल ही नहीं बनते।

भूरा रतुआ

भूरा रतुआ (*पक्सीनिया ट्रिटिसिना*) रोग भारत में गेहूँ उगाए जाने वाले सभी स्थानों पर पाया जाता है। यह रतुआ 22° से. के आस–पास अधिक पनपता है तथा इसके फैलाव के लिए उपयुक्त तापमान 20–25° सेल्सियस होता है।

रोग के लक्षण साधारणतया पौधे की पत्तियों पर ही दिखाई देते हैं। काला रतुआ की भांति भूरे रतुए में भी पत्ती के ऊपर वृताकार नारंगी से भूरे रंग की फ्यूसफोटिका बनती हैं जो आरंभ में पौधे की झिल्लीमय बाह्य त्वचा से ढकी रहती है और बाद में फट जाती है इस तरह से फफूंद के नारंगी से भूरे रंग के यूरिडो बीजाणु हवा में बिखर जाते हैं। हर 10–15 दिन की अवधि में यूरेडियो बीजाणु एक नए सहिष्णु पौधे को सक्रंमित करते हैं

तदोपरांत कुछ ही दिनों में भूरा रतुआ उग्र रूप धारण कर लेता है। इस रोग के कारण गेहूँ की फसल पकने से पहले ही सूखने लग जाती है। पौधे में सही तरीके से प्रकाश संश्लेषण न होने से पौधे सामान्य और स्वस्थ होने के बजाय सिकुड़े हुए और छोटे होते हैं। गेहूँ के दाने बारीक एवं संकुचित या कभी–कभी बिलकुल ही नहीं बनते।

पीला रतुआ

पीला रतुआ (*पक्सीनिया स्ट्राईफामिस*) रोग की दशा में पौधों की पत्तियों की ऊपरी एवं निचली सतह पर पीली धारीदार फ्यूसफोटिकाएं बनाती हैं इसलिए इसे धारीदार रतुआ के नाम से भी जाना जाता है। इसके फैलाव के लिए उपयुक्त तापमान 14–16 डिग्री सेल्सियस है। यह प्रायः उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत की नीलगिरी पर्वत श्रृंखलाओं में उगाई जाने वाली गेहूँ की फसल में देखा जा सकता है।

यूरेडिया फ्यूसफोटिकायें पत्तियों की शिराओं के बीच रेखीय पंक्ति में विकसित होती हैं यह फ्यूसफोटिकायें पत्तियों को ढक लेती हैं जिसके कारण पत्तियों का रंग पीला दिखने लगता है। इस अवस्था में पौधों में उचित प्रकाश संश्लेषण बाधित होने लगता है और पौधे अपना भोजन सामान्य रूप से नहीं बना पाते हैं। जिसके कारण दाने हल्के तथा सिकुड़े आकार के ही रह जाते हैं।

कई बार खेत में पानी का अधिक समय तक ठहरना तथा नाईट्रोजन की कमी या कीट के प्रकोप के कारण भी पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है पर इस स्थिति में पत्तियों पर पीले रंग का चूर्ण और पीले रंग की फ्यूसफोटिकायें नहीं होती है। पीला रतुआ को हाथ से छूने पर इससे हाथ पीला हो जाता है तथा कई बार जूतों और कपड़ों पर हम उसके बीजाणु देख सकते हैं। इस स्थिति में यूरेडियो बीजाणु पीले चूर्ण के रूप में जमीन पर पौधे के नीचे भी पड़े हुए देखे जा सकते हैं। पौधे के परिपक्व होने या तापमान के उपयुक्त न होने की दशा में पीली यूरिडो फ्यूसफोटिकाएं काले रंग की टिलियो फ्यूसफोटिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं और पत्ती में पीली धारियों की जगह काली धारियाँ ले लेती हैं।

नियंत्रण

रतुआ रोग नियन्त्रण एक तरह से आसान नहीं होता है क्योंकि इनमें समय–समय पर नए प्रभेद पैदा होते रहते हैं और इनके बीजाणु वायु के माध्यम से हजारो किलोमीटर दूर तक फैलते रहते हैं उपयुक्त समय पर रतुआ प्रबन्धन करके इससे होने वाली क्षति से बचाव किया जा सकता है। पादप प्रजनन के माध्यम से उच्च ऊपज देने वाली रतुआ प्रतिरोधी किस्मों का विकास एवं किसानों द्वारा उनको अपनाना निश्चित रूप से गेहूँ को रतुआ रोगों से बचाने का सस्ता एवं उपयुक्त उपाय है।

(i) अधिक उपज एवं रतुआ रोधी प्रजातियों के विकास के लिए भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल लगातार कार्यरत है। इस योजना के अन्तर्गत गेहूँ की उन्नत किस्मों का विकास एवं प्रोत्साहन किया जाता है। इस शोध कार्य में देश के अलग–अलग भागों में करीब 45 केन्द्रों में 100 से अधिक वैज्ञानिक शोध कार्य में प्रयत्नशील है। उन्नत किस्मों को कई तरह के परिक्षणों से गुजरना पड़ता है। इनमें से एक रतुआ प्रतिरोधी क्षमता का परीक्षण है। यह कार्य भा.गे.जौ.अनु.संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र फ्लावरडेल, शिमला, हिमाचल प्रदेश में किया जाता है। इसके लिए गेहूँ के भूरा रतुआ की 32, काला रतुआ की 28 और पीला रतुआ की 20 से अधिक जातियों से गेहूँ की किस्मों को परखा जाता है।

(ii) हर वर्ष 200 से अधिक प्रोत्साहित किस्मों का मूल्यांकन किया जाता है तथ रतुआ प्रतिरोधी गेहूँ की किस्में पहचानी जाती है क्योंकि रतुओं की नई–नई जातियों का सृजन होता रहता है अतः प्रतिरोधी किस्म अधिक देर तक प्रतिरोधी नहीं रहती है। एक उन्नत किस्म 4–6 वर्ष बाद बीमारी से प्रभावित हो जाती है। ऐसे में नई–नई प्रतिरोधी किस्मे जिनमें पैदावार और गुणवत्ता हो, का विकास एवं प्रोत्साहन एक निरंतर चलने वाला कार्य है। गेहूँ की रतुआ प्रतिरोधी उन्नत किस्में सामान्यतः 3–4 वर्ष में रतुआ के प्रति सुग्राही एवं रोगग्रस्त हो जाती है। इसका मुख्य कारण है रतुआ की नई उप–जाति का उत्परिवर्तन द्वारा विकसित हो जाना है। क्षेत्रीय केन्द्र, फ्लावरडेल, शिमला) हि.प्र. इस विषय पर कार्य कर रहा है और यहाँ उत्परिवर्तन द्वारा विकसित होने वाली रतुआ की नई–नई उपजातियों का पता लगाया जाता है। इन नई उपजातियों के

क्षेत्र	किस्में
उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र	एच एस 375, एच एस 490, एच एस 507, एस के डब्ल्यू 196, टी एल 2942
उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	डी बी डब्ल्यू 16, डी पी डब्ल्यू 621–50, एच डी 2967, एच डी 3043, एच डी 3059, पी बी डब्ल्यू 660, राज 4120, यू पी 2425, डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 102, डब्ल्यू एच 1105, एच डी 3086
उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	डी बी डल्यू 107, एच डी 3118, एच डी 2781, एच डी 2824, एच डी 2888, एच आई 1563, एच आई 1761, एच यू डब्ल्यू 468, एच डब्ल्यू 2045, के 1006, एन डब्ल्यू 1012, एन डब्ल्यू 1014, एन डब्ल्यू 2036, एन डब्ल्यू 5054
मध्य क्षेत्र	डी बी डब्ल्यू 110, जी डब्ल्यू 173, जी डब्ल्यू 322, जी डब्ल्यू 366, एच डी 2864, एच डी 2932, एच आई 1500, एच आई 1531, एच आई 1544, एच आई 8381, एच आई 8498, एच आई 8627, एच आई 8737, एच डब्ल्यू 2004, एम पी 3288, एम पी 4010
प्रायद्वीपीय क्षेत्र	ए के ए डब्ल्यू 4627, डी डब्ल्यू आर 195, एच डी 2833, एच डी 3090, एच आई 8663, लोक 45, मैक्स 6145, मैक्स 6263, मैक्स 6478, एन आई एडब्ल्यू 295, एन आई एडब्ल्यू 1415, एन आई डी डब्ल्यू 295, राज 4037, यू ए एस 304, यू पी 2565,
दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र	एच डब्ल्यू 1085, एच डब्ल्यू 1098, एच डब्ल्यू 5001, एच डब्ल्यू 5207

विरूद्ध गेहूँ की रतुआ प्रतिरोधी किस्मों का विकास लगातार अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ सुधार परियोजना के अन्तर्गत व्यवस्थित तरीके से हो रहा है।

(iii) विगत् कुछ वर्षों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग हेतु गेहूँ की विभिन्न प्रजातियों को विकसित किया गया है, जो न केवल अधिक उपज देने में समर्थ है अपितु उन भागों में पाए जाने वाले रतुआ रोगों के लिए भी प्रतिरोधी है। विभिन्न भागों के लिए विकसित की गई प्रजातियाँ निम्न प्रकार है;

(iv) प्रतिरोधी प्रजातियों के अप्रभावी होने की दशा में किसान अन्य रासायनिक और गैर रासायनिक नियन्त्रण विधियों को अपना सकते हैं।

(v) किसानों को अच्छी तरह से वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणित उपाय अपनाने चाहिए तथा गेहूँ की फसल पर रतुआ की आरम्भिक एवं अनुकूल वातावरण की अवस्था में रसायन प्रोपीकॉनजोल (टिल्ट 25 प्रतिशत ई.सी) अथवा ट्राइडिमेफॉन (बेलिटॉन 25 प्रतिशत ई.सी) अथवा टेबुकोनाजोल (फोलीकर, 250 डब्ल्यू पी) का छिड़काव 0.1 प्रतिशत की दर से (एक मिली लिटर दवा प्रति लीटर पानी) करने से रतुआ नियंत्रित किया जा सकता है। रसायन का छिड़काव लगभग 15 दिन बाद फिर से आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

(vi) कुछ क्षेत्र जैसे नीलगिरी एवं पालनी पर्वत श्रृंखलायें, कर्नाटक के कुछ क्षेत्र तथा उत्तरी भारत की पहाड़ियों में रतुआ पूरे वर्ष जीवित रहता है। इसलिए इस क्षेत्र में जैविक प्रतिरोधयुक्त किस्मों को ही उगाया जाना चाहिए। एक किस्म को बड़े क्षेत्रफल में उगाये जाने पर रतुआ महामारी का खतरा बना रहता है इसलिए एक क्षेत्र या जिले में उगाये जाने वाली गेहूँ की किस्मों में विविधता लाना आवश्यक है।

(vii) यदि गेहूँ की फसल को अन्य उपयुक्त फसलों (चना, सरसों इत्यादि) के साथ मिश्रित/अन्तः फसल के रूप में बोया जाए तो रोग के प्रभाव को काफी हद तक कम कर सकते हैं।

(viii) नाइट्रोजन युक्त उर्वरक पौधों में रतुआ के प्रति रोग सहिष्णुता को बढ़ा देते हैं इसलिए रतुआ के प्रभाव को कम करने के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश को संतुलित अनुपात में तथा नाइट्रोजन की मात्रा थोड़ी कम करने से रतुआ के प्रभाव कम हो जाते हैं।

अन्य

गैर–मौसमी/असमय उगने वाले गेहूँ के पौधों को नष्ट कर देना चाहिए क्योंकि ये पौधे गेहूँ की मुख्य फसल की अनुपस्थिति में रतुआ रोग पैदा करने वाले फफूंद को आश्रय देते हैं तथा उनको अगले फसल–चक्र तक ले जाने का कार्य करते हैं। इसके अलावा जैसे ही किसी किसान के खेत में रतुआ संक्रमण के लक्षण दिखाई दे तो बिना विलंब किए अपने नजदीक के कृषि वैज्ञानिकों या भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल या क्षेत्रीय केन्द्र, शिमला से तुरंत संपर्क करें और रोग नियंत्रण में उनका सहयोग लें। ऐसा करने से बीमारी को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

गेहूँ का पर्ण झुलसा रोग एवं उसका समेकित प्रबंधन – एक अवलोकन

आशीष ओझा, ज्ञानेन्द्र सिंह, भूदेव सिंह त्यागी, श्रवण कुमार एवं प्रदीप कुमार

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्रस्तावना

गेहूँ की पर्ण झुलसा बीमारी *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* नामक कवक द्वारा जनित है तथा पिछले कुछ दशकों से दुनिया और विशेषकर दक्षिण एशिया के गर्म और नम क्षेत्रों में गेहूँ की खेती के लिए एक मुख्य अवरोधी कारक बना हुआ है। पिछले लगभग 20 वर्षों में पर्ण झुलसा के हानिकारक प्रभाव से गेहूँ के उत्पादन एवं उत्पादकता पर अच्छा खासा प्रभाव पड़ा है। जैविक कारकों के द्वारा प्रभावित फसल उपज के कारण इसका प्रभाव किसानों की आमदनी पर भी पड़ा है। *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* द्वारा जनित पर्ण झुलसा के साथ–साथ अन्य कुछ जड़ें गलन, अंकुर गलन एवं गेहूँ के बीज गलन जैसे अन्य रोगों का भी कारक है। प्रस्तुत लेख में हमने पर्ण झुलसा के विवरण और उसके प्रबंधन के दृष्टिकोण पर अवलोकन किया है। जैसा कि विदित है कि तापमान, नमी और मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता इस रोग की गंभीरता से सीधे संबंधित है। उच्च सापेक्ष आर्द्रता, अधिक ठंड व तापमान 17 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक पर यह बीमारी महामारी का रूप धारण कर लेती है। इस रोग के कारण अगर पहले फ्लैग लीफ नीचे वाली पत्तियाँ से पहले संक्रमित हो जाये तो प्रकोप और अधिक बढ़ जाता हैं। इन सभी उपरोक्त कारणों से इस रोग को पर्ण झुलसा नामक रोग से जाना जाता है।

चित्र –1 रोग द्वारा झुलसी गेहूँ की फसल

चित्र–2 गेहूँ की पत्ती पर रोग के लक्षण

विश्व में गेहूँ उगाने वाले क्षेत्र का लगभग 25 मिलियन हैक्टर क्षेत्र पर्ण झुलसा से प्रभावित है। जबकि भारतीय उपमहाद्वीप के देशों में इस बीमारी के कारण प्रभावित क्षेत्रफल लगभग 12 लाख हैक्टर से अधिक है, जिसमें से अकेले भारत में 10 मिलियन हैक्टर भूमि धान–गेहूँ फसल प्रणाली पर आधारित है। इस रोग के कारण गेहूँ के उत्पादन में 15–25 प्रतिशत की कमी आंकी गयी। दुनिया भर में पर्ण झुलसा पर प्रकाशित रिपोर्ट और शोध लेखों से ज्ञात होता है कि इस रोगजनक की हानिकारक क्षमता काफी स्पष्ट दिखाई देती है। अन्य क्षेत्रों के मुकाबले दक्षिण एशियाई देशों के गर्म क्षेत्र पर्ण झुलसा से अधिक प्रभावित है। औसतन दक्षिण एशियाई देशों में कुल उपज का 20 प्रतिशत या उससे अधिक प्रतिशत पर्ण झुलसा के कारण नुकसान का सामना करते हैं। जबकि अकेले भारत में पर्ण झुलसा के कारण पैदावार में हानि 18 से 20 प्रतिशत है। यह रोग पूर्वी गंगा के मैदानी इलाकों में खेती करने वाले किसानों के लिए प्रमुख तथा हानिकारक साबित होता है क्योकि यहां की जलवायु स्थिति पर्ण झुलसा के लिए अनुकूल पायी जाती है। नेपाल में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के तहत पर्ण झुलसा का प्रकोप सन् 2004 में 100 प्रतिशत एवं सन् 2005 मे करीब 70 प्रतिशत क्षेत्रफल पर था। स्काटलैंड, कनाडा, ब्राजील आदि देशों में इसी प्रकार अंकुर गलन के कारण पैदावार में कमी और बढ़ जाती हैं। पिछले 5 सालों में कुछ क्षेत्रों के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि प्रजनन द्वारा पर्ण झुलसा रोधी किस्मों द्वारा काफी हद तक सफलता हासिल हुई हैं परन्तु अभी भी कुछ क्षेत्रों में पैदावार में इस बीमारी से कमी आ रही है।

रोग के लक्षण, वितरण, पारिस्थितिकी, जीवन–चक्र एवं रोगजनक

पर्ण झुलसा का बीजों के विकास के तीन सप्ताह बाद पता लगा सकते हैं। जलवायु अनुकूल होने पर रोग का प्रकोप फसल पर तेजी से फैलता है और यह गंभीर महामारी के रुप धारण कर लेती है। यदि यह रोग बीज द्वारा संचारित हैं तो पौधों की निचली पत्तियां बुरी तरह से क्षतिग्रस्त दिखाई देती हैं। इस रोग के लक्षण पौधों की निचली पत्तियों पर सूक्ष्म आकार के होते हैं और जल्द ही ये आकार में बड़े व गहरे भूरे रंग के 1–2 मी.मी. तक पहुँच जाते हैं। (चित्र 1)

पर्ण झुलसा रोग प्रभावित भाग से पीले रंग के एक विषैला पदार्थ का उत्पादन होता है। जैसे–जैसे घाव का आकार बढ़ता जाता है, वह पूरी पत्तियों पर फैलता जाता है और अंत में पत्तियाँ पीली पड़कर सड़ जाती है। इस रोग के कोनिडिया पत्तियों पर नम स्थितियों में आसानी से विकसित हो जाती हैं और आमतौर पर इसके निशान पत्तियों पर देखे जा सकते हैं। (चित्र 2–3)

पुर्ण झुलसा रोग की बालियों के ऊपर संक्रमण आने पर दाने सिकुड़ जाते हैं और दानों के ऊपर काले–काले धब्बे दिखाई देते हैं। इस बीमारी का कवक *"बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना"* एक विषैला पदार्थ *''हेल्मिन्थोस्पोरिल''* का भी उत्पादन करता है। अभी हाल में एक नया जहरीला पदार्थ *''बाईपोलारोक्सिन''* बाईपोलेरिस के कल्चर को छानने पर प्राप्त हुआ है। कुछ परिस्थितियों में पर्ण झुलसा रोग पत्तियों के साथ–साथ बाली तथा दानों पर एक साथ संक्रमण करते हैं। इन दोनों रोगों के लक्षण देखने में एक समान दिखाई देते हैं किन्तु प्रयोगशाला में इनकी आसानी से पहचान की जा सकती है।

पत्तियों के नुकसान का विकास एवं रोग की गंभीरता को सीधे–सीधे न्यूनतम जुताई, सिंचाई की संख्या एवं मात्रा, मिट्टी की कम उर्वरता, बुवाई घनत्व, फसल का विकास, फसल–चक्र के दौरान वर्षा में देरी, दानों में अंकुरण के समय वातावरण में नमी व फसल क्षेत्र में उच्च तापमान आदि इस रोग के लिए अनुकूल स्थितियां हैं। इस रोग के जनन तथा उसके विकास के लिए 18 डिग्री सेंटीग्रेड से 32 डिग्री सेंटीग्रेड तक का तापमान विकास एवं वृद्धि के लिए अत्यन्त अनूकूल माना गया है।

एशियाई देशों व भारत के कई वैज्ञानिकों की शोध रिपोर्टों से पता चला है कि 28 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान या उससे कम तापमान पर इस रोग (पर्ण झुलसा) का संक्रमण अधिक तेजी के साथ होता है। भारत क्षेत्र अंतर्गत रोग प्रगति–वक्र गुणक (ए.यू.पी.डी.सी.) की रिपोर्ट के अनुसार पता चला कि दानों के पकने के समय इस रोग में काफी वृद्धि और विकास होता है। शोधों से पता चला है कि गेहूँ–धान फसल–चक्र में गेहूँ में तुषार अंकुरण में देरी के कारण व रोग की उग्र अवस्था में अनाज के दानों का कम वजन व पैदावार में भारी कमी देखी गयी।

बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना एक मृतजीवी कवक है परन्तु यह फसलों के मलबे और मिट्टी में माइसिलियम के रुप में काफी समय तक जीवित रहता है। यह ग्राही रोगजनक मुख्यतः गेहूँ, जौ, राई और घास पर जीवन–यापन करता है। सामान्यतः पर्ण झुलसा अनाज उगाने वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। यह बीजों की तुषार अवस्था में ही प्राथमिक संक्रमण शुरु कर देता है। यह पौधों की बाह्य रक्षा झिल्ली, पर्यावरणीय कारक बाईपोलेरिस एवं अन्य जड़ सड़न कवकजनक रोगों की गंभीरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस रोग के फैलने के लिए मिट्टी तापमान 28 डिग्री सेंटीग्रेड से 32 डिग्री सेंटीग्रेड बहुत अनूकुल होता है। नम मिट्टी में बुवाई के दौरान ये मिट्टी से संक्रमण करते हैं और रोग के प्रकोप को बढ़ाते हैं।

इस रोग की प्रमुख प्रजातियाँ जो गेहूँ को प्रभावित करती हैं वे निम्नलिखित है। (1) बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना (2) पाइरीनोफोरा ट्रीटिसाई रिपिन्टिस (3) आलटरनेरिया ट्रीटिसिना। इन रोगजनक कवकों की उत्पत्ति की आवृति, उत्तर पूर्वी मैदानो के छः कृषि जलवायु क्षेत्रों में गर्म व आर्द्र मौसम के कारण सबसे अधिक पायी जाती है। भारत में बाईपोलेरिस पर हुए अब तक शोध परिणामों के आधार तथा आकारिकीय, रोगकीय एवं आनुवंशिक परिवर्तनशीलता के आधार पर तेरह (13) अलग–अलग तरह के पैथोटाइप्स की पहचान की जा चुकी है।

रोग स्थिति एवं मूल्यांकन प्रणाली

इस रोग की गंभीरता को मापने के लिए शोधकर्ताओं ने कई अलग–अलग तरीकों और प्रणालियों का उपयोग किया है।

सर्वप्रथम रोग की स्कोरिंग पैमाना, "प्रेसकोट और सारी" ने सन् 1975 में दिया था। जिसमें "सिंह एट ऑल" (2003) गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल द्वारा संशोधन करके बाद में डबल डिजिट रेटिंग स्केल प्रस्तावित पैमाने से अधिक आसान, तेज और सटीक बनाया गया है। आज हम जो दो अंकों वाला पैमाना इस रोग को मापने के लिए प्रयोग करते हैं इसको पुराने पैमाने में संशोधित करके बनाया गया हैं। यह रोग पौधों पर नीचे से ऊपर की ओर प्रगति करता है। रोग का संक्रमण हमेशा फ्लैग लीफ के नीचे वाली पत्तियों (एफ–1) पर उच्च और उसके बाद ही फ्लैग लीफ पर होता है। इस पैमाने के अनुसार दोनों अंकों (बाएं व दायें अंक) क्रमशः फ्लैग लीफ और निचली पत्तियों पर संक्रमित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

नियंत्रण के उपाय एवं प्रबंधन

एकीकृत प्रयास के माध्यम से पर्ण झुलसा रोग को अच्छे तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें हमें प्रतिरोधी स्रोतों की किस्में, एलियन जीन एवं सिंथेटिक गेहूँ का उपयोग करके पर्ण झुलसा के नियंत्रण के लिए रोग मुक्त बीज, कवकनाशी से उपचारित बीज, उचित फसल–चक्र, शस्य क्रियाएं व रसायनों का रोग की रोकथाम करने में प्रयोग कर सकते हैं। इसके इलावा पादपरोग विशेषज्ञ प्रजनक व सस्य क्रियाओं में पवित्तन द्वारा इस रोग के नियंत्रण में प्रगति की जा सकती है।

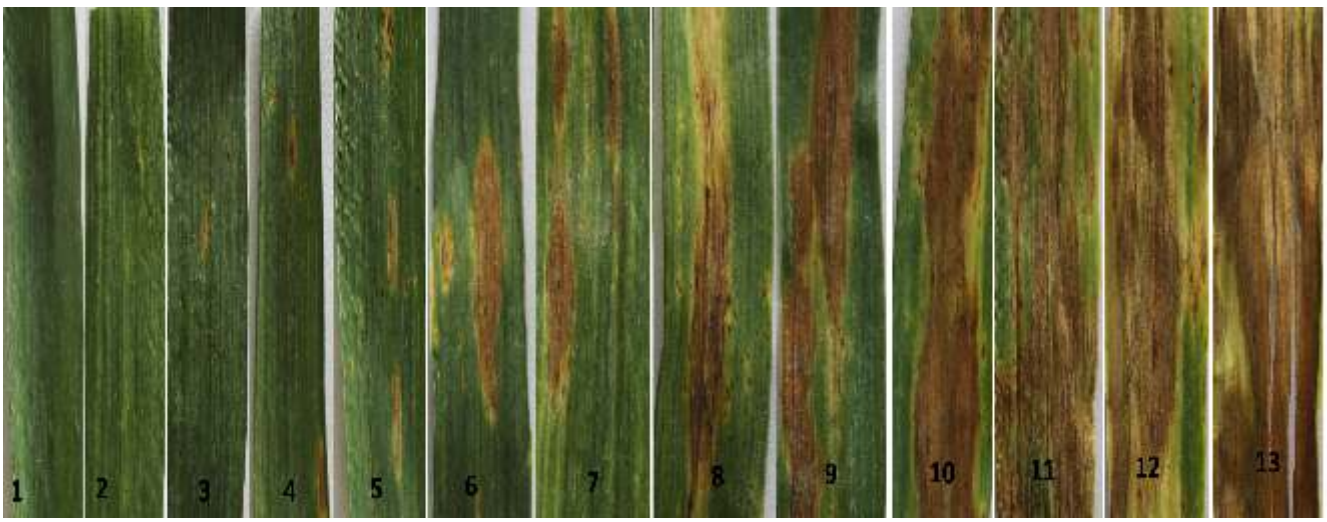

चित्र- 3 पत्तियों पर रोग के लक्षण

रोग के संक्रमण की स्कोरिंग 10–15 दिनों के अंतराल पर तीन अलग–अलग स्थितियों व तिथियों में की जाती है। पौधे के प्रतिरोधी होने पर (जब उन पर पर्ण झुलसा का संक्रमण न हो) ''00'' प्रतिरोधी पौधा कहा जाता है तथा इसके अंतर्गत प्रतिरोधी किस्मों को 01–23, एचएलबी स्कोर देते हैं। यदि जीनोटाईप मध्यम प्रतिरोधी हो तो (34–45), मध्यम अति संवेदनशील हो तो (56–68) और उच्च या अत्यधिक संक्रमित व संवेदनशील हो तो (78–99) के रुप में स्कोर देते हुए वर्गीकृत किया जाता है।

प्रत्येक जीनोटाईप के लिए तीन चरणों में ली गई स्कोरिंग के पहले अंक के औसत व दूसरे अंक के औसत की अलग गणना करके जीनोटाईप की प्रतिरोधक क्षमता का पता लगाया जा सकता है।

बीज उपचार

बीजों को उपचारित करके ही बुवाई करनी चाहिए क्योंकि संक्रमित मिट्टी बीजों की क्षमता को कम कर सकती है। गेहूँ के अंकुरण में *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* संक्रमण का अच्छा प्रभाव दिखाता है। कवकनाशी से बीजोपचार करने पर अंकुरित बीज व अंकुरण झुलसा पर प्रभाव नहीं होता है। कार्बोक्सिन आदि से बीजों को उपचार करने में उपयोग होने वाला प्रमुख कवकनाशी है।

कवकनाशी

बीज जनित संक्रमण को कवकनाशी के साथ कजाटीन व कजाटीन इमेजलीक के संयुक्त उपचार से नियंत्रित किया

जा सकता है। और जहां तक हो कीटनाशकों का उपयोग कम से कम किया जाना चाहिए। हालांकि कवकनाशियों ने पर्ण झुलसा पर नियंत्रण कर अपने आप को काफी उपयोगी व किफायती साबित किया है। प्रोपीकोनाजोल विशेष रुप से पर्ण झुलसा के नियंत्रण में बहुत प्रभावी पाया गया है।

प्रतिरोध के लिए प्रजनन एवं प्रजातियां

दक्षिण एशिया एवं भारत में गेहूँ की प्रजातियां पर्ण झुलसा के कम से मध्यम संवेदशीलता के स्तर तक सीमित है। हालांकि–गेहूँ की कुछ प्रजातियों में प्रतिरोध के लिए आनुवंशिक परिवर्तन किया गया है जो कि प्रतिरोधी किस्में बनाने का अच्छा तरीका है। हाल ही में भारत, चीन, ब्राजील, जाम्बिया और अन्य देशों में गेहूँ की कुछ नयी प्रतिरोधी लाईनों की पहचान की गयी है, परन्तु फिर भी इसमें रोग के प्रति शत–प्रतिशत रोग रोधिता का अभाव है।

रोगरोधी जननद्रव्य

रोग रोधी जननद्रव्य के प्रयोग से पर्ण झुलसा के लिये नई प्रतिरोधी किस्मों को तैयार कर सकते हैं, कुछ पर्ण झुलसा प्रतिरोधी जननद्रव्य निम्नलिखित हैं।

शस्य क्रियाओं द्वारा रोग प्रबंधन तकनीकी सिंचाई – धान–गेहूँ फसल चक्र के क्षेत्र में सिंचाई करते समय जल का जमाव 5–6 घंटे से ज्यादा न होने दें। इससे पत्तियों पर पानी ज्यादा देर तक रुकेगा व वातावरण पर्ण झुलसा के अनुकूल होगा जिससे रोग के होने का खतरा रहता है।

एस.डब्ल्यू. 89–5193	बी.एच. 1146	एल.बी.आर.एल. 12
चिरया 7	यांग्मई 6	एल.बी.आर.एल. 14
निंग 8319	एन.एल. 785	एच.आर.एल.एस.एन. 2
एन.एल. 781	एम.एल. 838	एच.आर.एल.एस.एन. 3
चिरया 3	एल.बी.आर.एल. 1	एच.आर.एल.एस.एन. 4
मयूर	एल.बी.आर.एल. 4	एच.आर.एल.एस.एन. 9
चिरया 1	एल.बी.आर.एल. 6	एच.आर.एल.एस.एन. 10
बी.एच. 1146	एल.बी.आर.एल. 11	एच.आर.एल.एस.एन. 13
यांग्मई 6	एल.बी.आर.एल. 13	एच.आर.एल.एस.एन. 14
एन.एल. 785	डी.बी.डब्ल्यू. 46	एच.आर.एल.एस.एन. 15
एच.आर.एल.एस.एन. 16	एच.आर.एल.एस.एन. 22	एच.आर.एल.एस.एन. 24

प्रमुख पर्ण झुलसा रोधी प्रजातियाँ– रोग रोधी प्रजातियाँ जिनकी संस्तुति पूर्वोत्तर एवं मध्य भारत, दक्षिण एशियाई देशों के लिए की गयी है, निम्नलिखित हैः–

एच.यू.डब्ल्यू. 510	एच.पी.डब्ल्यू. 184	एन.डब्ल्यू. 1014
डी.बी.डब्ल्यू. 14	पी.बी.डब्ल्यू. 343	एच.डी. 2967
डी.बी. डब्ल्यू. 39	डब्ल्यू.एच. 542	डी.पी.डब्ल्यू. 621–50
डी.बी.डब्ल्यू. 50	सी.बी.डब्ल्यू. 9	एच.आई. 1563
डी.बी.डब्ल्यू. 51	पी.बी.डब्ल्यू. 373	एच.डी. 2985
एच.पी.डब्ल्यू. 93	सी. 306	एच.डी. 2932
के. 307	डब्ल्यू.एच. 1021	एच.डी. 3016
यू.ए.एस. 316	एच.डब्ल्यू. 2004	एच.आई. 1531
पी.बी.डब्ल्यू. 396	यू.ए.एस. 304	एच.पी.डब्ल्यू. 155
पी.बी.डब्ल्यू. 550	पी.बी.डब्ल्यू. 443	डब्ल्यू.एच.730
बी.एल.1724	एच.आई. 1500	एम.ए.सी.एस. 2496

पर्ण झुलसा के प्रबंधन के लिये युक्तियाँ

1) प्रतिरोधी एवं सहिष्णु गेहूँ किस्में
2) गैर गैमिनियस फसलों का त्रिवर्षीय चक्रण
3) फसल प्रबंधन
   - (क) बुवाई के समय को समायोजित करके
   - (ख) खाद एवं जल प्रबंधन
   - (ग) बुवाई
4) रासायनिक नियन्त्रण
   - (क) बीज उपचार
     - i. थीरम–0.3 प्रतिशत/हैक्टर
     - ii. प्रोपिकोनाजोल–0.1 प्रतिशत/हैक्टर
     - iii. टेबुकोनाजोल–0.5 ली./हैक्टर
   - (ख) व्यस्क पौधों के पत्तों का उपचार करके
     - i. मेंकोजेब–2 कि.ग्राम/800ली. का घोल बनाये/हैक्टर
     - ii. कार्बोक्सिन–0.25 ग्राम/हैक्टर
     - iii. रैक्सिल–1.5 ग्राम/कि.ग्राम/हैक्टर
     - iv. विटावैक्स–200 3 ग्राम/कि.ग्राम/हैक्टर
     - v. कैप्टन– 0.1 प्रतिशत/हैक्टर

उर्वरकों का प्रयोग – नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों की उचित मात्रा का मिश्रण पर्ण झुलसा के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है। पोटाश की कमी की अवस्था में पौधों की प्रतिरोधक क्षमता में कमी आ जाती है। अतः पूर्वोतर क्षेत्रों में गेहूँ उत्पादकों को पोटाश का उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

छिड़काव – यह रोग पूर्वी गंगीय मैदानों में धान–गेहूँ फसल में सर्वप्रमुख विनाशकारी रोग है। इस क्षेत्र के लिये विकसित की गयी अनेक प्रजातियों में इस रोग को पाया गया है। फफूँदीनाशक दवाओं का प्रयोग जैसे रैक्सिल, विटावैक्स, ट्रायजोल रसायन समूह टेबुकोनाजोल एवं प्रोपिकोनाजोल को पर्ण झुलसा रोग को कम करने एवं रोकथाम में अत्यधिक प्रभावी पाया गया है।

निष्कर्ष

पिछले दशकों से वर्तमान तक अध्ययन करने से पता चला है कि पर्ण झुलसा गर्म क्षेत्रों के अंर्तगत गंभीर चिंता की एक बिमारी बनी हुई है। इसलिए, इसके लिये उपयुक्त और गैर मेजबान फसलों की किस्मों की खोज आवश्यक है जो कि गेहूँ किस्मों में पर्ण झुलसा प्रतिरोध में रोगजनक की गंभीरता को नियंत्रित कर सके।

हालांकि कई वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अलावा गेहूँ की पर्ण झुलसा प्रतिरोधी किस्मों का कार्यक्रम, कुशल फसल–चक्र, जैविक रसायन द्वारा इस रोग को नियंत्रण और शस्य क्रियाओं का उचित प्रयोग खेती के कार्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है।

चूर्णिल आसिता रोगः गेहूँ अनुसंधान की एक नई उभरती चुनौती

विजय राणा, सुधीर राणा, अश्वनी बसन्दराय, डेज़ी बसन्दराय एवं संदीप मनूजा

चौ.स.कु.हि.प्र. कृषि विश्वविद्यालय धान एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मलाँ

गेहूँ हिमाचल प्रदेश ही नहीं बल्कि समूचे देश और संसार की महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। इसकी खेती विभिन्न कृषि उत्पादन परिस्थितियों में ऊँचे बर्फानी पर्वतीय क्षेत्रों (ग्रीष्म ऋतु में) से लेकर मैदानी क्षेत्रों तक की जाती है। अलग–अलग जलवायु क्षेत्रों में फसल पर विभिन्न रोगों एवं कीटों का प्रकोप होता है। बदलते जलवायु परिवेश में कई नए रोग, कीट तथा खरपतवार उग्र हो रहे हैं। सामान्य तौर पर जलवायु परिवर्तन के कारण, कम महत्वपूर्ण रोग एवं कीट मुख्य समस्याएं बनते जा रहे हैं। फसल पर पीला रतुआ, भूरा रतुआ, खुली कंगियारी इत्यादि मुख्य रोग हैं, लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण पिछले कुछ वर्षों में चूर्णिल आसिता रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) का प्रकोप बहुत बढ़ रहा है। उपयुक्त जलवायु में इस रोग का संक्रमण पत्तों से लेकर तना व पर्णछदों तथा बालियों पर धूसर रंग के पाउडर की परत के रूप में देखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में रोग से प्रभावित पौधों पर फफूंद की सफेद से मटमैला रूई की हल्की तह नजर आती है। रोगी पौधों में वाष्पीकरण और श्वसन सक्रियता का उत्तेजन हो जाता है। पर्णहरित प्रकाशसंश्लेषण कम हो जाने के कारण दानों की सामान्य मोटाई में कमी आ जाती है तथा उपज घट जाती है। इस रोग का प्रकोप ठण्डे तापमान (10–15^{0} सेल्सियस) और अधिक नमी में ज्यादा फैलता है। अधिक नत्रजन वाली खाद के प्रयोग से भी रोग की उग्रता बढ़ती है।

चूर्णिल आसिता रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) ब्लूमेरिया ग्रैमिनिस एफ. स्पीसीज ट्रीटिसाई नामक फफूंद के द्वारा पैदा होता है। यह विश्व भर में, मुख्यतः पत्तों को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण रोग है। पहले इस रोग को कम महत्वपूर्ण समझा जाता था, लेकिन आज यह भारत के उत्तर पश्चिमी गेहूँ उत्पादन क्षेत्रों में एक सशक्त खतरे के रूप में उभर रहा है। पहाड़ी क्षेत्रों में इस रोग के लिए तापमान लगभग सारे फसल–चक्र में अनुकूल रहता है जो कि अधिक नुकसान का मुख्य कारक है। पहाड़ी क्षेत्र इस रोग के प्राथमिक इनॉकुलम (सूक्ष्मजीवी कण) का स्त्रोत होते हैं तथा तराई एवं मैदानी क्षेत्रों में इसकी पुनरावृत्ति के लिए योगदान देते

हैं। प्राथमिक इनॉकुलम स्वयं पैदा हुए गेहूँ पर तथा जीवित क्लिस्टोथीशिया (फफूँद के जीवन चक्र का एक प्रतिरूप) के रूप में विद्यमान रहता है। इसलिए पैदावार में क्षति एवं मैदानी क्षेत्रों में फैलाव रोकने के लिए इस रोग का पहाड़ी क्षेत्रों में नियन्त्रण किया जाना बहुत आवश्यक है। कुछ हद तक इस रोग का रासायनिक नियन्त्रण संभव है लेकिन पर्यावरण दूषित होने की आशंका के चलते और कम संसाधन वाले किसानों के लिए यह अच्छा विकल्प नहीं है। इसलिए आर्थिक और पर्यावरण दृष्टिकोण से किस्मों में रोग के लिए प्रतिरोधकता होना इस बिमारी के लिए सबसे कारगर उपाय है।

लगभग सभी अनुमोदित चपाती एवं कठिया गेहूँ की सुधरी किस्मों में इस रोग के लिए बहुत कम प्रतिरोधकता है, परन्तु ट्रिटीकेल और खपली गेहूँ में बिमारी के लिए प्रतिरोधकता पाई जाती है।

नई बिमारियों, कीटों तथा खरपतवारों के उद्भव तथा कीटों एवं बिमारियों की नवीन रेस को बदलते जलवायु के संभावित असर के तौर पर देखा जा रहा है। आज के परिदृश्य में कृषि में कई समस्याएं हैं जिनमें जलवायु परिवर्तन तथा फसलों में घटता हुआ जैविक आधार प्रमुख हैं। भारत में हरित क्रान्ति गेहूँ के उत्पादन में वृद्धि का मुख्य कारण रही है। वर्ष 1965 में गेहूँ की बौनी किस्मों का प्रयोग किया गया। इन किस्मों में विद्यमान नोरिन 10 जीन (कारक) की वजह से यह किस्में अधिक उर्वरक सहने की क्षमता के साथ–साथ प्रकाश के लिए असंवेदनशील थी। तत्पश्चात् देश के गेहूँ प्रजनन कार्यक्रम में 'नोरिन 10' का अत्याधिक रूप से प्रयोग किया गया। फसल सुधार के अगले महत्त्वपूर्ण दौर में 1बी.एल.–1आर.एस. किस्मों (जिनमें गेहूँ की 1बी.एल. क्रोमाज़ोम भुजा को राई क्रोमोज़ोम की 1आर.एस. भुजा से स्थानांतरित किया गया) का प्रयोग किया गया। 'वीरी' नामक अधिक उत्पादन देने तथा वृहद् अनुकूलनशीलता वाले जननद्रव्य इसी क्रोमोज़ोम स्थानांतरण की देन है। इन किस्मों में एल.आर. 26, एस.आर. 31, वाई.आर. 9 एवं पी.एम. 8 जीन समूह था, जोकि क्रमशः भूरा रतुआ, काला रतुआ, पीला रतुआ एवं चूर्णिल आसिता रोग के लिए रोग रोधक था। इस जीन समूह का 'वीरी' लाईनों के जरिए फसल सुधार में अत्यधिक प्रयोग में लाया गया। फलतः देश की 35 प्रतिशत से भी अधिक प्रजातियों में इस जीन समूह का समावेश है, जिसकी वजह से वर्तमान किस्मों का जैविक आधार कम हुआ और बिमारी तथा कीट प्रजातियों के लिए संवेदनशीलता अधिक हो गई है। इस के अतिरिक्त 1बी. एल.–1आर.एस. युक्त किस्मों एच.एस. 240, एच.एस. 277, पी.बी.डब्ल्यू 343, यू.पी. 2338, एच.पी.डब्ल्यू. 236, एच.पी. डब्ल्यू. 42 इत्यादि की अधिकाधिक क्षेत्रों में काश्त के कारण फफूँद के संवेदनशील प्रतिरूप उग्र हो गये तथा आजकल उगाई जाने वाली सभी किस्मों की प्रतिरोधकता को खत्म कर दिया।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान किस्मों में जैविक आधार में विविधता लाना बहुत आवश्यक है ताकि जलवायु परिवर्तन से पनपती नई बिमारियों एवं कीटों की प्रजातियों (रेस/बायोटाइप) के लिए रोधक किस्में तैयार की जा सके। चूर्णिल आसिता रोग के बढ़ते प्रकोप को देखते हुए जननद्रव्यों का मूल्यांकन और उनका फसल सुधार में उपयोग अति आवश्यक हो गया है। इस रोग की महत्ता को देखते हुए हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के धान एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मलाँ में प्राकृतिक खेत एवं नियंत्रित परिस्थितियों (ग्रीन हॉऊस एवं पॉली हाऊस) में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय जननद्रव्यों का मूल्यांकन तथा प्रजनन कार्यक्रम में उपयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त मूल्यांकन के लिए हिमाचल प्रदेश के ऊंचे पर्वतीय शुष्क शीतोष्ण खण्ड में स्थित भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल के क्षेत्रीय केन्द्र दालंग मैदान स्थित ग्रीष्म नर्सरी तथा चौ.कु.हि.प्र. कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, कुकुमसेरी को भी उपयोग में लाया जाता है। इस खण्ड में चूर्णिल आसिता एवं पीला रतुआ रोग प्राकृतिक स्थितियों में बहुत अधिक पाया जाता है, जिससे जननद्रव्यों का प्रतिरोधकता के लिए मूल्यांकन अच्छी तरह से हो जाता है। अनुसंधान की यह गतिविधियाँ भविष्य के लिए उपयुक्त प्रतिरोधक किस्मों और जननद्रव्यों की पहचान के लिए कारगर सिद्ध होंगी।

विभिन्न फसल रोगों में 'नीम उत्पाद' की महत्वपूर्ण भूमिका

पंकज कुमार सिंह

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। देश की बढ़ती जनसंख्या का भरण–पोषण करना, आने वाले समय के लिए एक चुनौती बनकर सामने उभर रहा है। इसके अलावा सूखा, बाढ़ और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं एवं जलवायु परिवर्तन से एक अध्ययन के मुताबिक समय पर बोये सिंचित गेहूँ की पैदावार में छह प्रतिशत और पछेती गेहूँ की उपज में 18 प्रतिशत तक गिरावट आ सकती है। आने वाले समय में सभी खाद्यान्न फसलों, दलहन, फल, सब्जी, दूध, मांस–मछली की मांग बढ़ने वाली है। गेहूँ की विकास की अवस्था में औसत तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से उत्पादन में लगभग 4.5 मिलियन टन की कमी की आशंका जताई गई है। इस प्रकार यदि देखा जाए तो कृषि से प्राप्त उत्पादन बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण में अब तक तो पर्याप्त बनी हुई है पर आने वाले समय में यह एक गंभीर समस्या है, इसके अलावा फसल रोगों द्वारा होने वाली उत्पादकता एवं कृषि उत्पादों में उनके गुणों का ह्रास जैसी समस्या प्रमुख है।

आजकल फसलों में होने वाले रोगों से बचाव के लिए कीटनाशक दवाओं का उपयोग बढ़ रहा है जिससे जन स्वास्थय एवं पशुओं पर इसका प्रतिकूल प्रभाव देखा जा सकता है। यही नहीं इन रसायनों के प्रभाव से हमारी आने वाली पीढ़िया भी विकलांग हो रही हैं। अतः हाल के वर्षों में अनेक ऐसे पौधों एवं इनसे प्राप्त उत्पाद का पता लगाया गया है जिनमें कई ऐसे प्रतिरोधी तत्व होते हैं जो हानिकारक कीटों के हमले के खिलाफ कारगर साबित हुए हैं जैसे कि नीम (एजीडिरैक्टा इंडिका) के तेल के साथ नीम के पत्ते, ओक के पत्ते, तुलसी के पत्ते, धनिए के पत्ते, लैन्टाना, शरीफे के बीज का अर्क, गेंदा के जड़ों का चूर्ण इत्यादि।

अपनी खाद्य फसल को निरोग रखने और अधिक उत्पादन लेने के लिए रासायनिक उर्वरक तथा रासायनिक कीटनाशकों, पीड़कनाशकों एवं फफूँदनाशकों का अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं करना अच्छा होता है, फिर भी यदि रोगों से फसलों को बचाना है तो पादप उत्पाद की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। जिनमें नीम प्रमुख हैं।

नीम, जो आज वानस्पतिक मूल का एक प्रमुख जैव कीटनाशक वृक्ष है क्योंकि नीम के पौधे की पत्ती, छाल बीज का रस निकालकर बहुत से रोगों के नियंत्रण हेतु कर सकते हैं। नीम में पाए जाने वाले तत्व प्रतिरोधी होते हुए उनके कड़वे मिश्रणों के रुप में पाये जाते हैं जिन्हे 'मेलिआसिन्स' वर्ग के मिश्रण के रुप में जाने जाते हैं जैसे कि एजाडिरेक्टिन, निम्बिन, सालानिन, मेलिआंट्रियोल इत्यादि। इनमें एजाडिरेक्टिन सबसे अधिक प्रभावी है।

नीम का बीज अर्थात् निंबोली मिलिआसिन्स का एक अच्छा स्त्रोत है क्योंकि इसमें एजाडिरेक्टिन और तेल का प्रतिशत क्रमशः 0.2–0.3 और 30–40 प्रतिशत तक पाया जाता है। आजकल नीम के तेल का प्रयोग गाय के मूत्र के साथ मिश्रित कर एक दवा के रुप में फसलों को रोगमुक्त बनाने हेतू किया जा रहा है। इसके लिए पांच लीटर देशी गाय मूत्र में एक लीटर नीम का तेल को 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव किया जा सकता है यह दवा फसल संरक्षक के साथ–साथ फसल संवर्धक भी है। इसके अलावा नीम के तेल में ही नीम के पत्ते, ओक के पत्ते, तुलसी एवं धनिया के पत्ते, गोमूत्र में डालकर प्राप्त मिश्रण को फसल में छिड़काव करने से काफी लाभप्रद प्रभाव देखा गया है।

नीम बीज से तेल प्राप्त करने का आसान तरीका

सर्वप्रथम नीम वृक्ष से प्राप्त सूखे हुए बीजों का दाल–दलने की प्रक्रिया के समान दल लिया जाता है जिससे इसका छिलका अलग हो जाएगा। तत्पश्चात् इसे धूप द्वारा फटक कर मिरी अलग कर लें अलग इस गिरी में थोड़ा पानी मिलाकर मिक्सी या सिलबट्टे पर पीसकर आटे के समान लोई तैयार कर लें इस लोई को मलमल के कपड़े या थैले में भरकर बाहर से दबाकर तेल निचोड़ लें। इस विधि द्वारा एक कि.ग्रा. गिरी से 100 मि.ली. तक तेल की मात्रा प्राप्त

की जा सकती है जो हल्के पीले रंग का होता है। यूं तो नीम के बीज में तेल बहुत अधिक होता है। शुद्ध गूदे में 40–50 प्रतिशत तक तेल होता है जबकि छिलका सहित बीज में 20–25 प्रतिशत तक तेल होता है।

नीम बीज से तेल प्राप्त करने का उपयुक्त समय

नीम वृक्ष से बीज या फसल इकट्ठा करने के बाद 2 से करीब 5 माह की अवधि तक तेल का उत्पादन सर्वाधिक होता है इससे पहले या बाद में भी तेल निकाला जा सकता है परन्तु प्राप्त तेल की मात्रा बहुत कम हो सकती है। नमी के तेल का उपयोग बहुत से रोगों के नियंत्रण हेतु किया जा सकता है। आजकल बाजारों में व्यवसायिक रुप से बहुत से नुस्खे उपलब्ध है जैस नीमजाल–ए जिसे मटर के पौधे में होने वाला रोग चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) को सफलतापूर्णक नियंत्रित किया जा सकता है।

नीम छाल द्वारा पौध रोग का नियंत्रण

बहुत से ऐसे रोग जो जीवाणुओं द्वारा पौधों पर लगते हैं उनका नियंत्रण नीम छाल के सार द्वारा किया जा सकता है। यदि धान में बैक्टीरियल ब्लाइट रोग लगती है तो उसमें नीम और यूरिया मिश्रित कर प्रयोग में लाने से इस रोग में कमी आती है।

नीम तेल द्वारा पौध रोग का नियंत्रण

नीम का तेल पौध रोग नियंत्रण में काफी प्रभावी है। नीम तेल के प्रयोग से पौधों में लगने वाली विषाणु जनित रोगों पर भी नियंत्रण किया जा सकता है क्योंकि नीम तेल विषाणु को प्रसारित करने वाले कीटों को नियंत्रित करता है।

नीम द्वारा सूत्रकृमि जनित रोग का नियंत्रण

जैसा कि हमें ज्ञात है सूत्रकृमि (निमेटोड) पौधों के भूमिगत भागों विशेषकर जड़ों पर आक्रमण करते हैं फलस्वरुप जड़ो में गांठ बन जाती है और पौधों की क्रियात्मकता भी प्रभावित होती है जिससे पौधों मे लगने वाले बीज, फल, फूल एवं पत्तियों का कमजोर या कुंठित हो जाना प्रमुख है।

अतः नीम के उत्पादों को सूत्रकृमि के नियंत्रण में उपयोग किया जा सकता है जैसे रोपण से पूर्व खेत की मिट्टी में भली प्रकार मिला देना अथवा बीजाई या रोपाई पूर्व बीज को भली–भांति नीम उत्पादों द्वारा उपचारित करना इत्यादि। टमाटर फसल को सूत्रकृमि से बचाने के लिए नीम की खली का प्रयोग काफी लाभप्रद है क्योंकि सूत्रकृमियों से टमाटर की खेती काफी अधिक प्रभावित होती है। नीम खली को मृदा के साथ मिलाने पर इसका प्रभाव 3 से 6 सप्ताह बाद दिखाई देने लगता है। एक अध्ययन के मुताबिक नीम खली के प्रयोग से बहुत अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है। पॉली हाउस व ग्रीन हाउस के अन्दर की मिट्टी को भी इस तरह से उपचारित करके सूत्रकृमि मुक्त किया जा सकता है।

बीज उपचार में नीम उत्पाद की भूमिका

बीजों के सही अंकुरण एवं रोगमुक्त बनाए रखने के लिए बीजों को उपचारित करना अति आवश्यक है इसके लिए एक लीटर पानी में 10 ग्राम नीम का तेल 1 मिली. साबुन के घोल के साथ मिला लें और रातभर भिगोकर अगले दिन बुआई कर दें इसके फलस्वरुप पौधे स्वस्थ और उपजाऊ होगें।

खरपतवार नियंत्रण में नीम का भूमिका

जिन खेतों में नीम की पौध तैयार की जाती है या जहां मिट्टी में नीम वृक्ष की पत्तियों मिली हो। उनमें मोथा नामक खरपतवार नहीं उग सकता है।

पर्यावरण के अनुकूल नीम के ये विशेषताएं एकीकृत कीट प्रबंधन कायक्रमों के लिए काफी उपयुक्त हैं। इसके अलावा कुछ प्रमुख कीटनाशक पादप उत्पाद है–पाइरेथ्रम, रोटेनन, राइनिया और निकोटिन जिनका इस्तेमाल कृत्रिम कीटनाशकों से पहले भी किया जाता था।

गेहूँ के प्रमुख कीट एवं रोग का प्रबंधन

सुनील कुमार मण्डल
कृषि विज्ञान केन्द्र, गोपालगंज (बिहार)

गेहूँ रबी मौसम में उगायी जाने वाली भारत की प्रमुख खाद्यान फसल है। देश के हरित क्रांति में खाद्यान के उत्पादन को बढ़ाने में गेहूँ फसल की मुख्य भूमिका रही है। गेहूँ के कूल उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग देश के पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड के मैदानी भाग, राजस्थान व मध्य प्रदेश से प्राप्त होता है, परन्तु इन क्षेत्रों के अर्न्तगत गेहूँ की औसत उपज में अंतर देखा गया है, जबकि उत्तर प्रदेश में गेहूँ का 90 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित है, लेकिन उत्पादकता 25.96 कुंतल प्रति हैक्टर है। अग्रणी प्रदेशों जैसे पंजाब और हरियाणा की उत्पादकता क्रमशः 44 और 38 कुंतल प्रति हैक्टर है। लेकिन यदि किसान उन्नत बीज, समय से सिंचाई, खरपतवार, कीड़ों एवं बिमारियां का नियंत्रण तथा उर्वरकों का संतुलित उपयोग वैज्ञानिक ढंग से करें तो गेहूँ की उपज 40–50 कुंतल प्रति हैक्टर तक आसानी से प्राप्त की जा सकती है और केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2020 तक लगभग 110 मिलियन मैट्रिक टन गेहूँ उत्पादन का निर्धारित लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रमुख कीट

दीमक

ये मिट्टी में रहने वाले उजले रंग की चींटी की तरह छोटे आकार के कीट हैं। ये जमीन में सुरंगें बनाती है और ये गेहूँ के छोटे–छोटे जड़ों को खाकर नुकसान पहूंचाते हैं। प्रकोप अधिक होने पर ये तने को भी खा सकती हैं। अन्त में प्रभावित पौधे मर जाते हैं। आक्रान्त पौधों को उखाड़ने पर तने में मिट्टी लगी पायी जाती है।

गुजिया वीविल

यह कीट भूरे मटमैले रंग का होता है। जो सूखी जमीन में ढेले एवं दरारों में रहता है। सर्दियों में इसका प्रकोप अधिक होता है। यह कीट उग रहे पौधों को जमीन की सतह के साथ काट कर हानि पहुंचता है। अधिक प्रकोप होने पर फसल पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

प्रबन्धन

1. जिन क्षेत्रों में दीमक/गुजिया वीविल का प्रकोप हमेशा होता है तो खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई करना चाहिए।
2. खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए।
3. हमेशा सड़ी गोबर के खाद का ही व्यवहार करना चाहिए।
4. बुआई से पूर्व दीमक के नियंत्रण हेतु क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी. की 5 मि.ली. मात्रा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए।
5. ब्यूवेरिया बैसियाना 1.15 प्रतिशत की 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से 60–70 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छिंटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखरी जुताई पर भूमि में मिला देने से दीमक सहित भूमि जनित कीटों का नियंत्रण हो जाता है।
6. खड़ी फसल में दीमक/गुजिया वीविल के नियंत्रण हेतु क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी. का 2.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए अथवा इस दवा का 2.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
7. क्लोरपाईरीफास 1.5 प्रतिशत धूल का 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुआई से पूर्व खेत की अंतिम जुताई के समय मिट्टी में व्यवहार करना चाहिए।

तना बेधक

कभी–कभी गेहूँ में तना बेधक कीटों का प्रकोप देखा गया है। इस कीट की मादा पत्तियों के नीचले सतह पर अंडा देती है। अन्डे से निकले कैटरपीलर तने में धुसकर उसे काटने लगता है। परिणामतः कभी–कभी सुखी वाली खेतों में दिखाई देता है।

प्रबन्धन

1. अण्ड समूहों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. कारटाप हाइड्रोक्लोराईड 50 एस.पी. 1.0 ग्राम/ लीटर पानी या क्वीनालफास 25 ई.सी. या प्रोफेनोफास 50 ई.सी. 1.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर फसलों में छिड़काव करना चाहिए।

माहू

यह कीट काले, हरे रंग के पंखयुक्त एवं पंखविहीन होते हैं। इसके शिशु एवं वयस्क पत्तियों एवं हरी बालियों से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। माहू मधुश्राव भी करते हैं जिस पर काली फफूंद उग जाती है जिससे प्रकाश संश्लेषण में बाधा उत्पन्न होती है।

प्रबन्धन

1. फसल की बुआई समय पर करना चाहिए ।
2. लेडी वर्ड विटिल की संख्या पर्याप्त रहने पर कीटनाशक का छिड़काव नहीं करना चाहिए।
3. खेत में पीले रंग के टिन के चादरों पर चिपचिपा पदार्थ लगाकर लकड़ी के सहारे खेत में 5–6 प्रति हैक्टर की दर से खेत में गाड़ देना चाहिए। पीले रंग से माहू आकर्षित होंगें और इसमें चिपक कर मर जाएंगे।
4. डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि0ली0 प्रति लीटर पानी या फेनभेलरेट 20 ई.सी. 1.0मि.ली. पानी का घोल बनाकर फसलों में छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग

1. गेरूई रोग (काली भूरी एवं पीली)

गेरूई काली, भूरे एवं पीले रंग की होती है। गेरूई की फफूंद के फफोले पत्तियों पर पड़ जाते हैं जो बाद में बिखर कर अन्य पत्तियों को प्रभावित करते है। काली गेरूई रोग तना तथा पत्तियों दोनों को प्रभावित करती है।

2. करनाल बन्ट

फफूंद द्वारा होने वाला यह एक बीज जनित रोग है। समान्यतः खड़ी फसल में रोग ग्रस्त पौधों को पहचानना सम्भव नहीं हैं। यह रोग दाना बनने के बाद ही दिखाई पड़ता है। रोगग्रस्त दानें आंशिक या पूर्णरूप से काले चूर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं। एक पौधे की सभी बालियां तथ एक बाली के सभी दाने रोगग्रस्त नहीं होते हैं। एक वाली में कुछ दाने ही रोगग्रस्त होते हैं। रोगग्रस्त दानों से सड़ी मछली की कुछ गन्ध आती है।

3. कण्डुआ रोग

इस रोग में बालियों में दाने के स्थान पर फफूंद का काला धूल भर जाता है और कुछ समय बाद पूरी बाल समाप्त हो जाती है, केवल रेचीज शेष बचती है। फफूंद के बीजाणु हवा में झड़ने से स्वस्थ्य बाली भी आक्रांत हो जाती है। यह अन्तःबीज जनित रोग है।

4. पत्र अंगमारी (झुलसा रोग)

प्रारम्भ में रोग के लक्षण, नीचे की पत्तियों पर

गोलाकार या अंडाकार छोटे–छोटे पीले भूरे रंग के धब्बे के रूप में देखे जा सकते हैं। अनुकूल मौसम में ये धब्बों में मिलकर पत्तियों को झूलसा देते हैं। प्रभावित फसल आग से झुलसी हुई सी प्रतीत होती है। दाने सिकुड़े हए तथा वजन में हल्की हो जाती है।

5. सेहूँ रोग (इयर काकिल)

यह रोग सूत्रकृमि द्वारा होता है। इस रोग में प्रभावित पौधों की पत्तियां मुड़ कर सिकुड़ जाती है। अक्रान्त पौधे बौने रह जाते हैं तथा उनमें स्वस्थ्य पौधे की अपेक्षा अधिक शाखायें निकलती है। रोगग्रस्त बालियां छोटी एवं फैली हुई होती है और इसमें काले रंग की गॉल (गांठे) बन जाते हैं। जिसमें गेहूँ के दाने के बदले काले ईलाइची दाने के समान बीज बनते हैं।

प्रबन्धन

1. बीज उपचार

(क) कण्डुआ एवं करनाल बन्ट रोगों के नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू.पी. की 2.5 ग्राम या कार्बोक्सिन 75 डब्ल्यू.पी. 2.0 ग्राम या टेबुकोनाजोल 2डी.एस. की 1.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करनी चाहिए।

(ख) कण्डुआ रोग एवं बीज जनित रोगों के साथ–साथ प्रारंभिक भूमि जनित रोगों के नियंत्रण हेतु कार्बोक्सिन 57.5 प्रतिशत+थीरम 37.5 प्रतिशत डी. एस.डब्ल्यू.एस. की 3.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज शोधन कर बुवाई करना चाहिए।

(ग) सेहूँ रोग के नियंत्रण हेतु बीज को कुछ समय के लिए 2.0 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोये (200 ग्राम नमक को 10 लीटर पानी में घोलकर) जिससे सेहूँ रोग ग्रसित बीज हल्का होने के कारण तैरने लगता है। ऐसे सेहूँ ग्रसित बीजों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। नमक के घोल में डुबोये गये बीजों को बाद में साफ पानी से 2–3 बार धोकर सुखा लेने के पश्चात् बोने के काम में लाना चाहिए।

2. भूमि उपचार

(क) भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु जैव फफूंदनाशी ट्राइकोडरमा विरडी 1 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. अथवा ट्राईकोडरमा हारजिएनम 2 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. की 2.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से 60–75 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखरी जुताई के समय भूमि में मिला देने से कण्डुआ, करनाल बण्ट आदि रोगों के प्रबन्धन में सहायता मिलती है।

(ख) सेहूँ रोग के नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन 3जी 10–15 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करना चाहिए।

3. पर्णीय उपचार

1. गेरूई एवं पत्ती धब्बा रोगों के नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 75 डब्ल्यू.पी. या थिरम 80 डब्ल्यू.पी. या जीनेब 75 डब्ल्यू.पी. का 2.0 ग्राम या टेबुकोनाजोल 25.9 ई.सी. का 1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से धोल बनाकर फसल पर छिड़काव करना चाहिए।
2. गेरूई एवं करनाल बन्ट रोगों के नियंत्रण हेतु प्रोपीकोनाजोल 25 ई.सी. 1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर फसलों में छिड़काव करना चाहिए।

शस्य प्रबन्धन क्रियायें

1. फसल–चक्र अपनाना चाहिए।
2. खेत को खरपतावार से मुक्त रखना चाहिए।
3. गीष्मकालीन गहरी जुताई करना चाहिए।
4. संतुलित उर्वरकों का व्यवहार करना चाहिए।
5. हमेशा रोग मुक्त स्वस्थ बीज की ही वुबाई करनी चाहिए।
6. रोग रोधी किस्मों के प्रमाणित बीजों का ही बुवाई करना चाहिए।

प्रमुख चूहे: चूहे की दो–तीन प्रजातियां खेत में गेहूँ की खड़ी फसल को बहुत अधिक नुकसान पहुँचाती हैं।

नियंत्रण के उपाय

1. चूहे की निगरानी एवं जिंक–फास्फाईड (80 प्रतिशत) से नियंत्रण का सप्ताहिक कार्यक्रम निम्न प्रकार सामूहिक रूप से किया जाए तो अधिक सफलता मिलती है।

(i) **पहला दिन**– खेत की निगरानी करें तथा जितने चूहे के बिल हो तो उसे बन्द करते हुए पहचान हेतु लकड़ी के डंडे गाड़ दें।

(ii) **दूसरा दिन** – खेत में जाकर बिल की निगरानी करें जो बिल बन्द हो वहां से गड़े हुए डंडे को हटा दें। जहाँ पर बिल खुल गये हो वहाँ पर डंडे गड़े रहने दें। खुले बिल में एक भाग सरसों का तेल एवं 48 भाग भूने हुए दाने का बिना जहर का बना हुआ चारा बिल में रखें।

(iii) **तीसरा** दिन – बिल की पुनः निगरानी करें तथा बिना जहर का बना हुआ चारा पुनः बिल में रखें।

(iv) **चौथा** दिन – जिंक फास्फाइड (80 प्रतिशत) 1.0 ग्राम, सरसों का तेल अल्प मात्रा में एवं 48 ग्राम भुने हुए दाने में बनाये गये जहरीले चारे का प्रयोग करना चाहिए।

(v) **पांचवा दिन** – बिल की निगरानी करें तथा मरे हुए चूहों को जमीन में खोद कर दवा दें।

(vi) **छठा दिन** – बिल को पुनः बन्द कर दें तथा अगले दिन यदि बिल खुल जाये तो पुनः इस सप्ताहिक कार्यक्रम को पुनः अपनाये।

2. ब्रोमोडियोलोन 0.005 प्रतिशत के बने बनाये चारे की 10.0 ग्राम मात्रा प्रत्येक जिन्दा बिल में रखना चाहिए। इस दवा से चूहा 3–4 बार खाने के बाद मरता है।

समेकित प्रबन्धन

1. पूर्व में बोई गयी फसलों के अवशेषों को एकत्र कर कम्पोस्ट बना लेना चाहिए।
2. हो सके तो दीमक के घर को खोदकर रानी दीमक को मार दें।
3. दीमक प्रभावित क्षेत्रों में नीम की खल्ली 10 कुंतल प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
4. दीमक से प्रभावित खेतों में सदैव अच्छी तरह से सड़ी गोबर की खाद का ही प्रयोग करना चाहिए।
5. दीमक से ग्रसित क्षेत्रों में क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी. का 4.0 मिली लीटर प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए।
6. समय से बुवाई करने से माहू, सैनिक कीट आदि का प्रकोप कम हो जाता है।
7. मृदा परीक्षण के आधार पर ही रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग करें। नत्रजन वाले उर्वरकों के अधिक प्रयोग से माहू एवं सैनिक कीट के प्रकोप बढ़ने की सम्भावना रहती है।
8. कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करना चाहिए।
9. खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप होने पर क्लोरपाईरीफास 20 ई.सी. का 2–3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के पानी के साथ अथवा बालू में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।
10. वेविरिया वेसियाना की 2.0 किलोग्राम मात्रा की 20 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर 10 दिनों तक छाये में ढक कर रख दें तथा बुवाई करते समय कूड़े में इसे डालकर बुवाई करें।

सूत्रकृमियों द्वारा उत्पन्न खाद्यान्न फसलों में प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

एस पी विश्नोई

कृषि अनुसंधान केन्द्र, दुर्गापुरा, जयपुर

वितरण और महत्व

सर्वप्रथम वर्ष 1874 में कून ने जर्मनी में पुटीकारी सूत्रकृमि को धान्यों के परजीवी के रूप में पाया था। इसके पश्चात् इसकी उपस्थिति का उल्लेख विश्व के अनेक देशों जैसे–अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा, इजराइल, मोरक्को, जापान, दक्षिणी अफ्रीका, उत्तरी अफ्रीका, स्वीडन, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, नार्वे, पाकिस्तान एवं भारत आदि से किया गया। भारत में सर्वप्रथम वर्ष 1958 में वासुदेवा ने राजस्थान के सीकर जिले में पुटीकारी सूत्रकृमि के संक्रमण को गेहूँ एवं जौ में देखा था। इस रोग को स्थानीय लोग 'मोल्या' के नाम से पुकारते थे। बाद में इसे कई अन्य वैज्ञानिकों ने भी वर्णित किया तथा इसको राजस्थान के अन्य जिलों जैसे – जयपुर, अलवर, अजमेर, चित्तौड़गढ़, पाली, उदयपुर, टोंक, झुनझुनू, भीलवाड़ा, सीकर, सिरोही, सवाई माधोपुर, राजसमन्द, दौसा, हनुमानगढ़, बीकानेर, धौलपुर व गंगानगर आदि तथा पड़ोसी राज्यों जैसे– हरियाणा के महेन्द्रगढ़, गुड़गांव, करनाल, पानीपत, भिवानी, रोहतक आदि जिलों, हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में, जम्मू–कश्मीर के जम्मू जिले में उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले में, दिल्ली के नज़फगढ़ ब्लॉक, पंजाब के लुधियाना, होशियारपुर एवं मध्य प्रदेश आदि में पाया गया। आजकल यह रोग धीरे–धीरे उत्तर–प्रदेश के भारतीय गंगा के मैदान क्षेत्र की ओर फैल रहा है। इस रोग के कारण प्रतिवर्ष 50 प्रतिशत से अधिक फसल नष्ट होती देखी गई है। हल्की मृदा में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है तथा गेहूँ की अपेक्षा जौ की फसल को अधिक हानि पहुंचाता है और गंभीर संक्रमण होने पर पूरी फसल चौपट हो जाती है। स्वरूप एवं सिंह ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस रोग द्वारा 50 से 100 प्रतिशत तक हानि होने का अनुमान लगाया है। वैन बेर्कम एवं शेषाद्री (1970) ने अकेले राजस्थान राज्य में ही पूटी सूत्रकृमि द्वारा लगभग 80,00,000 रूपये वार्षिक हानि का आंकलन किया है, जो उस समय के मूल्यों पर आधारित है। डॉ. इन्द्रा राजवंशी एवं डॉ. एस.पी. विश्नोई ने राजस्थान राज्य में ही इस रोग द्वारा गेहूँ में 15 करोड़ रूपये तथा जौ में 5 करोड़ रूपये की वार्षिक हानि को आंका है। इस सूत्रकृमि द्वारा गेहूँ में 1.6 लाख हैक्टर एवं जौ का 50,000 हैक्टर क्षेत्रफल प्रभावित है।

लक्षण

इस रोग के प्रारम्भिक लक्षणों को बुवाई के पश्चात् एक माह के भीतर ही देखा जा सकता है तथा जनवरी के अन्त तक फसल पर लक्षण पूर्णतः प्रकट हो जाते हैं। खेत में रोग छोटे–छोटे बिखरे हुए खंडों में दिखाई देता है तथा इन खंडों का व्यास 2–3 फुट से आरम्भ होकर पूरे खेत में फैल जाता है। खेत के ऐसे खंडों में रोगी पौधे बौने एवं पीले दिखाई देते हैं और पौधे ऊँचाई में 1–2 फुट से अधिक नहीं बढ़ पाते हैं। यदि खेत में लगातार गेहूँ या जौ की फसल उगाई जाती है तो ऐसे संक्रमित खंडों का आकार वर्ष प्रति वर्ष बढ़ता चला जाता है तथा 3–4 वर्ष में ही खेत के सभी पौधे बीमार दिखाई देने लगते हैं।

संक्रमित पौधे बौने एवं पीले होने के अतिरिक्त स्वस्थ पौधों की अपेक्षा कड़े, पतले एवं संकीर्ण पर्ण फलक वाले होते हैं। इन पौधों में दोजियाँ बहुत कम फूटती है तथा इनके तने पतले एवं कमजोर हो जाते हैं। पौधों के भूमि से ऊपरी भागों पर प्रकट होने वाले लक्षण नाइट्रोजन या फास्फोरस की कमी के लक्षणों से मिलते–जुलते होते हैं। रोगी पौधों में बालियां कम एवं कमजोर आती है और यदि बालियाँ बनती भी है तो वह समय पूर्व ही निकल आती है तथा उनमें दाने कमजोर एवं कम बनते हैं।

ग्रसित पौधे के जड़ तंत्र की वृद्धि बहुत कम हो जाती है तथा प्राथमिक जड़ का दीर्घीकरण हो जाता है और इसके अंतिम सिरे पर छोटी–छोटी बारीक जड़ों के कारण पूरा मूल–तंत्र गुच्छा–सा दिखाई देने लगता है। जब फसल चार–छः सप्ताह की हो जाती है तब जड़ों के सिरों के पास हल्की फूली हुई छोटी–छोटी सफेद मादाएं दिखाई देती हैं तथा फसल के लगभग तीन माह की हो जाने पर जड़ों के

सिरों के पास चमकती हुई सफेद रंग की मादा सूत्रकृमि देखी जा सकती है।

फसल की कटाई के लगभग दो सप्ताह पूर्व मादाएं भूरे रंग की पुटियों में परिवर्तित हो जाती है। जड़ों के जिस स्थान पर यह पुटियां जुड़ी होती हैं, उस स्थान पर पार्श्व जड़ें निकलने से जड़ें झाड़ू के आकार की गुच्छेनुमा हो जाती हैं। एक रोगी पौधे की जड़ों पर 15 से 20 तक पुटियां मिल सकती हैं।

संक्रमित फसलें

यद्यपि भारतीय अवस्थाओं में धान्य पुटी सूत्रकृमि *हैटरोडेरा एविनी* के लिये गेहूँ, जौ प्रमुख परपोषी पौधे हैं, परन्तु इनका आक्रमण राई, जई तथा ग्रेमिनी कुल के कुछ घासों पर भी होता है। **स्वरूप एवं सहयोगियों** 1963 ने विशेष परिस्थितियों में मक्का को भी इसके परपोषी के रूप में पाया है। **शर्मा** एवं **स्वरूप** ने ज्वार को भी इसके दुर्बल परपोषी के रूप में पाया है। इस सूत्रकृमि के लिये गेहूँ के खेतों में सामान्य रूप से मिलने वाला खरपतवार सेनेबिएरा पिन्नेटीफ़िडा भी परपोषी पौधे के रूप में कार्य करता है, जो क्रूसिफेरी कुल के अन्तर्गत आता है। कृषि अनुसंधान केन्द्र, दुर्गापुरा के सूत्रकृमि विशेषज्ञ डॉ. एस.पी. विश्नाई ने इसको बथुआ पर भी पाया है।

रोगजनक

हेटेरोडेरा एविनी

वर्गीकृत स्थान

फाइलम : नेमाटोडा
वर्ग (क्लास) : सेसरनेटिया
गण ((ऑडर) : ट्राईलेकिंडा
उपगण (सब ऑडर) : टिलेंकिना
अधिकृत (सुपर फैमिली) : हीटरोडरॉयडिया
कुल (फैमिली) : हीटरोडेरिडी
उपकुल (सबफैमिली) : हीटरोडेरिनी
वंश (जीनस) : हीटरोडेरा
जाति (स्पेसीज) : एवनी

आकार एवं जीवन–चक्र

हेटेरोडेरा एविनी की पुटियां राई के दाने के आकार की एवं भूरे रंग की होती है तथा फसल की कटाई के पश्चात् खेत की मृदा में बहुत अधिक संख्या में पाई जाती हैं। पुटी की लम्बाई 600 से 700 और चौड़ाई 400 से 500 माइक्रोन होती है तथा प्रत्येक पुटी में औसतन 200 से 250 तक अंडे एवं डिम्भक हो सकते हैं। प्रथम अवस्था के डिम्भकों का निर्मोचन (मोल्टिंग) अंडों के भीतर ही होता है। स्फुटन या अंडजोत्पत्ति (हैचिंग) पर द्वितीय अवस्था का डिम्भक पुटी से बाहर मृदा में आ जाता है और उचित परपोषी पौधे की खोज करता है। प्रायः ठंडे मौसम के आगमन (नवम्बर के प्रथम सप्ताह) के साथ ही संक्रामक डिम्भक (द्वितीय अवस्था) पुटियों से बाहर निकलना आरम्भ कर देते हैं और सामान्यतः बुवाई के बाद छठे सप्ताह में यह अधिकतर बाहर निकलते हैं। डिम्भकों को पुटियों से बाहर निकलने के लिये अंडजोत्पत्ति कारक (हैचिंग फैक्टर) की आवश्यकता उत्प्रेरक के रूप में होती है। खेत में खड़ी फसल में संक्रमण इन द्वितीय अवस्था के डिम्भकों द्वारा ही होता है, जो जड़ों के सिरों के समीप, सीधे बाह्य त्वचा (एपीब्लेमा) को बेधकर नव विकसित जड़ों में पूर्ण रूप से प्रवेश करके स्थानबद्ध (सेडेन्टरी) हो जाते हैं। जड़ों के भीतर इनको आगे विकसित होने में 3 से 4 सप्ताह का समय लगता है और यह डिम्भक अपने शरीर के यथाक्रम विकास के साथ–साथ तीन निर्मोचन (जड़ के अन्दर) एवं एक अण्डे में लार्वी की एक श्रृंखला को पार करते हैं। विकास की तीसरी अवस्था में नर और मादा डिम्भकों में भेद स्पष्ट हो जाता है। मादा डिम्भकों में एक जोड़ा अंडाशय तथा नर डिम्भकों में केवल एक वृषण मिलता है।

तीसरी अवस्था का नर डिम्भक पूर्णतः विकसित हो जाने पर धागेनुमा हो जाता है और उसका अग्रभाग कुछ–कुछ शुंडाकार तथा पुच्छ छोटी एवं गोलाकार होती है। इस डिम्भक में 20 से 30 (माइक्रोन) लम्बी एक शूकिका (स्टाइलेट) पाई जाती है। लगातार दो बार निर्मोचन करने के बाद इससे वयस्क या प्रौढ़ नर सूत्रकृमि निकल आता है, जो पतला एवं कृमिरूप होता है। प्रौढ़ नर कुछ दिनों तक जड़ में ही बना रहता है तथा उस दौरान यह मादा को निषेचित करता है। उसके पश्चात् यह जड़ों के बाहर मृदा में निकल आता है और शीघ्र ही मर जाता है। तीसरी अवस्था का मादा डिम्भक द्वितीय अवस्था के डिम्भक की अपेक्षा मोटा होता है। चौथी अवस्था का मादा डिम्भक अपने कुछ पतले स्वरूप को छोड़कर शीघ्र ही 0–5 मिमी. लम्बाई एवं –15 मिमी. चौड़ाई वाले प्ररूपी फ्लास्क के आकार के डिम्भक में विकसित हो जाता है। वेधन के लगभग 4–5 सप्ताह बाद यूरिया के दाने के समान सफेद प्रौढ़ मादाएं जड़ों की सतह पर बाहर निकली देखी जा सकती है। पूर्ण विकसित प्रौढ़ मादा लगभग 0–75 मिमी. लम्बी एवं 0–5 मिमी. व्यास की चौड़ी होती है। इसका रंग पहले सफेद होता है, परन्तु बाद में भूरे रंग की हो जाती है। प्रौढ़ मादा की देह गुहा लगभग पूर्णतः अंडाशयों से ही भरी होती है तथा जब अंडाणु धीरे–धीरे विकसित होकर पूर्ण विकसित अंडे में बदल जाता है, तो तब मादा की देहगुहा पूर्णतः अंडों से भर जाती है। मादा के पिछले भाग में गंदगी एवं मलवा मिला हुआ एक जेलीनुमा पदार्थ भरा होता है, परन्तु मादा इसमें अपने अंडे जमा नहीं करती है। मादा सूत्रकृमि गेहूँ व जौ की फसल के साथ ही जीवन–चक्र पूर्ण कर लेते हैं तथा अगले कुछ सप्ताहों के भीतर ही इसके शरीर का उपचर्म या क्यूटिकल कड़ा होकर कठोर प्रतिरोधी भूरी पुटी में परिवर्तित हो जाता है, जो प्रतिकूल पर्यावरण दबावों से संक्रामक इकाईयों–अंडों एवं डिम्भकों की सुरक्षा करती है। अंडों एवं डिम्भकों से भरी पुटियां अंत में मृदा में फसल की कटाई के साथ रह जाती है और रबी की परपोषी फसल के लिये निवेश–द्रव्य के रूप में कार्य करती है। इस सूत्रकृमि की एक वर्ष में केवल एक ही पीढ़ी बनती है तथा यह डिम्भक के संक्रमण करने के 9 से 14 सप्ताहों के भीतर ही अपना जीवन–चक्र पूर्ण कर लेता है।

क्रियात्मक प्रभेद

प्रारम्भ में भारत में हेटेरोडेरा एविनी के दो जीवप्ररूपों (पैथोटाइप्स) की पहचान कर ली गयी है, जिनमें से एक जीवप्ररूप केवल पंजाब, हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा के अम्बाला जिले में भी पाया जाता है जबकि दूसरा जीव प्रारूप उत्तर भारत में समस्त प्रदेश जैसे राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में पाया जाता है।

रोग–चक्र

रोग का वार्षिक आवर्तन पुटियों द्वारा होता है, जो फसल की कटाई के बाद मृदा में प्रसुप्तावस्था में पाई जाती है। पुटियों में भरे अंडे एवं डिम्भक गेहूँ या जौ की आगामी फसल के उपलब्ध होने तक प्रसुप्तावस्था में रहते हैं। इन पुटियों से डिम्भक सितम्बर माह में ही बाहर निकलना आरम्भ कर सकते हैं, परन्तु अधिकांश डिम्भक अक्तूबर के अन्त में या नवम्बर के प्रथम सप्ताह में बाहर निकलना प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि यह समय ही गेहूँ या जौ की बुवाई का होता है। पौधों की जड़ों पर सफेद रंग की मादाएं फरवरी में देखी जा सकती हैं तथा परिपक्व पुटियां मध्य मार्च में दिखाई देती हैं। फसल की कटाई के बाद यह पुटियां कुछ समय तक जड़ों के साथ ही जुड़ी रह सकती हैं, परन्तु बाद में अलग हो जाती हैं और खेत की मृदा में पड़ी रहती हैं तथा अगले मौसम में नई फसल के लिये निवेश–द्रव्य के रूप में कार्य करती हैं। यह पुटियां माप में भिन्न होती हैं तथा प्रत्येक पुटी में पाये जाने वाले अंडों की संख्या भी भिन्न–भिन्न होती हैं। भारतीय अवस्थाओं में अप्रैल में गेहूँ की फसल की कटाई के बाद दिन का तापमान बढ़ने लगता है, जो पुटियों में एक सुप्त अवस्था में छः माह तक पड़ी रहती है। सूत्रकृमि का जीवन–चक्र एक फसल काल में ही पूरा हो जाता है।

इस सूत्रकृमि के परपोषी केवल ग्रैमिनी कुल के सदस्यों तक ही सीमित हैं, जिसमें कुछ घासें भी सम्मिलित हैं। यदि यह घासें खेतों के आस–पास उपस्थित होती हैं तो तब यह विकल्पी परपोषियों के रूप में कार्य कर सकती हैं, तथापि सूत्रकृमि मुख्यतः पुटी के रूप में ही मृदा में जीवित रहते हैं। हेटेरोडेरा एविनी की पुटियां में शुष्कन अवस्थाओं

में केवल 2 या 3 वर्ष तक जीवित रहती हैं। संक्रमित खेतों में लगातार परपोषी फसलें उगाते रहना पुटियों के जीवित बने रहने के लिये अनुकूल सिद्ध होता है। खेत में इनकी संख्या अपोषक फसल जैसे सरसों, मेथी, चना एवं सब्जियां उगाकर बहुत कम की जा सकती है, जो इनके परपोषी के रूप में कार्य न करती हो।

खेत में रोग का प्रसार कर्षण क्रियाओं, निराई, गुड़ाई आदि के यंत्रों द्वारा, सिंचाई के जल द्वारा तथा पशुओं के खुरों एवं कार्यकर्ताओं के पैरों द्वारा होता है। नये क्षेत्रों में रोग के प्रसार की सम्भावना धूल भरी आंधियां चलने एवं सिंचाई के जल द्वारा होती है।

अनुकूल वातावरण

मृदा के पी एच मान एवं पुटियों की संख्या के बीच एक उच्च सार्थक सहसम्बन्ध पाया जाता है। पुटियों से डिम्भक बाहर निकलने के लिये अनुकूलतम तापमान 18 डिग्री सेंटीग्रेट होता है। डिम्भकों की अंडजोत्पत्ति तापमान में गिरावट के फलस्वरूप होती है। डिम्भकों की गति पर्याप्त नमी, वातन एवं जल–निकास वाली हल्की बालुई या दोमट मृदा में सुगमता से होती है। सूत्रकृमि ग्रस्त खेत में लगातार वर्ष प्रतिवर्ष धान्य फसलों को उगाना निवेश–द्रव्य के निर्माण में सहायक होता है। खेत में जौ या गेहूँ को उगाने से हेटेरोडेरा एविनी की संख्या पांच गुना तक बढ़ जाती है, परन्तु कुछ अपोषी फसलों द्वारा इसकी संख्या घट जाती है। खेत को एक वर्ष तक परती छोड़ने अथवा उसमें अपोषी फसलों की उपस्थिति से इनकी संख्या लगभग 60 प्रतिशत तक घट जाती है। यद्यपि खेत को दो वर्ष तक परती छोड़ने के बाद मृदा में बचे सूत्रकृमि नयी पुटियां उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं।

सूत्रकृमि प्रबंधन

इस सूत्रकृमि रोग की रोकथाम के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं :–

1. फसल–चक्र

इस रोग की रोकथाम का सबसे अच्छा उपाय फसल–चक्र का प्रयोग है। कम से कम 4 वर्ष का फसल–चक्र अपोषक फसलों के साथ अपनाना चाहिये। राजस्थान की अवस्थाओं के अन्तर्गत– मेथी, प्याज, गाजर, सरसों, चना एवं सब्जियां आदि अपोषक फसलें हैं, इनको फसल–चक्र में रखना उपयोगी रहता हैं।

2. परती छोड़ना

फसल–चक्र योजना में एक वर्ष तक भूमि को परती छोड़ने के परिणामस्वरूप 47 से 55 प्रतिशत तक सूत्रकृमियों की संख्या घट जाती है तथा आगामी वर्ष गेहूँ की उपज 85 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। इसके विपरीत भूमि को दो वर्ष तक परती छोड़ने के फलस्वरूप सूत्रकृमियों की संख्या में लगभग 75 प्रतिशत तक कमी हो जाती है और गेहूँ की उपज में 135 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

3. ग्रीष्म जुताई

सूत्रकृमि की पुटियां सुखे के प्रति संवेदी होती है। अतः ऐसी मृदा अवस्थाओं के अन्तर्गत सूत्रकृमियों की संख्या में पर्याप्त कमी आ जाती है। मई–जून में खेत की 2–3 गहरी जुताई 7 से 10 दिनों के अन्तराल पर करके खुला छोड़ने तथा खरीफ में बाजरा या मक्का की फसल उगाने से सूत्रकृमियों की संख्या काफी कम हो जाती है।

4. हरी खाद देना

सूत्रकृमि ग्रस्त खेत में बंदगोभी की पत्तियों के कटे हुए टुकड़ों को हरी खाद के रूप में देने से पौधों की जड़ों पर डिम्भकों की संख्या में भारी कमी आ जाती है। मृदा में हरी खाद के कारण सूत्रकृमि विनाशन कवकों जैसे – *आर्थ्रोबॉट्रिस ओलीगोस्पोरा* एवं *डैक्टिलेरिया थॉमसिया* आदि की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। क्रूसीफर्स कुल की फसलों जैसे सरसों, तारामीरा, राई आदि को फसल–चक्र में रखना अथवा मिश्रित फसल के रूप में उगाना बहुत उपयोगी होता है।

5. रासायनिक उपचार

सूत्रकृमिग्रस्त खेतों में अनेक प्रकार के सूत्रकृमिनाशी रसायनों द्वारा रोग का नियंत्रण हो जाता है। नवीनतम परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि बुवाई से पूर्व कार्बोफ्यूरान 3 जी. / 1.5 किलोग्राम सक्रिय तत्व / है. गेहूँ के खेत में तथा जौ में / 1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व / है. के द्वारा मृदा उपचार करना अधिक लाभकारी तथा उपयोगी पाया गया

हैं परन्तु रसायन की कीमत अधिक होने के कारण विशेष परिस्थितियों में उपयोग की सलाह दी जाती है।

6. मृदा का कार्बनिक संशोधन

(क) खेत में 25 कुंतल प्रति हैक्टर की दर से अच्छा सड़ा हुआ गोबर या कम्पोस्ट खाद डालने से मोल्या रोग में कमी आती है।

(ख) जिन खेतों में मोल्या रोग का प्रकोप होता है उन खेतों में बुआई से पूर्व नीम की खल (पिसी हुई) 10 कुंतल प्रति हैक्टर की दर से डालने पर मोल्या रोग में कमी आंकी गई है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।

(ग) जिन जौ के खेतों में मोल्या रोग का प्रकोप होता है उन खेतों में नीम के तेल से 10 मिली प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करने पर तथा खेत में केंचुए की खाद 10 कुंतल प्रति हैक्टर की दर से बुबाई से पूर्व डालने पर मोल्या रोग की तीव्रता में कमी होती है तथा उत्पादन में वृद्धि आंकी गई है।

7. रोगरोधी किस्मों का उपयोग

कृषि अनुसंधान केन्द्र, दुर्गापुरा, जयपुर के वैज्ञानिकों ने राजस्थान में इस रोग की खोज के साथ ही इसकी गम्भीरता को देखते हुए रोग नियंत्रण के विभिन्न उपाय खोजना शुरू कर दिये। जिसमें रोगरोधी की उपयोगिता देखते हुए इस पर ज्यादा ध्यान दिया गया। लगातार 1958 के बाद वर्षों के निरन्तर प्रयोगों से सन् 1964 में जौ में भारतवर्ष में प्रथम रोगरोधी स्रोत की खोज की गई जिसके रोगरोधी जीन को लोकल किस्मों में डाला जिसके फलस्वरूप 1979 में केन्द्र से ''राजकिरण'' नामक प्रथम, जौ कि किस्म विकसित की गई। इसके बाद कृषि अनुसंधान केन्द्र, दुर्गापुरा, जयपुर द्वारा आरडी 2035, आरडी 2052, आरडी 2508 और आरडी 2624 रोगरोधी किस्में विकसित की गई जिससे इस रोग के नियंत्रण में काफी सहायक सिद्ध हुई। इसी प्रकार गेहूँ में इस केन्द्र द्वारा ''राज एम.आर. 1'' नामक किस्म विकसित कर राज्यों के किसानों को अपनाने की सलाह दी गई।

2. गेहूँ का कॉकल रोग

ईयर कॉकल रोग एंग्विना ट्रिसिसाई नामक सूत्रकृमि के द्वारा होता है जिसे किसान सीड गाल, ममनी, सेहूँ व धानक इत्यादि नामों से जानते हैं। यह बीमारी देश के विभिन्न भागों में पायी जाती है और इससे कई खेत बुरी तरह प्रभावित होते हैं। यह रोग अभी भी पूर्वी भारत के कई भागों में मौजूद हैं क्योंकि इन भागों में बीज बदलने की धीमी दर और गेहूँ की किस्मों की दयनीय गतिशीलता (12 से 14 साल एक किस्म बदलने में) प्रचलित है, जहां किसान प्रति वर्ष अपना ही बीज काम में लेते हैं। जिससे वहाँ ईयर कॉकल का प्रभाव बढ़ता रहता है। बुरी तरह प्रभावित क्षेत्रों में 80 प्रतिशत तक फसल में हानि होना असाधारण सी बात नहीं है। यह बीमारी सामान्यतया उन्हीं क्षेत्रों में आता है जहां कृषि क्रियायें उतनी उन्नतिशील नहीं है। रोग ग्रसित पौधों में दानों के स्थान पर 'गेगले' होते हैं। ये गेगले भूरे या काले रंग के होते हैं। इनके अन्दर बहुत अधिक संख्या में (3,000–12,000) द्वितीय अवस्था के किशोर सूत्रकृमि रहते हैं जिनकी औसतन संख्या 6,000 प्रति गेगला होती है। ये गेगले और इनमें पाये जाने वाले अवयव शुष्क मौसम के प्रति प्रतिरोधी होते हैं और ऐसी अवस्था में ये करीब 32 वर्षों तक जिन्दा रह सकते हैं। अनुकूल मौसम जैसे, मृदा तापक्रम 15 डिग्री सेल्सियस $\pm$2, बीज की गहराई 2 से.मी. मृदा आर्द्रता 20% और मृदा वातरन्ध्र 51% मिलने पर ये गेगले फटते हैं और इनमें से द्वितीय अवस्था के किशोर डिम्भक निकलते हैं जो पोषक फसल पर आक्रमण करते हैं।

रोग से हानि

- वर्ष 1999 में मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में पवई तहसील के अन्तर्गत गांव पलोई (सिमरिया के निकट) में इयर कॉकल रोग से काफी नुकसान हुआ। छतरपुर, सतना व टीकमगढ़ जिले भी इससे प्रभावित हुए।
- वर्ष 1997 में बिहार के दरभंगा, मधुबनी, जिलों में इस रोग से काफी हानि हुई।
- वर्ष 1992 में बिहार के ही गया, पटना, नवादा और मुंगेर जिले भी इससे गम्भीर रूप से प्रभावित हुए।
- राजस्थान के टोंक एवं अजमेर जिला इस रोग से प्रभावित है।

पोषक फसलें

केवल गेहूँ ही (काठिया एवं रोटी वाला) इसका प्राकृतिक पोषक है परन्तु गेहूँ की कुछ जंगली प्रजातियां भी इस रोग

से प्रभावित होती हैं। हाल ही में ट्रिटिकेल भी एक नये पोषक के रूप में उभर कर आया है।

रोग के लक्षण

1. प्रारम्भ में रोग ग्रसित पौधे मृदा सतह के साथ–साथ परन्तु कुछ दिन पश्चात् ये पौधे उठ कर ऊपर की तरफ बढ़ते हैं। तने के आधार पर 20–25 दिनों के अन्दर सूजन दिखती है।
2. पत्तियों का संकुचित होना, ऐंठना व मुड़ना पौधे की प्रारम्भिक अवस्था के लक्षण।
3. रोगग्रस्त पौधे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और प्रभावित खेतों में छोटे–छोटे भू–भागों में इसका प्रभाव देखा जा सकता है।
4. रोगग्रस्त पौधे काफी संख्या में उपजहीन (बिना दाने के) किल्ले निकालते हैं।
5. प्रभावित पौध छोटे, चौड़े, छोटे तूड़ रहित बालियां पैदा करते हैं। ये बालियां काफी समय तक हरी रहती है और अन्त में दानों के स्थान पर गेंगले पैदा करती है।
6. कटाई व मड़ाई के समय ममनी जमीन पर गिर जाते हैं या फिर स्वस्थ दानों में मिश्रित हो जाते हैं। यदि इन दानों को बीज के तौर पर अगले वर्ष प्रयोग किया जाये तो उससे रोग में नित्यता आ जाती है।

बीमारी कैसे फैलती है

मढ़ाई के समय ये गेगले जो कड़े, अण्डाकार या गोलाकार, भूरे या काले रंग के होते हैं वो स्वस्थ दानों में मिल जाते हैं जिससे बीमारी आने की पूरी सम्भावना रहेगी। संक्रमित बीज ही फसल में बीमारी आने का प्राथमिक स्रोत हैं। जो गेगले बिजाई के समय मिटट्ी में गिरते हैं या जो बीज के साथ रहते हैं वो नमी सोख कर मुलायम होते हैं तथा फट जाते हैं जिसमें से संक्रामक द्वितीय अवस्था के किशोर डिम्भक निकलते हैं। ये किशोर डिम्भक नवोद्भिदों के वृद्धि करने वाले क्षेत्रों को खाते हैं या शुरू में ही पत्तियों के ऊत्तकों में प्रवेश कर या फिर शूक या तूड़ के ऊत्तकों में पुष्पन के समय घुस जाते हैं।

समेकित जीवनाशी प्रबन्धन

- गेगले मुक्त बीज ही बोयें या फिर संक्रमण ग्रस्त बीजों को साफ करें।
- प्रमाणित बीज, जो किसी विश्वसनीय स्त्रोत से लिया गया हो और जो गेगला मुक्त हो, उसी को बोयें।
- अगर किसानों को अपना ही बीज (पिछली फसल का) बोना हो तो उन्हें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि बीज में गेगले न हों।
- गेगले स्वस्थ दानों की अपेक्षा छोटे होते हैं और छलनी (चलनी) से आसानी से अलग किये जा सकते हैं।
- कम संक्रमित बीजों (2% से कम) में से पानी में तैरने वाली तकनीक से गेगले आसानी से अलग किये जा सकते हैं। हल्के होने के कारण गेगले पानी की सतह पर तैरते हैं और इन्हें सरलता से अलग किया जा सकता है।
- अधिक संक्रमण ग्रस्त बीजों को 2–5 प्रतिशत नमक के घोल में अलग कर सकते हैं। इसके लिए बाल्टी में 10 लीटर पानी लेकर उसमें 200–500 ग्राम साधारण नमक घोलें। फिर उसमें गेगले युक्त बीज डालें। लकड़ी या सरिया के टुकड़े से हिलायें। जैसे ही हिलायेंगे वैसे ही गेगले ऊपर घोल की सतह पर तैरने लगेंगे। इन गेगलों को किसी छलनी से एकत्र करके जला दें। जो बाकि बीज नीचे बचा रहे उसे निकालकर 2–3 बार साफ पानी से धोएं। छाए में सुखाए और बुवाई करें।
- हर चार–पांच साल बाद बीज बदलकर उन्नत प्रजातियों को ही बोयें।

क्या करें अगर बीमारी आ जाये

- खेत में बीमारी दिखते ही रोग ग्रसित पौधों को उखाड़कर जला दें।
- अगर एक बार बीमारी आ गयी तो उसका कोई इलाज नहीं है। ऐसे में किसानों को घबराहट में

किसी सूत्रकृमिनाशी दवा को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये क्योंकि इससे रोग पर नियंत्रण नहीं पाया जा सकता है।

- मढ़ाई के समय गेगलों को ओसाई से और छलनी से अलग करें।

रोग प्रबन्धन तकनीक / रणनीति का प्रसार

- रोग प्रभावित क्षेत्रों में किसानों को इस रोग से बचने हेतु बार–बार सजग रहना चाहिए जिससे वो साफ सुथरे व गेगले मुक्त बीज ही बोयें। यदि आवश्यकता हो तो वो नमक के घोल में बीज को उपचारित भी करें।
- विभिन्न कृषि प्रसार संस्थानों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, गैर–सरकारी संगठनों इत्यादि को चाहिए कि गेगले बीमारी से बचने एवं इसके प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं को किसानों को समय–समय पर बताए।

ध्यान देने योग्य कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातें

- गेगले किसी भी दशा में जहरीले नहीं होते और अगर इनकी थोड़ी बहुत मात्रा गलती से खा भी ले तो इससे मानव स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।
- प्रभावित फसल के भूसे (तूड़ा या तूड़ी) को जानवरों को खिलाने मे कोई नुकसान नहीं है।
- इस रोग के लिए कोई भी प्रतिरोधी किस्म उपलब्ध नहीं है। ''अखिल भारतीय गेहूँ सुधार परियोजना, करनाल'' के अन्तर्गत सन् 1968 से कई हजार किस्मों को परखा गया परन्तु आज तक कोई भी प्रतिरोधी किस्म नहीं मिली।

3. टुन्डु बीमारी

जीवाणु द्वारा पैदा होने वाला टुन्डु रोग (बाली का पीला सड़न या गलन या तनन रोग) इयर कॉकल सूत्रकृमि के साथ ही आती है। इस रोग को पैदा करने में जीवाणु और सूत्रकृमि (कॉरनीवैक्टीरियम ट्रिटिसाई एवं एंग्विना ट्रिटिसाई) का परस्पर संबंध होता है और यही कारण है कि अकेले सूत्रकृमि या जीवाणु इस रोग को पैदा नहीं कर सकता। शुरू में रोग के लक्षण तो ईयर कॉकल जैस ही होते हैं परन्तु कुछ समय पश्चात् जब तापक्रम कम होता है और आपेक्षिक आर्द्रता बढ़ती है तो उस समय जीवाणुओं की कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि व विकास होता है जिस कारण से पीले रंग की गोंद जैसी चीज पत्तियों एवं बालियों पर देखी जा सकती हैं सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यही है इस रोग का, कि पीले रंग की गोंद सदृश चीज आर्द्र मौसम में पत्तियों के नीचे से टपकती दिखती है जो बाद मे सूखकर कठोर, कड़े, भंगुर और कत्थई या काले रंग हो जाती है। रोग ग्रसित डंठल मर भी सकते हैं या फिर विकसित होकर बालियां निकालते हैं परन्तु ये बालियां छोटी, सकरी तथा कुछ दाने या पूरे दाने जीवाणु इनिवेश द्रव्य में बदल जाते हैं। तीक्ष्ण दशा में बालियां कोथ की पत्ती से निकल नहीं पाती है और जो डंठल है वो भी विकृत हो जाता है पौधे बौने होते हैं और किल्लों की संख्या काफी होती है तथा बालियो में पुष्प अंगो में नाश होने से दाने बिल्कुल नहीं बनते हैं। टुन्डू प्रायः तभी होता है जब वातावरण का तापक्रम कम और आर्द्रता अधिक (औसत तापक्रम 25° सेल्सियस व आर्द्रता 70 घण्टे से अधिक समय तक 95 प्रतिशत से अधिक) हो।

निष्कर्ष

यह बीमारी उन्हीं जगहों पर आती है जहां पर सालों–साल बीज बदला नहीं जाता है जिससे बीज में गेगले साल दर साल बढ़ते रहते हैं। ऐसी अवस्था में यह बीमारी बार–बार आती है। इसलिए इस पर अंकुश लगाने के लिए जरूरी है कि स्वच्छ बीज (गेगलों से मुक्त) ही बोयें।

वैसे भी रोगमुक्त दशा सुरक्षित की जा सकती है बीज को किसी विश्वसनीय स्रोत से खरीदकर या फिर गेगलेयुक्त बीज को नमक के घोल में उपचार करके। किसानों को समय–समय पर सचेत करके इस बीमारी को आने से रोका जा सकता है।

रबी फसलों में खरपतवार प्रबन्धन

दिनेश जीनगर, हरि सिंह, सीमा सेपट एवं नवल सेपट

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

खरपतवार फसल की उपज को अन्य नाश कारकों की तुलना में अधिक हानि पहुंचाते हैं। सफल फसल उत्पादन में खरपतवार हमेशा बाधक रहे हैं। हमारे देश में विभिन्न नाशकों द्वारा कृषि उत्पाद में लगभग 37 प्रतिशत खरपतवारों से, 29 प्रतिशत कीटों से, 22 प्रतिशत बीमारियों से तथा 12 प्रतिशत दूसरे नाशकों द्वारा फसलों की उपज व गुणवत्ता में कमी आती है। खरपतवार पशुओं और मानव को भी रोगी बनाते हैं। गुणवत्तायुक्त उपज व अधिक आय फसलों से प्राप्त करने के लिए खरपतवारों का नियंत्रण करना अति आवश्यक है। खरपतवारों की रोकथाम के बहुत सारे तरीके है जैसे– निराई–गुड़ाई, मशीनों, जीवों व रसायनों द्वारा का समर्थन कर सकते हैं। परन्तु इन सारे तरीकों की अन्तर्वर्ती सीमाएं हैं। खरपतवार रोकथाम की कोई भी एक विधि विभिन्न क्षेत्रों में सफल नहीं हैं। यद्यपि सब तरीकों में, फसल व फसल प्रणाली में खरपतवार प्रबन्धन के लिए खरपतवारनाशी रसायन एक अच्छा, सस्ता (कम खर्चीला) व सरल तरीका है, इसलिए विभिन्न फसल प्रणालियों में खरपतवार प्रबन्धन के लिए खरपतवारनाशी रसायनों की सिफारिश की जाती है।

खरवतवार नियंत्रण के सामान्य तरीके

अच्छी फसल खुद खरपतवार को मारती है। सस्य क्रियाओं से भी खरपतवारों की रोकथाम करके अच्छी फसल ले सकते हैं। परन्तु ये सस्य क्रियायें सभी फसलों में एक जैसी नहीं कर सकते, इसके लिए कुछ साधारण प्रयोगों को अपना सकते हैं।

1. **मृदा सोलेराईजेशनः** यह खरपतवार नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें पोलीथिन सीट (50–100 म्यू) का प्रयोग करते हैं। लाईनों के बीच में मृदा के ऊपर इस पोलीथिन सीट को बिछा देते हैं। गर्मी के मौसम (मई–जून) में जुती हुई परती भूमियों में भी इस सीट को बिछाकर खरपतवारों की रोकथाम के साथ–साथ हानिकारक कीटों एवं निमेटोड का नियंत्रण कर सकते हैं।

2. **पुरानी सीड बेड तकनीकीः** यह खरपतवार रोकथाम की पुरानी तकनीकी है। इस विधि में बुवाई के पहले भूमि की सिंचाई करते हैं और 15–20 दिन के लिए भूमि को वैसा ही छोड़ देते हैं, जिसमें सभी वार्षिक खरपतवार उग आते हैं। इसके बाद जुताई करके या पैराक्वाट (1–2 प्रतिशत) का छिड़काव करके इन खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं । इसके बाद फसल की बुवाई करते हैं।

- **खेत की अच्छी तैयारी द्वाराः** इस विधि में खेत की दो या तीन बार जुताई करके हर बार पाटा लगाते हैं। जिससे मृदा की नमी बरकरार रहती है। ऐसी भूमि में अंकुरण अच्छा तथा एक जैसा होता है। खरपतवार न होने से फसल तथा खरपतवार स्पर्धा भी कम हो जाती है।
- **शुद्ध व साफ–सुथरा बीजः** साफ–सुथरा व खरपतवारों के बीजों से रहित बीज की बुवाई करें।
- **बोने की विधि, समय और बीज की मात्राः** बुवाई का सही तरीका क्रॉस बुवाई करें। पछेती बुवाई में 20–30 प्रतिशत अधिक बीज दर रखें।
- **उर्वरकों की मात्रा व प्रयोग करने का समय :** नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश की सही मात्रा का प्रयोग करें। फसल की मांग के अनुसार नाइट्रोजन उर्वरक की कुछ अधिक मात्रा देने से खरपतवार कम उगते हैं।

- **निराई–गुडाईः** फसल अवधि के दौरान कई बार निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों का नियंत्रण करना पड़ता है। वैसे फसल बोने के बाद में तथा उगने से पहले खरपतवारनाशी दवाई छिड़ककर और बुवाई के 25–30 दिन के बाद एक बार हाथों से निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों का नियंत्रण करना एक अच्छा तरीका है वैसे खरपतवारनाशिओं द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण करना सस्ता व आसान तरीका है।
- **मिट्टी चढ़ानाः** कुछ फसलों में मिट्टी चढ़ाना खरपतवार नियंत्रण का एक अच्छा तरीका है। कुछ फसलें जिनकी रोपाई मेढ़ों पर की जाती है। उनमें 35–40 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने से खरपतवारों का नियंत्रण होने के साथ ही उर्वरकों की छिड़की हुई मात्रा भी अच्छी तरह से मृदा में मिल जाती है जिसका पौधे आसानी से उपयोग कर लेते हैं ।
- **फसल के सूखे अवशेषों का बिछावनः** फसलों के अवशेष जो आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होते उदाहरण के तौर पर केला की पत्तियां तथा कुछ फसलों का भूसा एवं पत्तियों को फसलों की दो पंक्तियों के बीच में बिछा देते हैं। जिससे खरपतवारों के बीजों का अंकुरण नहीं होता है। इस प्रकार फसल के पूरे जीवनकाल में फसल अवशेष, खरपतवार प्रबधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- **मृदा अच्छादन हेतु जीवित मल्च, कवर फसलें, अन्तः व मिश्रित फसलें उगानाः** दलहनी फसलें भूमि के स्वास्थ्य और ऊपजाऊपन को ठीक रखकर खरपतवारों की भी रोकथाम करती है। कम अवधि वाली दलहनी फसलों को धान्य फसलों की दो लाईनों के बीच में बो सकते हैं। इस प्रकार फूल वाली व अन्य फसलों में मिश्रित फसलें उगाकर खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण कर सकते हैं। अन्तः फसलों के रूप में चारे और दलहनी फसलें जैसे बरसीम, रिजका (लूसर्न, फ्रेंन्चबीन आदि लेने से खरपतवार तो नियंत्रित होते ही है, साथ ही भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ती है। इसके अलावा प्रति इकाई क्षेत्र उपज और शुद्ध लाभ भी अधिक मिलती है। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु कम बढ़ने वाली फसलें जैसे टमाटर, आलू, पत्तागोभी व फूलगोभी आदि को भी दूसरी फसलों के साथ ले सकते हैं।

3. **फसलों में खरपतवारनाशी का प्रयोग** : सस्य क्रियाओं द्वारा खरपतवारों की रोकथाम करके फसलों की भरपूर उपज ले सकते हैं। ये सस्य क्रियायें सभी फसलों में एक जैसी नहीं कर सकते हैं। कुछ चुनिन्दा क्रियायें ही शुरूआत में फसल को खरपतवारों की स्पर्धा से बचाती है।

3.3. रबी फसलों में खरपतवारनाशक दवाईयों की सिफारिश

फसल	खरपतवारनाशी	मात्रा कि. ग्रा./है.	छिड़कने का समय	अवस्था गुण स्थिति
गेहूँ	सल्फोसल्फ्यूरोन	0.03	बुवाई के 30–35 दिन बाद	सभी खरपतवारों को मारती है। गुल्ली डण्डा का सफाया भी करती है।
	क्लोडीनाफॉप प्रोपागाइल उसके बाद मैटसल्फ्यूरोन मिथाईल	0.06 और 0.006	बुवाई के 30–35 दिन बाद	सभी खरपतवारों का नाश करती है। इन खरपतवारनाशियों को मिलाकर न छिड़के।
	क्लोडीनाफॉप प्रोपागाइल बाद में कारफेन्ट्राजोन मिथाईल	0.06 और 0.03	बुवाई के 30–35 दिन बाद	सभी खरपतवारों का नाश करती है। इन खरपतवारनाशी रसायन को मिलाकर न छिड़के।
चना, मसूर, मटर	फ्लूक्लोरेलिन	1.0	बोने से पहले खेत की अन्तिम जुताई के समय	सभी खरपतवारों का नाश खेत की अन्तिम जुताई के समय छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह से मिला दें।
	पेन्डीमैथालिन	1.0	बुवाई के 1–2 दिन बाद	सैजिज व गाजर घास के अलावा सभी खरपतवारों का नाश करती है।

रेपसीड और सरसो	फ्लूक्लोरेलिन	1.0	बोने से पहले भूमि में मिला दें	सभी खरपतवारों का नाश करती है। खेत की अन्तिम जुताई के समय छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह से मिला दें।
	पेन्डीमेथेलिन	1.0	बुवाई के 1–2 दिन बाद	सैजिज व गाजर घास के अलावा सभी खरपतवारों का नाश करती है।
आलू	पेन्डीमेथेलिन	1.0	बुवाई के 1–2 दिन बाद	सैजिज व गाजर घास के अलावा सभी घास कुल के खरपतवारों का नाश करती है। इसे छिड़कते समय भूमि में अच्छी नमी होना चाहिए।
	मेट्रीब्यूजिन	0.5	बुवाई के 1–2 दिन बाद	गाजर घास, मोथा सहित सभी खरपतवारों का सफाया करती है।
	पैराक्वाट	0.5	आलू उगने के बाद 2–5 प्रतिशत उग आये तब	5 प्रतिशत उगने के बाद छिड़के। अधिक देरी करने पर फसल को भी नुकसान कर सकते हैं।

हमेशा यह देखा गया है कि कुछ खरपतवारनाशी रसायन बुवाई से पहले छिड़ककर मृदा में मिला देने से और बुवाई के 20–30 दिन बाद एक बार निराई करने से खरपतवारों से छुटकारा मिलता है। रबी की फसलों में एक बार खरपतवारनाशी दवाई का छिड़काव और एक निराई ही वार्षिक खरपतवारों की रोकथाम के लिए काफी है। खरपतवारनाशी दवाईयों से खरपतवारों की रोकथाम आर्थिक दृष्टि से सस्ती, आसान व बेहतर है।

खाली पड़ी या परती भूमि में खरपतवारनाशी रसायनों को छिड़कने का सुझाव

खाली/परती भूमियों में एकवर्षीय व बहुवर्षीय खरपतवारों की संख्या अत्यधिक पाई जाती है। जिनमें गाजर घास, मोथा, काली घास, एमेरेन्थस इत्यादि खरपतवार पाये जाते हैं। इन सबका नाश करने के लिए निम्नांकित रसायनों का प्रयोग करें।

- **ग्लाइफोसेट:** यह एक सर्वांगी खरपतवारनाशी दवाई है, जो एकवर्षीय व बहुवर्षीय खरपतवारों का नाश करने के लिए अधिक कारगर है। यह भूमि के अन्दर खरपतवार की जड़ तक पहुंच कर उसे नष्ट करती है। इस दवाई को सोडियम सल्फेट, यूरिया, सुक्रोज व नमक के साथ भी मिलाकर निम्नांकित तरीके से प्रयोग कर सकते हैं।

- ग्लाइफोसेट 1.0 किग्रा. प्रति हैक्टर + सोडियम सल्फेट (2 प्रतिशत) + सुक्रोज (2 प्रतिशत)
- ग्लाइफोसेट 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर + यूरिया (2 प्रतिशत) + सुक्रोज (2 प्रतिशत)
- ग्लाइफोसेट 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर + नमक 2 प्रतिशत

- **पैराक्वाट:**– यह एक संपर्क खरपतवारनाशक है। सभी प्रकार के खरपतवारों की रोकथाम के लिए पैराक्वाट 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर का छिड़काव करें। यह एकवर्षीय व बहुवर्षीय खरपतवारों की रोकथाम करने के लिए एक अच्छा व असरदार खरपतवारनाशी है। ये भूमि के अन्दर खरपतवार की जड़ व राइजोम को नष्ट नहीं करता है, केवल भूमि के ऊपर के भाग को ही मारता है।

सारांश

खरपतवारों की रोकथाम के लिए खरपतवारनाशी के साथ–साथ हाथ से निराई–गुड़ाई करना अधिक सार्थक व अच्छा तरीका है, चाहे खरपतवारनाशक दवाई खरपतवार उगने से पहले या उगने के बाद छिड़की गई हो। हाथ से निराई करके खरपतवारों की रोकथाम तभी ही लाभदायक सिद्ध होगी, जब खरपतवारनाशी दवाई उगने से पहले छिड़की गई हो या उगने के बाद छिड़की गई हो उगने के बाद छिड़की गई दवाई घास कुल के खरपतवारों का सफाया करती है। कोई भी खरपतवारनाशी दवाई और अन्य खरपतवारनाशक तरीका फसल बुवाई के 40 दिन बाद प्रयोग करने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार खरपतवार प्रबन्धन के मिले–जुले तरीके खरपतवारनाशक दवाई और हाथ से निराई दोनों को साथ–साथ प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है।

खरपतवार एवं उनका प्रबंधन

सचिन मलिक, विकास जून, ममता काजला, राहुल कुमार, अंकुर चौधरी, गिरीश पाण्डेय, आर के सिंह, आर एस छोकर एवं आर के शर्मा

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

हमारी खरपतवार उगाई जाने वाली फसलों से पूर्ण लाभ उठाने नहीं देती है। किसान के द्वारा उगाई जाने वाली फसल को खरपतवार प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से हानि पहुंचाते हैं। उगाई जाने वाली फसल की पैदावार को लगभग 50–90 प्रतिशत तक हानि पहुंचाते हैं। कुछ खरपतवार मृदा से पोषक तत्वों को फसल की अपेक्षा अधिक मात्रा में शोषित करते हैं और फसल को अधिक हानि पहुंचाते हैं।

खरपतवारों के प्रभावी होने के कारण

अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण खरपतवार किसानों की फसल को अधिक हानि पहुंचाते हैं जिसका वर्णन निम्नलिखित है।

1. फसल के बीजों की अपेक्षा खरपतवार के बीजों का अकुंरण शीघ्र होता है। वे फसल के पौधे के साथ प्रकाश, नमी, पोषक तत्वों के लिए तेजी से संघर्ष करते हैं। इनमें खरपतवारों की कुछ जातियां जैसे–जंगली चौलाई, सत्यानाशी, मंडूसी व लोमड़ घास नियमित समयांतर पर अंकुरित होती रहती हैं।
2. फसल के पौधे की अपेक्षा खरपतवारों पर फूल शीघ्र आते हैं। बीज अधिक मात्रा में व फसलों से जल्दी पकते हैं। कभी–कभी फसलों में खरपतवार इतनी अधिक मात्रा में उग जाते हैं कि उनको नष्ट करना असंभव हो जाता है।
3. खरपतवारों की जड़ें, फसलों की जड़ों की अपेक्षा मृदा में अधिक गहराई तक प्रवेश करती है जिससे पोषक तत्वों व नमी को ज्यादा ग्रहण करती है।
4. फसल के बीजों की अपेक्षा खरपतवारों के बीजों की अंकुरण शक्ति अधिक समय तक बनी रहती है।
5. कुछ खरपतवारों के बीजों का रंग कुछ फसलों के बीजों के आकार एवं रंग से मिलता–जुलता होता है, जिससे खरपतवारों के बीजों को फसल के बीजों से अलग करना असंभव हो जाता है। जैसे सरसो के बीज, सत्यानाशी के बीज मिल सकते हैं।
6. जिन मृदाओं में फसल का बीज अंकुरित नहीं होता है वहां कुछ खरपतवार का बीज अंकुरित हो जाता है।
7. फसलों के पौधों की अपेक्षा खरपतवार के पौधे बिमारियों एवं कीट पतंगों के प्रति कम प्रभावित होते हैं।
8. जिस मृदा नमी पर फसलें नष्ट हो जाती है वहाँ खरपतवार पूर्णतया वृद्धि करते हैं।
9. फसलों की अपेक्षा, खरपतवारों के पौधे जलवायु परिवर्तन से कम प्रभावित होते हैं।
10. कुछ खरपतवार के पौधे अन्य विकारों वाली मृदा जैसे ऊसर, अम्लीय, कंकरीली, जलमग्न आदि भूमि में वृद्धि कर लेते हैं।

खरपतवारों के प्रति फसल की प्रतियोगिता

खरपतवारों से फसलें निम्न गुणों के कारण अधिक प्रतियोगिता कर सकती है।

1 खरपतवार के पौधे की अपेक्षा बोई गई फसल के पौधे की वृद्धि तीव्र गति से होनी चाहिए।

2 किसान द्वारा बोई गई फसल का अंकुरण शीघ्र एवं समान होना चाहिए।

3 फसल के पौधे की जड़ें भूमि में गहराई तक जानी चाहिए एवं भूमि की सतह पर फसल की पत्तियां अधिक फैलनी चाहिए।

4 फसल के पौधों में अधिक पत्तियां एवं पत्तियों पर अधिक पर्णरन्ध्र होने चाहिए।

5 खरपतवार के पौधों की अपेक्षा फसल के पौधों को मृदा से आवश्यक पोषक तत्व एवं जल अधिक मात्रा में ग्रहण करने चाहिए।

6 हमें ऐसी फसल बोनी चाहिए जो जलवायु को प्रभावित कर सके।

फसलों को खरपतवार रहित रखने की क्रांतिक अवस्था

वार्षिक फसलों में यदि खरपतवार बुआई के बाद 15 से 30 दिन के अन्तराल पर निकाल दिए जाए तो फसल की उपज पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। अगर फसल की बुआई के 30 दिनों से अधिक समय होने के बाद हम

खरपतवार को नष्ट करते हैं तो फसल की उपज में कमी आती है।

गेहूँ

गेहूँ की फसल में बुआई के 21 दिन बाद प्रथम सिंचाई करते हैं। प्रायः जब तक सभी खरपतपार अंकुरित हो जाते हैं। अतः हमें 20–30 दिन के अन्दर ही खरपतवार नष्ट कर देने चाहिए।

धान

धान की फसल के साथ खरपतवार अंकुरित हो जाते हैं। अतः बुआई के 25–30 दिन के अन्दर खरपतवार नष्ट करें। 30 दिन तक अगर खरपतवार निकाले नहीं गए तो खरपतवार खेत में दोबारा उग जाते हैं सभी खरपतवार 15 दिन से पहले ही अंकुरित नहीं हो पाते हैं।

गन्ना

बसन्तकालीन गन्ने की फसल फरवरी–अप्रैल में बोते हैं। गन्ने के बोने के बाद चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवार अधिक उगते हैं। अधिक ताप, नमी व प्रकाश काल के कारण खरपतवारों की वृद्धि तेजी से होती है। अतः गन्ने 30–120 दिन बाद तक खेत को खरपतवार रहित रहना चाहिए।

खरपतवारों से हानियां :– खरपतवार विभिन्न प्रकार से हानिकारक होते हैं; जिनका वर्णन निम्न प्रकार से दिया गया है।

1 **मृदा नमी पर प्रभाव** :– खरपतवार के पौधे भी मृदा में फसलों के पौधे की भांति नमी का ग्रहण करते हैं। कुछ खरपतवार की जल मांग शुष्क फसल की जल–मांग से अधिक होती है।

2 **मृदा में पोषक तत्वों पर प्रभाव** :– मृदा में विभिन्न पोषक तत्व जो फसल के पौधे के लिए उपयोगी होते हैं, वे खरपतवारों द्वारा 7–20 प्रतिशत तक ग्रहण कर लिये जाते हैं। कुछ खरपतवार गेहूँ के खेत से 17–20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर चूस लेते हैं।

3 **फसलों की उपज पर प्रभाव** :– फसल में अधिक खरपतवार उत्पन्न होने पर खरपतवारों के द्वारा 5–90 प्रतिशत तक फसल की उपज में कमी आ जाती है।

4 **फसलों के गुणों पर प्रभाव** :– खरपतवारों की वजह से कई फसलों के दानों में तेल एवं प्रोटीन का प्रतिशत कम हो जाता है। गन्ने के पौधे में चीनी प्रतिशत कम हो जाती है। सब्जियों के गुणों पर भी कुप्रभाव होता है और चारे की फसल के गुण भी नष्ट हो जाते हैं। खरपतवार उगने से इन सभी फसलों की गुणवत्ता कम हो जाती है जिससे बाजार में फसलों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

5 **रोग एवं कीटों का आरक्षण** :– खरपतवार के पौधे

तालिका : विभिन्न फसलों के प्रमुख खरपतवारों की सूची

फसल	खरपतवार
रबी की फसलें	
गेहूँ व जौ	बथुआ, कृष्णनील, हिरनखुरी, मंडूसी या गेहूँसा (फैलेरिस मानइर), जंगली जई, मोथा, दूब, लोमड़ घास, पोआ, जगंली मेथी, जंगली पालक, मटरी आदि
चना, मटर, मसूर, आलू, सरसों, अलसी	बथुआ, कृष्णनील, मटरी, गेगला, हिरनखुरी, गजरी, कँटीली, मोथा व दूब।
बरसीम	कांसनी, दूब, मौथा, कृष्णनील, कटीली
तंबाकू	ओरोबंकी, मोथा, दूब, हिरणखुरी, सैंजी आदि
खरीफ की फसल	
धान	संवक, बरटा, बरटी, कोदों, मोथा, जंगली धान, बानरा आदि
मक्का	हजार दाना, हुलहुल, चौलाई, दूब व मौथा आदि।
ज्वार–बाजरा	हजार दाना, हुलहुल, चौलाई, दूब, मोथा व बरु घास आदि।
सोयाबीन, मूंग	हजार दाना, हुलहुल, गुम्बा, जंगली जूट, चौलाई, सफेद मुर्ग सांवा, कोदो, मकई, दूब व मोथा आदि।

फसल के पौधे पर आक्रमण करने वाले विभिन्न कीट–पंतगों व बिमारियों के जीवाणुओं को शरण देकर फसलों को हानि पहुंचाते हैं। गेहूँ, जौ व जेई पर लगने वाली तने की रस्ट नामक बीमारी के रोगाणु जंगली जई व क्वैक घास पर शरण लेते हैं।

6 **कृषि यन्त्रों, मशीनों एवं पशुओं की आयु पर प्रभाव** :–जिन खेतों में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। वहां पर उनकों नष्ट करने के लिए बार–बार जुताई व गुड़ाई करनी पड़ती है। जिसके कारण कृषि पर लागत मूल्य बढ़ जाती है।

7 **भूमि की उत्पादकता पर प्रभाव** :– मृदा में खरपतवार अनेकों पोषक तत्वों का उपयोग करके मृदा उत्पादकता को कम करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ खरपतवार मृदा में अपनी जड़ों द्वारा विषैले पदार्थ छोड़ते हैं, जो आगे बोई जाने वाली फसल के लिए बहुत हानिकारक होते हैं। कवक घास की जड़ों से निकले हुए पदार्थ अनेकों फसलों विशेष रुप से मटर व गेहूँ की फसलों के अंकुरण व वृद्धि पर कुप्रभाव छोड़ते हैं।

8 **किसान की आय पर प्रभाव** :– खरपतवार खेत में उगने पर उनके नष्ट करने के लिए हुई अतिरिक्त धन राशि व फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए अतिरिक्त पोषक तत्व व सिंचाई में व्यय कृषक की आय को कम करती है।

9 **नहर एवं सिंचाई नालियों में पानी का ह्रास** :– खरपतवार, नहरों एवं सिचांई की नालियों में उगकर पानी बहने में रुकावट डालते हैं। साथ ही साथ इनकी जड़ों के सहारे पानी रिसकर नष्ट हो जाता है।

10 **पशु उत्पादित पदार्थों पर प्रभाव** :– कुछ खरपतवार जैसे हुलहुल जब दूध देने वाले पशु द्वारा खा ली जाती है तो उनके दूध से एक विशेष प्रकार का अवांछित गंध आता है। धतूरा आदि अनजाने में पशु द्वारा खा लिया जाये तो पशु की मृत्यु हो सकती है। ये मनुष्य के लिए भी हानिकारक होते हैं। यह त्वचा में खुजली, चिड़चिडापन आदि रोग पैदा करते हैं।

खरपतवारों का वितरण

- **वायु द्वारा**:–कुछ खरपतवारों के हल्के बीज एक स्थान से दूसरे स्थान वायु द्वारा फैला दिए जाते हैं।
- **जल द्वारा**:– ऐसे खरपतवार एवं उनके बीज नदियों, नहरों व सिंचाई चैनलों के माध्यम द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचा दिए जाते हैं।
- **पशु द्वारा** :–ऐसे खरपतवार जिनमें हुक जैसे गोखरु या कांटे आदि होते हैं। एक स्थान से चरते हुए पशुओं के शरीर लगकर दूसरे स्थान तक पहुंच जाते हैं।
- **मनुष्य द्वारा** :–मनुष्य भी खरपतवारों के फैलाव में सहायता करता है। बिना गली–सड़ी गोबर की खाद को खेत में डालने पर, पशुओं के चारे में खरपतवारों को खिलाने आदि के द्वारा एक स्थान से खरपतवार दूसरे स्थान तक फैलते हैं।
- **फार्म मशीनों के द्वारा**:– कृषि यन्त्र भी अपने साथ खरपतवारों को एक खेत से दूसरे खेत में पहुंचाते हैं।
- **फसल बीजों के साथ**:– बिना सफाई किया हुआ फसल बीज अथवा फसल बीज के समान मिलते–जुलते खरपतवार बीज भी फसल बुआई के साथ स्वतः ही एक खेत से दूसरे खेत में पहुंच जाते हैं।

खरपतवार नियंत्रण एवं रोकथाम

खरपतवारों के बारे में किसी ने सच ही कहा है कि ''एक बार बोये व सात साल पाये''। अतः उपरोक्त बात को ध्यान में रखकर निम्न उपाय किए जाने चाहिए।

1 **खरपतवार रहित शुद्ध बीज को बोना**:– कुछ खरपतवारों के बीजों को मनुष्य फसल के बीजों से आसानी से अलगकर सकते हैं जैसे गेहूँ, जौ एवं चना आदि से बथुआ, सत्यानाशी आदि के बीजों को आसानी से अलग करके शुद्ध बीज प्राप्त करते हैं।

2 **कृषि में प्रयोग की जाने वाली मशीने व यंत्र साफ हो**:– किसान जब कृषि यन्त्रों का प्रयोग निराई–गुड़ाई एवं जुताई के इसलिए करता है तो उस समय दूसरे खेत में जुताई करने से पहले मशीनों एवं यन्त्रों को अच्छी तरह से साफ करना चाहिए, जिससे खेत से खरपतवारों के बीज दूसरे खेत में न पहुंच पाए।

3 सिंचाई की नालियों व नहरों के किनारे उगे हुए खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए जिससे कि खरपतवारों के बीज सिंचाई के समय खेत में न पहुंच पाए।

4 पशुओं को खरपतवार रहित चारा, घास व दाना खिलाना चाहिए।

5 अच्छी प्रकार के गले–सड़े व शुद्ध खाद को खेतों में प्रयोग किया जाना चाहिए।

यान्त्रिक विधियां

किसान को अपने खेत से खरपतवारों को चुन–चुनकर हाथ से उखाड़ देना चाहिए। यह विधि छोटे क्षेत्रों में उपयुक्त होती है।

- **हाथ से निराई–गुड़ाई करना:–** इस विधि में खरपतवारों को नष्ट करने के लिए खुर्पी, फावड़ा, भगोडी (कसोला) व हैड हो का प्रयोग करते हैं।

- **जुताई द्वारा नष्ट करना:–** फसल बोने से पहले हमें खेत जुताई करना एवं भूमि को खुली छोड़ना आवश्यक है जिससे वायु एवं धूप मे सूखकर खरपतवार नष्ट हो जाए।

रासायनिक विधियाँ

फसल	खरपतवारनाशी	सक्रिय तत्व मात्रा (ग्रा0/है.)	व्यापारिक उत्पाद मात्रा (ग्रा./है.)	प्रयोग का समय	खरपतवार का नियंत्रण
गेहूँ	पेन्डीमेथलीन (30ई.सी.)	1000	3325	अंकुरण से पूर्व, बुआई के 2–3 दिन के बाद	घास व चौड़ी पत्ती के खरपतवार
	मैटसल्फ्यूरॉन मिथाइल (20 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.)	4–6	20–30	बुआई के 30–35 दिन के बाद	सिरसियम आरवेक्स और रुमेक्स सहित केवल चौड़ी पत्ती के खरपतवार
	सल्फोसल्फ्यूरॉन (75 प्रतिशत पी.)	25	33	बुआई के 30–35 दिन के बाद	संकरी पत्ती तथा अन्य चौड़ी पत्ती के खरपतवार
जौ	2–4 डी ई.ई. (34 प्रतिशत डी.सी.)	500	1470	बुआई के 30–35 दिन के बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार
	आइसोप्रोट्यूरॉन (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी)	750–1250	1500–2500	बुआई के 30–35 दिन के बाद	संकरी पत्ती के खरपतवार (जंगली जई, गुल्ली डंडा)

कृषकों को लाभान्वित करती जैविक खेती

दीपक कुमार, देवमणि बिंद, जयदेव कुमार, सुरेश कुमार एवं एस के सिंह

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतवर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। सिक्किम राज्य देश का पहला पूर्ण जैविक कृषि राज्य है जिसने 2003 में जैविक मॉडल को अपनाया था। ऐसा ही प्रयत्न सभी राज्यों को भी करना होगा। रसायन मुक्त भोजन पाने के लिए जैविक कृषि एक आवश्यक क्रिया है। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन बढ़ाना हमेशा से आवश्यक रहा है।

अधिक उत्पादन के लिए खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों, जहरीले कीटनाशकों का उपयोग प्रकृति के जैविक और अजैविक खेती के बीच आदान–प्रदान के चक्र को (इकोलाजी सिस्टम) प्रभावित करता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति खराब हो जाती है, साथ ही इससे जल, भूमि, वायु और वातावरण भी दूषित हो रहा है। इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिए जैविक उर्वरकों एवं दवाईयों का उपयोग कर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। फलस्वरुप भूमि, जल एवं वातावरण शुद्ध रहेंगे एवं मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे।

जैविक कृषि वह पद्धति है, जहां पर्यावरण और प्रकृति की स्वच्छता व संतुलन रखते हुए मृदा की संजीवता, जल की गुणवत्ता और जैव विविधता आदि को बनाए रखते हुए पर्यावरण एवं वायु को प्रदूषित किए बिना दीर्घकालीन टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस पद्धति में जीवाश्म व प्राकृतिक संसाधनों से उत्पन्न कार्बनिक अवशिष्ट का यथा स्थान उपयोग किया जाता है। जैविक कृषि में उद्यान, जड़ी–बूटी, मित्र कीट एवं स्वयं मनुष्य, सभी अंग मिलाकर कृषि संतुलन बनाए रखते हैं। भारत में जैविक खेती प्रणाली कोई नई नहीं है। यह प्राचीन समय से होती आ रही है। ये जैविक कचरे के उपयोग (फसल अवशेष, पशु व खेत कचरा और जलीय कचरा) तथा अन्य जीवाणुओं द्वारा उत्तम स्वस्थ मिट्टी रखने के लिए मुख्य रुप से भूमि की खेती और मृदा शक्ति बनाये रखने के उद्देश्य से की गई एक कृषि प्रणाली है।

जैविक खेती एक अनूठी प्रबंधन प्रणाली है जो जैव विविधता, जैविक चक्र और मिट्टी में विभिन्न जैविक गतिविधियों सहित कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र को स्वस्थ्य बनाता है।

जैविक खेती के अन्तर्गत क्या–क्या करें

1. फसल–चक्र में दलहनी फसलों का समावेश अनिवार्य रुप से किया जाए ताकि मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण हो सके।
2. मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी/अधिकता जानने के लिए मृदा तथा जल का परीक्षण कराएं।
3. जैव–उर्वरकों (राइजोबियम, एजेटोवेक्टर, एजोस्पाइरिलम आदि) का प्रयोग सिफारिश के आधार पर उपयोग करें।
4. रसायनिक तत्वों से मुक्त जल से सिंचाई करें।
5. कृषकों द्वारा उत्पादित/प्रकृति प्रदत्त जैव अवशेष तथा बायोएजेंट का प्रयोग सिफारिश के आधार पर उपायोग करें।
6. गहरी जुताई करके केचुएं की खाद व हरी खाद का

अधिकाधिक प्रयोग करें।

7 फसलों के रोग व कीट नियंत्रण हेतू जैविक तरल खाद/तरल कीटनाशी बायोपेस्टीसाइड, जैविक बीजोपचार (सूर्य किरण, गरम जल व अग्निहोत्री) जैसी परम्परागत पद्धतियों का प्रयोग करें।

8 बीजों की बुवाई के पूर्व अनिवार्य रुप से जैव पद्धतियों द्वारा उपचारित करके ही बुवाई करनी चाहिए।

9 खरपतवार नियन्त्रण हेतू समय–समय पर निराई–गुड़ाई, समय पर बुवाई रोपण, बुवाई की सही पद्धति को अपनायें।

10 मल्चिंग हेतू जैव अवशेष का ही प्रयोग करें और फसल अवशेष को मृदा में ही मिला दें।

11 कृषि वानिकी को अपनाकर जल संरक्षण को बढ़ावा दें।

12 फसलों की कटाई भौतिक परिपक्वन अवस्था पर ही करें।

13 एकीकृत कृषि प्रणाली को बढ़ावा दें जैसे फसलोत्पादन के साथ–साथ पशुपालन, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन और जड़ी–बूटी उत्पादन आदि को अपनाएं।

14 मृदा सशक्तिकरण हेतू गोबर की खाद तथा हरे चारे वाली फसलों का प्रयोग खाद के रुप में करें।

15 वृक्षों की कटाई न करें तथा पशुओं को अत्यधिक ना चराएं।

जैविक कृषि के अन्तर्गत क्या ना करें

1 दलहनी/तिलहनी फसलों की कटाई जमीन की सतह से ना करें ना ही पौधों की जमीन से उखाड़ें।

2 मित्र कीट/जंतुओं को हानि ना पहुचाएं।

3 खेत की कम से कम जुताई करें ताकि मृदा संरचना को संरक्षित कर सकें।

4 कारखाने के प्रदूषित जल से फसलों की सिंचाई ना करें।

5 फसल अवशेष/जैव अवशेष को ना जलाएं।

6 रासायनिक उर्वरकों/कृषि रसायनों का प्रयोग ना करें।

7 बिना मार्गदर्शक के नया जैविक उत्पाद प्रयोग में ना लाएं।

जैविक कृषि के अन्तर्गत होने वाले लाभ

1 भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि तथा मृदा गुणवत्ता में सुधार।

2 भूमि की जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी।

3 फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।

4 सिंचाई अंतराल में वृद्धि।

5 रसायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी।

6 भूमि से जल के वाष्पीकरण में कमी तथा खेत में लंबे समय तक नमी का बना रहना।

7 भूमि के जलस्तर क्षमता में वृद्धि।

8 मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी।

9 कचरे का उपयोग खाद बनाकर उनसे होने वाली बिमारियों में कमी।

10 जैविक खाद से उत्पादित खाद्य पदार्थ लम्बे समय तक खराब हुए बिना सुरक्षित बने रहते हैं।

11 कृषकों को जैविक खाद उपयोग कर कम लागत तथा अधिक लाभ 30–40 प्रतिशत।

12 मृदा कटाव में होने वाले ह्रास में रोकथाम।

13 कृषि कार्य में जीवाश्म ऊर्जा के उपयोग को कम करने के लिए उपयोगी है।

14 जैविक कृषि के अन्तर्गत रोजगार में वृद्धि।

15 जैविक खेती द्वारा मृदा की लंबी अवधि तक उर्वरता को बनाए रखता है।

16 मृदा का तापमान में वृद्धि करके बीज अकुंरण में उपयोगी सिद्ध हुआ है।

17 कृषि लागत में कमी।

18 जैविक कृषि का उपयोग करके ग्लोबल वार्मिंग के खतरे को कम किया जा सकता है।

19 अंतर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पादन की गुणवत्ता की कसौटी पर खरा उतरना।

20 जैविक खेती खाद्य पदार्थों के पोषक तत्वों में वृद्धि तथा स्वाद बढ़ाने में सहायक है।

चित्र 3

आधुनिक युग में जैव उर्वरक व कार्बनिक खेती की आवश्यकता व उपयोगिता

विकास जून, आर एस छोकर, एस सी गिल, आर के सिंह,
सचिन मलिक, ममता काजला, अंकुर चौधरी एवं आर के शर्मा
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

बैक्टीरिया

शैवाल एवं कवक का अलग–अलग या दोनों एक साथ मिलाकर प्रयोग करके सूक्ष्मजीवी जो की पौधों के लाभ के लिए जैविक नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सहायता प्रदान करते हैं, जैव उर्वरक कहलाते हैं।

जैव उर्वरकों की उपयोगिता

जैव उर्वरकों का प्रयोग करने से फसल उत्पादन बढ़ जाता है। इसके विपरित रसायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग करने से मृदा की संरचना खराब हो जाती है साथ ही जैव उर्वरकों को उपयोग करना आर्थिक रुप से सस्ता एवं पर्यावरण के हितकारी है।

आज एकीकृत पोषण प्रबंधन का प्रचलन हो रहा है जिसमें रसायनिक उर्वरकों एवं जैव उर्वरकों को सयुक्त रुप से मिलाकर प्रयोग किया जाता है जिससे कम लागत एवं पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ अधिक उपज भी प्राप्त हो सके व किसान की आर्थिक दशा में सुधार हो सके।

जैव उर्वरक

1 सहजीवी जीवाणु जैसे; राइजोबियम स्पेसीज
2 असहजीवी बैक्टीरिया जैसे; एजेटोबैक्टर, एजोस्पीरिलियम
3 नील हरित शैवाल/ब्लू ग्रीन एल्गी
4 फास्फोरस विलयनकारी बैक्टीरिया (पी.एस.बी.)
5 माइकोरइजा
6 कार्बनिक उर्वरक

भारत उर्वरक उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं है। एक अनुमान के अनुसार स्वंय सक्षमता के लिए दसवीं पचंवर्षीय योजना के अंत तक 20,000 करोड़ रुपयों के निवेश की आवश्यकता थी, अतः रयासनिक उर्वरकों के सम्पूरक के रुप में जैव उर्वरकों की उपयोगिता का आभास कराती है।

भारत सरकार ने ''जैविक खाद के विकास एवं प्रयोग के लिए राष्ट्रीय परियोजना'' को छठी पंचवर्षीय योजना से शुरु किया। इस परियोजना के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय केन्द्र व क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की है तथा 40 नील हरित शैवाल केन्द्रों को देश के विभिन्न भागों में स्थापित किया गया। ये केन्द्र लगभग 800 टन राइजोबियम तथा 700 टन ब्लू ग्रीन एल्गी का उत्पादन कर रहे हैं। इसके साथ–साथ आज कुछ निजी उद्योगों द्वारा भी जैव उर्वरकों का उत्पादन एवं विपणन किया जा रहा है।

1 राइजोबिया (सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण)

ये एक ग्राम निगेटिव मृदा बैक्टीरिया जो एक दलहनी फसलों के जड़ों की ग्रन्थियों में सहजीवी के कारण वायुमण्डीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं जिससे फसल की नाइट्रोजन की मांग की पूर्ति करते हैं इस कारण न केवल इस फसल का उत्पादन बढ़ाते हैं अपितु काफी मात्रा में नाइट्रोजन भूमि में भी छोड़ते हैं जो कि अगली फसल के लिए लाभदायक है। भारत में राइजोबियम को दलहनी फसलों में उपयोग किया जाता है।

राइजोबियम, लेग्यूमिनोजेरम, राइजोबियम मेलीलोटाई, राइजोबियम फैसियोली, राइजोबियम, ल्यूपिनि, राइजोबियम जैपोनिकम इत्यादि।
इन उपरोक्त राइजोबियम की दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण सीमा 50 कि.ग्रा. से 150 कि.ग्रा./हैक्टर है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता बढ़ाने के लिए निम्न उपाय किए जा रहे हैं।

- हाईड्रोजिनस लेने वाले जीन का प्रयोग जो कि हाईड्रोजन की पुनर्चक्रण में सहायता करते हैं जिससे अधिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता है।
- नाइट्रेट रिडक्टेस की कमी वाले स्ट्रेन अधिक हाईड्रोजन स्थिरीकरण में सहायता करते हैं।

2 असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरक

ऐजेटोबैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम के साथ बैसिलस पोलीमिक्सा आदि को राइजोस्फेयर में दिया जाता है तो ये वायुमण्डलीय हाईड्रोजन का स्थिरीकरण एवं पौधों की

उपलब्धता होने के रुप में परिवर्तित करते हैं। सबसे अधिक 30 कि.ग्रा. एच$_2$1000 कि.ग्रा. कार्बनिक पदार्थ से स्थिर होती है या करती है जब इनको फसलों में दिया जाता है तो फसलों पर इसका धनात्मक प्रभाव फसलों के ऊपर दिखता है तथा 10–15 कि.ग्रा./हैक्टर नाइट्रोजन की बचत करते हैं। इसी तरह एजोस्पाइरिलियम को गोबर की खाद के साथ ज्वार एवं बाजरा में देने पर 15 से 25 कि.ग्रा./हैक्टर नाइट्रोजन की बचत करता है।

3 ब्लू ग्रीन एल्गी उर्वरक+एजोला

बीजीए+एजोला एक मुख्य एल्गी जैव उर्वरक है। दक्षिण एशिया विशेषकर निचली भूमि में धान के क्षेत्रों बीजीए का बिना ऐजोला के छिड़काव की अपेक्षा एजोला के साथ एल्गी जनेरा, एनाबेना, नोसटेक, पल्कटोनिमा, ओलोशिरा, ओसिलिटोरिया, टोयपोथरिक्स इत्यादि के साथ देने पर अधिक प्रभावी पाया गया। सिंगल कल्चर की तुलना में धान में बीज को 10 कि.ग्रा/हैक्टर की दर से छिड़काव करते हैं।

4 फास्फोरस विलयनकारी बैक्टीरिया

ये बैक्टीरिया जैसे थायोबैसिलस एवं बैसिलस स्पेसीज आदि मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फेट को लवणों में रुपान्तरित करते हैं जिससे आसानी से पौधे इनका उपयोग कर सकते हैं। ये सूक्ष्म जीव सीडेरोफोर एक लोह चिलेटिंग पदार्थ उदारण के तौर पर स्यूडोवैक्टीन उत्पन्न करता है जो कि पौधों के मूल क्षेत्र में उपस्थित चिलेट करके अनुपलब्ध रुप में बदल देता है। इससे यह लौहा हानिकारक सूक्ष्मजीवों को उपलब्ध नहीं हो पाता और जिससे ये पौधों को हानि नहीं पहुंचा पाते।

5 माइकोराइजा

इसमे कवकों एवं पादपों जड़ों के बीच एक सहजीवी सहयोजन है जिसमें कवक मृदा से खनिज पोषकों को अवशोषित करके पादप जड़ की कोशिकाओं में पोषकों को छोड़ते हैं और बदले में भोजन प्राप्त करते हैं माइकोराइजा दो प्रकार के होते हैं;

- एक्टोमाइकोराइजा
- एण्डोमाइकोराइजा

एक्टोमाइकोराइजा :–ये कवक जड़ों की बाहरी सतह पर पाये जाते हैं। मुख्य रुप से वन वृक्षों जैसे–पाइनस, यूकेलिप्टस, ओक, बिच आदि।

एण्डोमाइकोराइजा :– ये कवक जड़ों के अन्दर बल्कुट कोशिकाओं के अन्दर पाए जाते हैं। ये मुख्यतः फलों की फसलों व उद्यानों की फसलों में पाए जाते हैं जैसे कॉफी, काली मिर्च, आर्किड्स आदि। ये मुख्य रुप से फास्फोरस के पोषण में सहयोग करते हैं। ये वृद्धि बढ़ाने वाले पदार्थ एवं कवकों में प्रतिरोधकता बढ़ाता है।

एण्डोमाइकोराइजा के रुप में जीवाणु के स्ट्रेनो का उपयोग करते हैं जो कि जेनेरा एजोटोबैक्टर, एस्परजिलम, एजोस्पाइरिलम एवं ग्लोमस के अन्तर्गत आते हैं।

6 कार्बनिक उर्वरक

धान्य फसलों में उपज बढ़ाने के लिए सयुक्त रुप से कार्बनिक एवं अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। 50 प्रतिशत उर्वरक गोबर की खाद के रुप में प्रयोग करते हैं जिससे दीर्घकालिक फसल उत्पादन के लिए आवश्यक है। कार्बनिक खाद के अन्तर्गत सभी कार्बनिक अवशिष्ट जो सड़ने व गलने के बाद खाद में बदल जाते हैं। खाद मृदा की जलधारण क्षमता, वायुता तथा उर्वरता को बढ़ाती है।

कार्बनिक खादें तीन प्रकार की होती है;

- गोबर की खाद : नाइट्रोजन 0.4–05%, फास्फोरस 0.25%, पोटाश 0.5%
- कम्पोस्ट : नाइट्रोजन 0.5–06%, फास्फोरस 0.5%, पोटाश 2.3%
- हरी खाद : इसमें मुख्य निम्न फसल आती है:–

फसल के नाम	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
ढैंचा	3.5	0.6	1.2
सन हेम्प (सनई)	2.30	0.5	1.8
सिसबेनिया	2.71	0.53	2.21

कार्बनिक खाद की धारणा:– आधुनिक कृषि जो कि पूर्णतः रसायनों पर निर्भर करती है जिसके परिणामस्वरुप वर्तमान में गंभीर संकट जैसे कि भूमिगत जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, मृदा सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता में कमी, खाद्यान्न विशाक्तता जैसी समस्याएं पैदा कर दी है। यदि रसायानिक कृषि पद्धति भविष्य में सतत् रुप से चलती रही तो आने वाले समय में भू–सतह पर रहने वाले समस्त प्राणियों के लिए भारी खतरा उत्पन्न हो जाएगा जो कि अवर्णनीय भी होगा।

कार्बनिक खेती

खेती की आधुनिकतम प्रणाली जिसमें खेती की लागतों में रसायनों का पूर्ण बहिष्कार किया जाता है, कार्बनिक खेती कहलाती है।

कार्बनिक खेती के अन्तर्गत रसायनिक उर्वरकों की जगह पर कार्बनिक खादों एवं जैव उर्वरकों तथा व्याधि जीव नियंत्रण के तौर पर जैव निवारकों व कृषि विधियों को अपनाते हैं। इसे टिकाऊ खेती भी कहते हैं।

सन् 1990 के बाद से विश्व में जैविक उत्पादों का बाजार काफी बढ़ रहा है।

जैविक खेती व कृषि से होने वाले लाभ

- भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।
- सिंचाई के अन्तराल में वृद्धि होती है।
- रासायनिक खादों पर निर्भरता कम होने से खर्चों में कमी आती हैं
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- फसलों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

मिट्टी की दृष्टि से लाभ

- जैविक खाद उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आती है।
- भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।

पर्यावरण की दृष्टि से

- भूमि के जल स्तर में बढ़ोत्तरी होती है।
- मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।
- कचरे का उपयोग कर खाद बनाने से बिमारियों में कमी आती है।
- फसल उत्पादन की लागत में कमी व आय में वृद्धि होती है। अतः अंतर्राष्ट्रीय बाजार की प्रतिस्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना, जैविक खेती की विधि, रसायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर ही उत्पादन देती है व साथ–साथ मृदा की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णतः सहायक है।

जैविक खेती हेतु जैविक खाद व दवाईयां

जैविक खादः–

- नाडेप
- बायोगैस स्लरी
- हरी खाद
- जैव उर्वरक
- गोबर की खाद

जैविक खाद नाडेप– इस विधि को महराष्ट्र के नारायण देवराव पण्डरी पाण्डे ने बताया था। इस कारण इसका नाम नाडेप हुआ। इस विधि में गोबर का कम से कम उपयोग करके अधिक मात्रा में खाद तैयार हो जाती है। इसके गड्ढे भरने के लिए गोबर, कचरा और बारीक मिट्टी छानकर प्रयोग में लाई जाती है और 90 से 120 में दिन वायु की उचित अवस्था में तैयार किया जाता है और खाद तैयार हो जाती है।

इसमें नाइट्रोजन–0.5 से 1.5%, फास्फोरस 0.9%, पोटाश 1.4% के अलावा सूक्ष्म पोषक तत्व भी होते है। इसमें गोबर की कम व सूखे पत्ते छिलके डंठल, टहनियां, जड़ें 100–1500 कि.ग्रा. तक प्रयोग की जाती है। इसमें नमी को बनाए रखा जाना अति आवश्यक है। इसमें 100–150 लीटर पानी 5–8 कि.ग्रा. गोबर व बाकी अन्य छिलके, डंठल, टहनियाँ व जड़ें मिलाए जाते हैं।

बायोगैस स्लरी– बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस में डाले जाने वाले कुल पदार्थ का 25% ठोस पदार्थ बदलकर गैस के रुप में प्रयोग होता है और 75% ठोस पदार्थ खाद के रुप में प्राप्त होता है जिसे बायोगैस स्लरी कहते हैं।

तीन घनमीटर के बायोगैस संयंत्र में 50 कि.ग्रा. प्रतिदिन गोबर डाला जाता है जिससे 80% नमी वाली 10 टन के करीब बायोगैस स्लरी प्राप्त होती है जो कि खेती के लिए लाभदायक है। इसमें नाइट्रोजन 1.5 से 2%, 1%। फास्फोरस व 1% पोटाश होती है। यह 10 टन प्रति हैक्टर प्रतिशत प्रयोग की जाती है व जाती 3–4 टन/हैक्टर प्रयोग होती है।

केचुएं को किसान का मित्र व भूमि की आंत भी कहते हैं। केचुएं के पेट में होने वाली रासायनिक क्रिया से भूमि में पाई जाने वाले नाइट्रोजन, फारफोरस, पोटाश व सूक्ष्म पोषक तत्वों की वृद्धि होती है। वर्मीकम्पोस्ट में कोई बदबू भी नहीं होती व वातवारण भी प्रदूषित नहीं होता। नमी की उपलब्धता में ये क्रियाशील रहते हैं। यह डेढ़ से दो माह में तैयार हो जाती है।

इसमें 2.5 से 3% नाइट्रोजन, फास्फोरस 1.5–2%, व

पोटाश 1.5 से 2% पाया जाता है। इसकी तैयारी करने के लिए (10X4) या (8X2) फीट का एक बेड या स्थान 5–10 इंच ऊँचा छाया वाला स्थान आवश्यक है। सबसे पहले सुखा चारा, पत्ते आदि डाले जाते हैं फिर 2–3 कुंतल गोबर व 5–8 कुंतल के करीब कुड़ा–करकट डालकर इसमें केचुएं छोड़ दिए जाते हैं। इसमें पानी की आवश्यकता होती है व आवश्यकतानुसार 10–15 दिन तक पानी डालते रहे। 100 वर्ग फीट में 10 हजार केचुएं छोड़े जाते हैं व बाद में बोरी आदि से ढक देते हैं। इसमें ज्यादा गीलापन नहीं रखना चाहिए। 40–50% नमी इसके लिए उपयुक्त रहती है। 45 दिन बाद सिंचाई बंद करके इसके बाद बोरी हटा दें। ऊपर से खाद सुख जाती है व केचुएं नीचे चले जाते हैं व ऊपर से खाद को अलग कर लेते हैं। ऐसे 2–3 दिन बाद नीचे वाली खाद को निकाल लें। आखिर में केचुएं बच जाते हैं जो 2 माह मे दोगुने हो जाते हैं। इसमें ध्यान रखने वाली बात खाद को हाथ से निकाले कोई खुरपा या कस्सी प्रयोग न करें।

हरी खाद– मिट्टी का उपजाऊपन उसमें जीवाणुओं की मात्रा व उनके कार्य पर निर्भर करता है व बहुत सी क्रियाओं के लिए जीवाणुओं की आवश्यकता पड़ती है। जीवित व अच्छी मिट्टी की उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए हरी खाद मुख्य है। इसमें मुख्यतः दलहनी फसलों को खेत में उगाकर जुताई कर उसी खेत मे मिला दिया जाता है। इसमें मुख्यताः सनई, ढैंचा, लोबिया, मूंग, उड़द आदि फसलें प्रयोग में लाई जाती है।

गोबर की खाद– पशुओं का मल–मूत्र को एक गड्ढे में भर देते हैं। फिर इस पर कुछ घास या पुआल आदि डाल देते हैं व आवश्यकतानुसार पानी डालते हैं अर्थात् 35–40% पानी डालकर रख देते हैं जब गोबर का रंग भूरे से काला हो जाए तो समझ लेना चाहिए की हमारी खाद तैयार हो गई है। इसको बनने में लगभग 1–1.5 साल का वक्त लगता है। इसमें नाइट्रोजन 0.4 से 0.5% नाइट्रोजन, फास्फोरस 0.25% व पोटाश 0.5 पाई जाती है।

किसान द्वारा तैयार की गई जैविक खाद

- भभूत अमृतपानी
- अमृत संजीवनी
- **भभूत अमृत पानी** : अमृत पानी तैयार करने के लिए 10 कि.ग्रा. गाय का ताजा गोबर, 250 ग्राम नौनी घी (वनस्पति), 500 ग्राम शहद और 200 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। सबसे पहले 200 लीटर के एक ड्रम में 10 कि.ग्रा. गाय का ताजा गोबर डालें फिर 250 ग्राम घी, 500 ग्राम शहद को डालकर अच्छी तरह मिलाएं। इसके बाद ड्रम को पूरा पानी से भर दें। जब फसल 15–20 दिन की हो जाए तब कतार के बीच में प्रयोग करें। इसके प्रयोग से पहले 15 कि.ग्रा. बरगद के नीचे की मिट्टी एक एकड़ में समान रुप से बिखेर लें।
- **अमृत संजीवनी** : एक एकड़ हेतु अमृत संजीवनी तैयार करने के लिए सामग्री में 3 कि.ग्रा. युरिया, 3 कि.ग्रा. फास्फेट, 1 कि.ग्रा. पोटाश, 2 कि.ग्रा. मूंगफली की खली, 80 कि.ग्रा. गोबर व 200 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। इसको एक ड्रम में डालकर अच्छी तरह मिला लें व ड्रम के ढक्कन को 48 घंटे के लिए बन्द करके रख दें। प्रयोग के समय ड्रम को पानी से भर दें जब खेत में पर्याप्त नमी हो तब बोने से पूर्व भी छिड़क सकते हैं व फसल जब 15–20 दिन की हो जाए तब लाईनों के बीच में 3–4 बार 5 दिन के अंदर में छिड़कें। ध्यान रहे पत्तियों को घोल के सम्पर्क से बचाएं।

जैविक विधि द्वारा कीट (व्याधि नियंत्रण के कृषक के अनुभव)

- गो मूत्र
- नीम पत्ती का घोल / निबोली / खली
- लकड़ी की राख
- मट्ठा

गो–मूत्र : गो–मूत्र कांच की शीशी में भरकर रखें जितना पुराना गो–मूत्र होगा उतना ही अधिक लाभकारी होगा। (12–14 मि.मी) गो–मूत्र प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें। फसलों की बुआई के 15 दिन बाद हर 10 दिन बाद स्प्रे करें तो फसलों में कीड़ों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता विकसित होती है।

नीम पत्ती का घोल : नीम की 10–15 कि.ग्रा. पत्तियां 200 लीटर पानी में 4 दिन तक भिगोए। जब पानी हरा पीला होने पर इसे छान लेना चाहिए व प्रति एकड़ छिड़काव से इल्ली की रोकथाम होती है। इसकी तीव्रता को बढ़ाने के

लिए इसमें धतूरा, तंबाकू आदि के पत्तों को मिलाकर काढ़ा बनाने से इस औषधि की तीव्रता बढ़ जाती है। यह दवा कई प्रकार के कीड़ों की रोकथाम में लाभदायक है।

नीम की खली : जमीन में दीमक तथा व्हाइट ग्रब व अन्य कीड़ों की इल्लियों व प्यूपा को नष्ट करने के लिए व भूमि जनित विल्ट की रोकथाम के लिए 6–8 कुंतल/एकड़ की दर से अन्तिम खाद के समय कूटकर खेत में डालें।

लकड़ी की राख : 1 किलोग्राम राख में 10 मि.ली. मिट्टी का तेल डालकर उस का छिड़काव 125 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से करने पर एफिड व बीटल का नियंत्रण हो जाता है।

मट्ठा : मट्ठा, छाछ, लस्सी आदि नामों से पहचाना जाने वाला अति गुणकारी है। मनुष्य के पीने में प्रयोग के साथ–साथ फसलों में भी इसका प्रयोग कीट नियंत्रण में प्रयोग लाभदायक है। मिर्च, टमाटर आदि फसलों में कुकड़ा (मरोड़िया) रोग आता है। इसकी रोकथाम के लिए एक मटके में छाछ डालकर इसका मुंह पोलिथिन से बांध देते हैं व 30–40 दिन तक इसको मिट्टी में गाड़ देते हैं। इसके पश्चात् छिड़काव करने से कीट व रोग कम होने लगते हैं। 100–150 मि.ली. छाछ 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से कीट व्याधि का नियंत्रण होता है। यह उपचार सस्ता सुलभ लाभकारी होने से कृषकों में लोकप्रिय है।

जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए वर्ष मई 2002 में राष्ट्रीय स्तर पर कृषि विभाग के तत्वाधान में भोपाल में जैविक खेती सेमिनार का आयोजन किया गया, जिसमें राष्ट्रीय विशेषज्ञों व जैविक खेती करने वाले अनुभवी किसानों ने भी भाग लिया, जिन्हें जैविक खेती अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया गया। जैविक खेती से मानव स्वास्थ्य का बहुत गहरा संबंध है क्योंकि रसायनिक खेती की तुलना में जैविक खेती के करने से खेती तुलनात्मक रुप से किसान का स्वास्थ्य ठीक रहता है और औसत आयु भी बढ़ती है। जैविक खेती से फसल स्वास्थ्य खराब नहीं होता।

आज संपूर्ण भारत वर्ष में जैविक खेती की ओर किसानों की रुचि बढ़ रही है और वह अच्छा उत्पादन ले रहा हैं व सफल खेती कर रहा है। जिसमें हरियाणा के बहुत से जिलों में किसान इसको एक बड़े स्तर पर अपना रहे हैं।

जैविक खेती करने वाले जिले व गांव व व्यवसाय

जिले	गाँव	कार्य
करनाल	पुण्डरक	जैविक उर्वरक
कैथल	कैलरम	जैविक उर्वरक
कैथल	चंदाना	जैविक धान
कैथल	टियोठा	जैविक खेती
कैथल	हरिपुरा	जैविक खेती
कैथल	सिवन	जैविक गेहूँ
सोनीपत	बरोटा (अकबरपुर)	जैविक खेती

भारतीय कृषि विकास के जनक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन कहते हैं कि भारत में जरुरी हो गया है कि कृषि क्षेत्र में एक और क्रांति लाई जाए जो कि निश्चित रुप से कार्बनिक खेती को अपनाना है। किसान आज मुख्य रुप से गेहूँ, धान आदि फसलों को जैविक फसलों के रुप में उगा रहे हैं जिनकी कीमत रसायनिक उर्वरकों से पैदा की गई सामान्य गेहूँ से तीन गुणा अधिक है इसकी आरंभ में उपज कम है लेकिन आगे आने वाले समय में उपज में वृद्धि होगी। आस्ट्रेलिया, अमेरिका व स्वीटजरलैंड के किसान सफलतापूर्णक कार्बनिक खेती कर रहे हैं। ये गाय के मूत्र के स्थान पर बैक्टीरिया, फंजाई ड्रग्स कीटनाशकों का प्रयोग कर रहे हैं।

आज भारत में भारत सरकार व राज्यों में राज्य सरकारें कार्बनिक खेती को बहुत बढ़ावा दे रही है और उनको बढ़ावा देने के लिए एक स्वीकृति प्रमाण पत्र देती है जिससे वह अपने उत्पादन के किसी भी ब्रांड के नाम से बाजार में अच्छे मूल्य पर बेच सके और इस बात में कोई संकोच नहीं है कि आने वाले समय में कार्बनिक खेती किसान की मुख्य विकल्प व आवश्यकता होगी।

नैफेड 2007 में राष्ट्रीय बागवानी मिशन व राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अर्न्तगत जैविक कृषि का कारोबार आरंभ किया ताकि किसानों द्वारा गैर–रसायनिक पद्धति को लोकप्रिय बनाया जा सके। वर्तमान में उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब में जैविक खेती के अन्तर्गत लगभग 65 करोड़ रुपए की लागत से 5 परियोजनाएं चल रही हैं व इस परियोजना में लगभग 30,000 के लगभग किसान व 51000 हैक्टर क्षेत्र शामिल है।

गेहूँ की उन्नत खेती एवं उत्पादन प्रौद्योगिकी

विनय कुमार यादव, ममता काजला, गीता, एच एम मामृथा, कर्णम वेंकटेश एवं अनिता मीणा

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, उत्तर पूर्वी मैदानी भाग, मध्य क्षेत्र, उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र, प्रायद्वीपीय क्षेत्र एवं दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रबी ऋतु की फसल है। अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ समन्वित सुधार परियोजना के अनुसार वर्ष 2012–13 के दौरान 29.90 मिलियन हैक्टर भूमि में 95.11 मिलियन टन प्रति हैक्टर गेहूँ रहा है। भारत में गेहूँ पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं राजस्थान के भाग में की जाती है।

मिट्टी

गेहूँ विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जाता है। गेहूँ उपजाऊ, दोमट, मिट्टी एवं बुलआही दोमट मिट्टी में उगाई जाती है लेकिन अच्छे जल निकास वाली मध्यम दोमट मिट्टी गेहूँ के लिए अच्छी है। खारी, कल्लर और सेमवाली भूमि इसके लिए अच्छा नहीं है।

भूमि की तैयारी

धान के बाद गेहूँ की अच्छी फसल लेने के लिए खेत में अच्छी नमी व मिट्टी का भुरभुरा होना बहुत जरुरी है। अगर धान की कटाई के बाद खेत में पर्याप्त नमी न हो तो पलेवा करें। सिंचित भूमि में पहली जुताई डिस्क हैरो/मिट्टी पलट हल से तथा दूसरी जुताई कल्टीवेटर से व तीसरी जुताई रोटावेटर से करनी चाहिए। अन्तिम जुताई के बाद भूमि में अच्छी परत बनाने के लिए दो बार सुहागा लगाए।

बुआई की विधि

बुआई की सबसे उपयुक्त विधि सीड ड्रील है। देसी हल के

पीछे बीज डालकर या हल के पीछे लगे चोगे में बीज डालकर बुआई की जाती है। छीटा विधि की अपेक्षा जीरो टिलेज, हैप्पी या टर्बो सीडर, रोटरी टिल ड्रील, मेंड़ बुआई एवं रोटरी डिस्क ड्रिल से बुआई को अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

बीज मात्रा एवं समय

बीज की मात्रा, किस्म, बिजाई के समय तथा बिजाई की स्थितियों के अनुसार बदलते रहना चाहिए। समय से बुआई के लिए बीज की मात्रा 100 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से करनी चाहिए। देरी से बुआई के लिए बीज की मात्रा 125 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीज उपचार

गेहूँ की अधिक उपज एवं रोग से बचाव के लिए बीज को रातभर (लगभग 12 घंटे) पानी में भिगाोए। भिगोने वाले बर्तन में पानी का स्तर बीज से दो से.मी. ऊपर रखें। बीज को पानी से निकालने के बाद दो घटें तक चटाई या फर्श पर छाया में सुखाएं। तत्पश्चात् बीज को अनुमोदित कीटनाशक, फफूंदनाशक व जैविक खाद से उपचारित कर सूख जाने पर एक घंटे बाद बिजाई करनी चाहिए।

उत्पादन स्थिति	खाद की मात्रा एवं डालने का समय
उत्तर पश्चिमी एवं उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	
सिंचित, समय से बुआई	150:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। एक तिहाई नत्रजन बुआई के समय, एक तिहाई पहली सिंचाई पर व शेष दूसरी सिंचाई पर।
सिंचित, देरी से बुआई	120:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। आधा नत्रजन बुआई के समय व शेष नत्रजन पहली सिंचाई पर।
वर्षा आधारित, बुआई	60:30:20 नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश कि./है. की दर से बुआई के समय डालें।
मध्य क्षेत्र	
सिंचित, समय से बुआई	120:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। एक तिहाई नत्रजन बुआई के समय, एक तिहाई पहली सिंचाई पर व शेष दूसरी सिंचाई पर।
सिंचित, देरी से बुआई	90:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। आधा नत्रजन बुआई के समय व शेष नत्रजन पहली सिंचाई पर।
वर्षा आधारित, बुआई	60:30:20 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश बुआई के समय डालें।
प्रायद्वीपीय क्षेत्र	
सिंचित, समय से बुआई	120:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। एक तिहाई नत्रजन बुआई के समय, एक तिहाई पहली सिंचाई पर व शेष दूसरी सिंचाई पर।
सिंचित, देरी से बुआई	90:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। आधा नत्रजन बुआई के समय व शेष नत्रजन पहली सिंचाई पर।
वर्षा आधारित, बुआई	60:30:20 नत्रजन, फास्फोरस पोटाश कि./है. बुआई के समय डालें।
उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र	
सिंचित, समय से बुआई	120:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। एक तिहाई नत्रजन बुआई के समय, एक तिहाई पहली सिंचाई पर व शेष दूसरी सिंचाई पर।
सिंचित, देरी से बुआई	90:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। आधा नत्रजन बुआई के समय व शेष नत्रजन पहली सिंचाई पर।
वर्षा आधारित, बुआई	60:30:20 नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश कि./है. बुआई के समय डालें।
दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र	
सिंचित, समय से बुआई	120:60:40 कि./है. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश। एक तिहाई नत्रजन बुआई के समय, एक तिहाई पहली सिंचाई पर व शेष दूसरी सिंचाई पर।

खाद व उर्वरक

मिट्टी की जांच के आधार पर ही उर्वरक देनी चाहिए एवं आम सिफारिशों के आधार पर उर्वरकों की मात्रा देनी चाहिए। बुआई के समय उर्वरक की मात्रा 120:60:40 कि. ग्रा./है. की दर से नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश देना चाहिए और शेष नत्रजन पहली व दूसरी सिंचाई के बाद देना चाहिए।

सिंचाई

फसल में अच्छी पैदावार के लिए पांच सिंचाई करना आवश्यक हैं। पहली सिंचाई क्रान्तिक जड़े प्रारम्भ होना, दूसरी सिंचाई कल्ले फूटना, तीसरी गांठे बनाना, चौथी फूल आना एवं पांचवी दाना बनने पर देनी चाहिए।

निराई–गुड़ाई

भूमि में नमी संरक्षण व खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए पहली तथा दूसरी सिंचाई के बाद एक या दो गोडाईया करें। इस कार्य के लिए व्हील हो व ब्लेड हो का प्रयोग करना चाहिए। गेहूँ की संकरी पत्तियों वाले खरपतवार जैसे मंडूसी या कनकी तथा जंगली जई आदि का खरपतवार नाशक दवाओं के प्रयोग से आसानी से नियंत्रण किया जा सकती है।

खरपतवार प्रबंधन के लिए आवश्यक बातें

- हमेशा खरपतवार रहित गेहूँ के बीज का उपयोग करें।
- खरपतवारनाशी की सही मात्रा, सही समय व उपयुक्त तकनीक द्वारा स्प्रे करें।
- खरपतवारनाशी का अदल–बदल कर उपयोग में लाएं।
- फसल चक्र में चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, जई आदि का समायोजन अवश्य करें।
- स्प्रे करने के लिए फ्लैट फैन नोजल का प्रयोग करें।
- मंडुसी का प्रभाव कम करने के लिए जीरो टिलज द्वारा अगेती बीजाई करें
- शाकनाशी प्रतिरोधकता नियंत्रण के लिए ग्लाईफोसेट+पेन्डीमैथालीन का प्रयोग जीरो टिलेज से बुआई से पहले करें।
- अधिक असर के लिए सल्फासल्फ्यूरॉन सल्फोसल्फ्यूरॉन+मैटसल्फ्यूरान का पहली सिंचाई से पहले उपयोग करें।
- जहाँ भी क्लोडिफॉप व सल्फासल्फ्यूरॉन से प्रतिरोधकता आ गई है वहाँ पेन्डीमैथालीन, एकार्ड प्लस और पिनोक्साडेन का उपयोग करें।

कटाई, मढ़ाई एवं भंडारण

गेहूँ की फसल जब अच्छी तरह कटाई के लिए तैयार हो जाय। जब दानों में लगभग 20 प्रतिशत नमी रह जाए तब फसल के लिए उपयुक्त होती है। फसल की कटाई के लिए कम्बाईन हार्वेस्टर का प्रयोग किया जाता है। फसल का रंग बदलते ही कटाई कर लेनी चाहिए। अनाज का भंडारण से पहले अच्छी तरह सूखा लें। अनाज को कीड़ों से बचाने के लिए एल्यूमिनियम फास्फाईड की एक टिकिया 10 कुन्तल अनाज में रखनी चाहिए। भंडारण के दौरान गेहूँ की हानि को रोकने के लिए लोहे के टैंक का प्रयोग करना चाहिए।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में जौ की उन्नत खेती

अरूण भट्ट, भगत सिंह एवं राजेश कुमार प्रसाद

• फसल सुधार विभाग वानिकी महाविद्यालय, रानीचौरी, टिहरी गढ़वाल
• औषधीय एवं सगंध पादप संस्थान, गैरसैण, मेहलचौरी, उत्तराखण्ड

जौ विश्व के महत्वपूर्ण खाद्यान्नों में से एक है और इसकी खेती हमारे देश में बड़े पैमाने पर होती है जौ को मुख्यतया चने या गेहूँ के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है। कभी–कभी इसको भूनकर व पीसकर सत्तू के रूप में भी प्रयोग करते हैं इसके अतिरिक्त पशुओं को भी दाने के रूप में भी जौ खिलाया जाता है पश्चिमी देशों में जौ की बडी मात्रा शराब बनाने के काम में आती है।

जौ का वानस्पतिक नाम होरडियम वुल्गेयर है तथा यह फसल ग्रेमिनी कुल में आती है, जो कैरीओप्सिस प्रकार की फसल मानी जाती है साथ ही इसका एन्डोस्पर्म एवं एम्ब्रियो खाया जाता है। पृथ्वी में जौ प्राचीन काल से खेती किये जाने वाले अनाजों में एक है तथा यह माना जाता है कि इसका उपयोग धार्मिक कार्यो में होता आ रहा है। जौ को संस्कृत में यव के नाम से जाना जाता है। अनाजों में जौ एक ऐसी फसल है जो खाद एवं सिंचाई के कम लागत में अच्छी उपज देती है। इतना ही नहीं, जौ समस्याग्रस्त क्षेत्रों (अम्लीय–क्षारीय, ऊसर, दियारा भूमि, तटीय नदियों एवं समुद्र तटीय) में सन्तोषजनक उपज देती है। इसका पकवान खाने के उपरान्त पेट में ठंडक महसूस होता है, जो लम्बे समय तक स्थिर रहता है। सिंचाई एवं उर्वरक के सिमित साधन एवं सिंचित दशा में जौ की खेती गेहूँ की अपेक्षा अधिक लाभदायक है।

इस प्रकार देखें तो आधुनिक समय में जौ की खेती को मुख्य फसल के रूप में देखा जाने लगा है।

जौ उत्पादन प्रौद्योगिकी

उद्भव एवं विकास

जौ की खेती भारत में प्राचीन काल से ही होती आ रही है इस बात के प्रमाण मिले है कि भारत, मिस्र और चीन आदि देशों में बहुत पहले से लोगों को जौ की खेती के बारे में जानकारी थी। वेदों में भी जौ का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि इस अन्न की जानकारी हमारे पूर्वजों को बहुत पहले से थी हवन आदि धार्मिक क्रियाओं में आदिकाल से ही जौ का प्रयोग होता आ रहा है वास्तव में जौ शब्द संस्कृत के शब्द यव का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है अन्न। जौ के वास्तविक उत्पत्ति स्थल के बारे में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है कुछ विद्वानों का मत है कि जौ का उत्पत्ति स्थल भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग एशिया माइनर तथा अफगानिस्तान के मध्य में कही है।

वितरण

विश्व भर में लगभग आठ करोड़ हैक्टर क्षेत्रफल में इसकी खेती की जाती है और प्रति वर्ष लगभग पंद्रह करोड टन जौ की उपज प्राप्त होती है। विश्व के लगभग सभी देशों में जौ की खेती होती है लेकिन इसे मुख्यतः रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, कनाडा, तुर्की और फ्रांस में उगाया जाता है। संसार में सबसे अधिक जौ की खेती रूस में की जाती है।

भारत में जौ की खेती लगभग 33 लाख हैक्टर भूमि में की जाती है और इसका वार्षिक उत्पादन लगभग 32 लाख टन है। भारत में जौ की खेती लगभग सभी राज्यों में होती है पर इसका मुख्य उत्पादन उत्तर–पश्चिमी भारत में होता है। भारत के विभिन्न राज्यों में जौ का उत्पादन व क्षेत्रफल परिशिष्ट में दर्शाया गया है। जिसे देखने से पता चलता है कि तमिलनाडु, उड़िसा तथा असम के अतिरिक्त भारत के अन्य सभी राज्यों में जौ की खेती होती है इसके मुख्य उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और मध्य प्रदेश है। उत्तर प्रदेश में जौ मुख्यतया गोरखपुर, वाराणसी, इलाहबाद, आगरा, फैजाबाद तथा लखनऊ मंडलों में उगाया जाता है ।

जलवायु

इसकी खेती पहाड़ों पर या ठंडे मौसम में ही की जाती है। 2000 मीटर की ऊंचाई तक जौ को उगाया जा सकता है। जौ की खेती के लिए ठंडी और नम जलवायु उपयुक्त रहती है। अतः भारत में इसे रबी की फसल के रूप में उगाया जाता है। नमी अधिक होने पर रोगों का प्रकोप अधिक होता है जौ सूखे के प्रति गेहूँ से अधिक सहनशील है, जबकि पाले का प्रभाव इस पर अधिक होता है।

मृदा

जौ के लिए दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है, लेकिन भारत में जौ की खेती अधिकतर रेतीली भूमि में की जाती है जौ और गेहूँ को प्रायः एक ही मौसम में उगाया जाता है इसलिए जौ को उसी भूमि में उगाया जाता है, जो गेहूँ के लिए उपयुक्त नहीं समझी जाती है जौ के खेत में जल निकास का उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है, अतः जौ की खेती के लिए ऊँची भूमि ही छांटनी चाहिए। मामूली ऊसर भूमि में भी जौ उगाया जा सकता है लवणों के प्रति भी यह गेहूँ की अपेक्षा अधिक सहनशील होता है अम्लीय भूमि में जौ को नहीं उगाया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि सूखे एवं क्षारीय दशाओं में जौ ही एकमात्र ऐसी फसल है जिसे रबी में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

जौ की नई प्रजातियाँ

बी एच एस 169, एच बी एल 113, एच बी एल 276, बी एच एस 352, वी एल बी 56, वी एल बी 1

बीजोपचार

जौ की बुवाई के लिए जो बीज प्रयोग में लाया जाता है वह रोग मुक्त, प्रमाणित एवम् क्षेत्र विशेष के लिए अनुसंशित उन्नत किस्म का होना चाहिए। बीज में किसी दूसरी किस्म का बीज नहीं मिला होना चाहिए। बोने से पूर्व बीज के अंकुरण प्रतिशत का परीक्षण अवश्य कर लेना चाहिए यदि जौ का प्रमाणित बीज न मिले तो बीजों का उपचार अवश्य करना चाहिए जिनको ऐग्रोसोन जी एन से करनी चाहिये। खुली कंगियारी से बचाव के लिए 2 ग्राम वीटावैक्स या बावस्टीन से प्रति एक किलोग्राम बीज उपचारित करें। बंद कंगियारी के नियंत्रण हेतु थीरम तथा बावस्टीन/ वीटावैक्स को 1:1 के अनुपात में मिलाकर 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. अथवा रेक्सिल 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के लिए प्रयोग करें। दीमक से बचाव के लिए 150 मि.लि. क्लोरपायरिफॉस (20 ई.सी.) को 5 लीटर पानी में डालकर घोल बना लें और इससे 100 कि.ग्रा. बीज का उपचार कर सकते हैं।

खेत की तैयारी

गेहूँ की भांति ही जौ के लिए भी खेत की तैयारी की जाती है। भूमि का समतलीकरण एवं मेंड़ बनाना आवश्यक है ताकि सिंचाई उचित समय से हो सके तथा असिंचित खेती हेतु वर्षा का पानी खेतों में जमा हो सके। खरीफ की फसल काटने के पश्चात् खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई करने के बाद बार देशी हल से जुताई करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

उर्वरक डालने की विधि

पर्वतीय क्षेत्रों में नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बीजाई के समय ही डाल देनी चाहिए। जस्ते की कमी वाली भूमि में 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से डालना चाहिए।

बीजाई की विधि

बीजाई की सबसे उपयुक्त विधि सीड ड्रिल है। देसी हल के पीछे लगे चोगे में भी बीज डालकर बीजाई की जा सकती है। देसी हल के पीछे बीज डालकर एवं छीटा विधि की अपेक्षा ड्रील से पंक्तिबद्ध बीजाई करना उत्तम है। बीज या मिट्टी को अच्छे संपर्क के लिए पाटा लगाकर मिट्टी को सघन बना देना चाहिए लेकिन सीड ड्रिल से बीजाई के बाद पाटा नहीं लगाना चाहिए।

सिंचाई

जौ सिंचित के साथ–साथ वर्षा आधारित या पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी उगाया जाता है। सामान्यतः इसके लिए 2–3 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। पानी की उपलब्धता के आधार पर सिंचाई उपयुक्त अवस्था पर देनी चाहिए। यदि दो सिंचाई उपलब्ध हो तो पहली सिंचाई कल्ले निकलते समय (बीजाई के 30–35 दिन बाद) तथा दूसरी बाली आने की अवस्था (बीजाई के 65–70 दिन बाद) पर देनी चाहिए। यदि सिर्फ एक सिंचाई उपलब्ध हों तो इसे बीजाई के 35–40 दिन बाद देनी चाहिए। यदि तीन सिंचाई उपलब्ध हो तो तीसरी सिंचाई दाना बनते समय (बीजाई के 35–40 दिन बाद) देनी चाहिए। अच्छी पैदावार, दानों की एकरूपता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु माल्ट जौ को 3–4 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवार नियंत्रण

जौ की फसल में अनेक खरपतवार लगते हैं जो पोषक तत्वों, प्रकाश, नमी आदि के लिए फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं अतः इनका समय पर उपचार करने से ही अधिक लाभ प्राप्त होता है। जौ के खेत में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का अधिक प्रकोप होता है जिसमें मुख्यतः बथुआ, कृष्णनील, चटरी, गेगला, मुनमुना, हिरनखुरी, सोया, सैंजी, प्याजी, मंडूसी या गेहूँसा, कंटीली, जंगली जई, मोथा व दूब आदि का प्रकोप होता है, इसके लिए खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए जिसको खेत में छिड़काव के रूप में दिया जाता है। जौ के खेत में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए 2.4–डी इथाइल ईस्टर 36 प्रतिशत की 1.4 किलोग्राम मात्रा अथवा 2.4 डी लवण 80 प्रतिशत की 0.625 किलोग्राम मात्रा को 300 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से बीज बुआई के एक माह बाद छिड़काव करना चाहिए और संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए प्रकोप अधिक होने पर जौ की फसल नहीं उगानी चाहिए इसमें बरसीम या फिर रिजका की फसल उगानी चाहिए। इन खरपतवारों के नियंत्रण के लिए पेन्डीमिथेलिन 30 ईसी 800 से 1000 ग्राम प्रति हैक्टर या आइसोप्रोटयूरॉन 50 डब्ल्यू पी. 1.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर करें। बुआई के 2 से 3 दिन बाद 300 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। खड़ी फसल में बुआई के 30 से 35 दिन के अन्तराल पर मेटासल्फ्यूरॉन की 1.5 किलोग्राम मात्रा को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। मिश्रित खरपवतवार की समस्या होने पर आइसोप्रोट्यूरॉन 800 ग्राम और 2.4–डी 0.4 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से मिलाकर छिड़काव करें।

खुली एवं बंद कंगियारी

कंगियारी से बचाव के लिए बीज को अवश्य उपचारित करें। इसके अतिरिक्त बीज का धूप उपचार भी किया जा सकता है। मई–जून के महीने में बीज को चार घण्टे तक पानी में डालकर तपती धूप में रखें। इसके बाद इसे छानकर सुखा लें एवं खुले स्थान पर भण्डारण करें।

रतुआ एवं झुलसा रोग

जौ की रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें।

चेपा (एफिड)

जौ की फसल में चेपा का प्रकोप रहता है जिससे काफी हानि होती है। इसके लिए रोगोर 2 मि.ली. प्रति लीटर अथवा इमिडाक्लोप्रिड 200 की 20 ग्राम सक्रिय तत्व से प्रति हैक्टर की दर से 250–300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

मोल्या

इसके नियंत्रण हेतु रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें जैसे आर डी 2052 एवं आर डी 2035।

उपज

जौ की फसल गेहूँ की लम्बी किस्मों से अधिक उपज देने की क्षमता रखती है जौ की अच्छी फसल 30–35 कुंतल प्रति हैक्टर तक उपज दे सकती है। जौ में भूसा दाने के बराबर ही निकलता है।

कटाई एवं भण्डारण

जौ की फसल मार्च के अंत से अप्रैल के प्रथम पखवाड़े तक कटाई के लिए तैयार हो जाती है। झड़ने की प्रवृति के कारण जौ को अधिक पकने से पूर्व ही काट लें ताकि बालियों को टूटने से बचाया जा सके। जौ का दाना हवा से नमी सोखता है अतः सही स्थान पर भंडारण करें ताकि कीड़े न लगे। औद्योगिक प्रयोग के लिए जौ की उपयुक्त किस्म का चयन करके उसे उचित प्रबन्धन में समय से उगाएं एवं कटाई करें।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से कृषि को बचाने की चुनौतियाँ

विवेकानन्द पी राव, काशीनाथ तिवारी, विकास गुप्ता, सतीश कुमार एवं चन्द्रनाथ मिश्र

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

किसी भी देश की कृषि वहां की जलवायु पर निर्भर करती है। औद्योगिक क्रांति के इस युग में प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित रूप से दोहन के फलस्वरूप आज संपूर्ण विश्व पर्यावरण संकट के साथ जलवायु परिवर्तन की समस्या से जूझ रहा है। जलवायु परिवर्तन का कृषि के ऊपर शीघ्र और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार प्रति वर्ष दो करोड़ हैक्टर कृषि भूमि जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होती है सतत् जनसंख्या वृद्धि दर, कृषि भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट, प्रमुख कृषि फसलों की उत्पादकता में स्थिरता एवं प्रतिदिन बढ़ती हुई नई जरूरतों को देखते हुए 21वीं शताब्दी में खाद्य सुरक्षा बनाये रखना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जलवायु परिवर्तन को 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती के रूप में देखा जा रहा है। जलवायु परिवर्तन का तात्पर्य है कि किसी क्षेत्र के मौसम में गुणात्मक बदलाव जैसे औसत तापमान, वर्षा या वायु का दीर्घ अवधि में परिवर्तन होना। ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के चलते वैश्विक तापमान बढ़ रहा है। यू.एन.डी.पी. रिपोर्ट में यह चेतावनी है कि यदि मानव समाज कार्बन उत्सर्जन की दर को वर्ष 2050 तक घटाकर आधा करने में सफल नहीं होता है तो भयावह प्राकृतिक आपदाओं मसलन बाढ़, तूफान, महामारी, सूखा आदि से बच पाना बेहद मुश्किल होगा। ग्लोबल वार्मिंग जलवायु परिवर्तन का सबसे भयावह रूप है। ग्लोबल वार्मिंग का तात्पर्य यह कि ग्रीन हाउस गैसों के बदले उत्सर्जन के फलस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होना है। विगत सौ वर्षों में ग्लोबल वार्मिंग की वजह से तापमान में 0.74° सेल्सियस की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। इन्टर गवर्मेन्ट पैनल फॉर क्लाइमेट चेंज के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक तापमान में 1.8 से 4° सेल्सियस तक वृद्धि हो जायेगी जिसके फलस्वरूप बेवक्त बारिश, सूखा, ओले, हेयान, अलनीनो, कैटरीना, मेलर, नीनो और केदारनाथ जैसी घटनाओं से बच पाना मुश्किल होगा। अब तो उष्ण कटिबंधीय जलवायु के पृथ्वी के दोनों ध्रुवों के खिसकने की भी बात कही जा रही है। इससे एशियाई देशों की पूरी तरह जलवायु बदलने का अंदेशा लगाया जा रहा है जिससे इन देशों में कृषि प्रभावीकरण के साथ खाद्यान्न संकट पैदा होने का अंदेशा है। जलवायु परिवर्तन का भारत में बहुत अधिक विपरित प्रभाव पड़ेगा क्योंकि यहां के अधिकतर लोगों की आजिविका मुख्यतः कृषि उत्पादन, पशुपालन तथा उससे संबंधित व्यवसाय पर आधारित है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

तापमान बढ़ने से पौधों में प्रकाशसंश्लेषण व वाष्पीकरण की प्रक्रिया बढ़ जाती है जिससे वातावरण में कार्बन–डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है। पौधों का वानस्पतिक विकास अधिक होता है परन्तु उपज पर विपरित प्रभाव पड़ता है। हाल ही में दिये गये आई.पी.सी.सी. के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2080–2100 तक तापमान वृद्धि के वजह से भारत में 10 से 40 प्रतिशत फसल उत्पादन में गिरावट की सम्भावना है। जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव को निम्न बिन्दुओं में दर्शाया गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अनुसार भविष्य में तापमान में 1° सेल्सियस की वृद्धि की वजह से गेहूँ की उपज में 4 से 5 मिलियन टन की गिरावट की सम्भावना रहती है। रबी मौसम की फसलों में खरीफ की फसलों की अपेक्षा जलवायु परिवर्तन द्वारा अधिक नुकसान होने की सम्भावना रहती है।

- अधिकतर खरपतवार सी–3 फसल समूह में आते हैं जो कम पानी में अधिक होते हैं। ये खरपतवार रोगों व कीटों को शरण देते है जिसके फलस्वरूप कृषि उपज प्रभावित होती है। अधिक तापमान की वजह से खरपतवारनाशक भी इन खरपतवारों पर अप्रभावी होता है।
- ग्लोबल वार्मिंग की वजह से आर्द्रता और तापमान बढ़ने के साथ रोगजनकों और कवक की प्रजातियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होती है जो फसलों को संक्रमित कर उपज घटाने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

- तापमान वृद्धि की वजह से हिमालय के ग्लेशियर का पिघलना बढ़ जाता है जिससे गंगा–तटीय मैदानी भागों की मिट्टी में लवणता बढ़ने से कृषि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- ग्लोग्ल वार्मिंग शीत क्षेत्रों में कृषि उत्पादन को अल्प मात्रा में बढ़ावा देता है जबकि उष्ण क्षेत्रों में कृषि–उपज पर नकारात्मक प्रभाव होता है।

पिछले कुछ दशकों के दौरान कृषि में प्रथम संतति विकास के फलस्वरूप हरित क्रांति का जन्म हुआ तथा परम्परागत कृषि का व्यवसायिक कृषि में प्रवेश सम्भव हो सका। इस अवधि के दौरान कृषि उत्पादों की मात्रा एवं गुणवत्ता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई परन्तु इस सफलता के दौरान कृषि क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से अत्यधिक अनुचित व अनियंत्रित रूप से दोहन के कारण सम्पूर्ण विश्व बहुआयामी चुनौतियों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम स्वरूप सन् 2100 तक फसलों की उत्पादकता में 10 से 14 प्रतिशत तक की गिरावट आने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है। फसल उत्पादन में उतार–चढ़ाव के मुख्य कारणों में कम वर्षा, अत्यधिक नमी, फसलों पर कीट एवं व्याधियों का प्रकोप इत्यादि प्रमुख है। इटली में जी–8 देशों के सम्मेलन से पूर्व ऑक्सफैम ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि जलवायु परिवर्तन के कारण एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिकी देशों में वर्षा का मौसम बदल रहा है एवं मौसम मे हो रही अनियमिताओं से उन्हें खेती में दिक्कतें आ रही है। 10 वर्षों में मक्के के उत्पादन में 15 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है। यूरोपीय देशों में फसलों की कटाई के नियमित समय में बदलाव आ सकते है जहाँ फसलों की कटाई में देरी से अक्सर फसल सड़ाने की समस्या पैदा हो जाती है। इसका ताजा उदाहरण वर्ष 2008 के दौरान ब्रिटेन में आलू की फसल को हुए नुकसान के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ गर्मी के मौसम में अत्यधिक नमी व आर्द्रता हो जाने के कारण आलू में ब्लाइट रोग का भयंकर प्रकोप देखा गया एवं इस नुकसान को सन् 1840 के आयरिश अकाल के बाद सबसे बड़े नुकसानों में गिना जाता है।

जलवायु परिवर्तन की वजह से भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का हिस्सा घटता जा रहा है जबकि इस पर निर्भर लोगों की तादाद में कमी नहीं हुई है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान बीते पांच दशकों में 70 फीसदी से भी अधिक कम हुआ है। ऐसा ढांचागत बदलाव दूसरे नये क्षेत्रों में ज्यादा अवसर पैदा होने के कारण हुआ है। देश के जी.डी.पी. में कृषि को योगदान वर्ष 1950–51 में 55.1, 1980–81 में 37. 6 तथा वर्ष 2006–07 में केवल 18.5 प्रतिशत था जो कि वर्ष 2011–12 में घटकर 14 प्रतिशत रह गया है। रिकार्ड खाद्यान्न होने के बाद भी कृषि क्षेत्र पर अधिक उत्पादन हेतु अधिक दबाव है।

जलवायु परिवर्तन और जैव विविधताः जलवायु परिवर्तन का प्रभाव जैव विविधता पर भी पड़ता है। कम वर्षा या सूखा, तापमान को सहने वाली प्रजातियों के जैव विविधता को संरक्षित कर सूखा और उच्च तापमान के विनाशकारी प्रभाव को कम कर सकते हैं। तापक्रम बढ़ने से पौधों में फलने–फूलने की समस्या आ सकती है जिसमें फूलने के लिए एक निश्चित तापक्रम की आवश्यकता होती है जैसे फूलगोभी, पत्ता गोभी, मटर, टमाटर, गाजर, सेब इत्यादि। इसी तरह बासमती चावल के दानों में एक तरह की खूशबु जो एक विशेष रासायनिक पदार्थ जिम्मेदार होते हैं जो अनुकूल तापमान की जरूरत होती है। इसलिए उत्तरी भारत, पंजाब, हरियाणा जैसे क्षेत्रों में ही फसल पकते समय निर्माण होता है।

तापक्रम बढ़ने से भूमि से नत्रजन का वोलेटालाइजेशन क्रिया द्वारा नुकसान ज्यादा हो सकता है। इसी तरह सूक्ष्मजीवियों की क्रिया दर में वृद्धि होने के कारण जमीन से पोषक तत्त्वों का ज्यादा नुकसान हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन का गेहूँ की उपज पर प्रभावः सिम्मिट, मेक्सिको की एक रिपोर्ट के अनुसार पृथ्वी के तापमान में सन् 2020 तक 2.4°सेल्सियस हो जायेगी यदि इसी दर से हरित गैसों का उत्सर्जन होता रहा और इसका विनाशकारी प्रभाव भारत को अधिक झेलना पड़ेगा जिससे फसल उत्पादन में 30 प्रतिशत की गिरावट आयेगी। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के एक रिपोर्ट के अनुसार प्रति डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से गेहूँ के उत्पादन में प्रति वर्ष 4 से 5 मिलियन टन की कमी आती है।

यदि हरित गैसों का उत्सर्जन इसी दर से होता रहा तो सन् 2050 तक भारत में गेहूँ की फसल उष्मा तनाव के विनाशकारी प्रभाव से नुकसान होगा जिससे प्रति डिग्री सेल्सियस मध्यमान तापमान से उत्पादकता में प्रति वर्ष 7 मिलियन टन की गिरावट आयेगी जिससे 1.5 बिलियन डालर की क्षति सहनी पड़ेगी।

जलवायु परिवर्तन से निपटने के उपायः जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारणों जैसे हरित गैसों में कमी लाकर जंगलों की कटाई रोककर तथा नये वृक्ष लगाकर वायुमण्डल में बढ़ती हरित गैसों जैसे कार्बन डाइऑक्साइड को शोधित कर इसकी सान्द्रता को कम करके भूमण्डलीय तपन में कमी ला सकते हैं। हाल ही में जलवायु परिवर्तन पर पेरिस में जो समझौता हुआ जिसमें हरित गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए विश्व के 132 देशों ने मौखिक सहमति दी और बाध्यकारी कानून बने जिसका अनुसरण कर हम जलवायु परिवर्तन के विपरित प्रभाव से बच सके। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् कृषि, मंत्रालय भारत सरकार द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्रों की मदद से किये जा रहे नेशनल इनिशिएटीव ऑन क्लाईमेट रेजीलियेंस एग्रीकल्चर (निकरा) परियोजना में कृषक खेतों पर प्रत्यक्ष रूप से फायदा मिल रहा है। साथ ही अनुसंधान के जरिये जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए विकसित नई तकनीकों को अपनाकर नुकसान से बचा जा सकता है। इस परियोजना के निम्न घटक इस प्रकार है।

- भा.कृ.अनु.प., नई दिल्ली के सात मुख्य राष्ट्रीय कृषि संसाधनों में प्राकृतिक संसाधन, मुख्य खाद्यान्न फसलें, पशुधन एवं मछली पालन के क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए बदलते जलवायु के प्रति अनुकूलन और परिवर्तन को कम करने की विधियों पर मूलभूत अनुसंधान होना चाहिये।
- देश के 27 राज्यों के 100 सबसे ज्यादा जोखिम वाले जिलों में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उपलब्ध तकनीकों का किसान के खेतों पर प्रदर्शन होना चाहिए।
- जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन बनाने की तकनीकों पर दीर्घावधि अनुसंधान को सुदृढ़ एवं सशक्त करने के लिए ढ़ांचागत संसाधनों का विकास एवं संबंधित वैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में नवीनतम जानकारी द्वारा क्षमता में वृद्धि होना चाहिए।

आज के परिदृश्य में बदलते हुए जलवायु से सामना करने के लिए अनुसंधान के माध्यम से शोध निम्नलिखित तथ्यों पर होना चाहिए जिससे हम भविष्य में उच्च गुणवत्ता युक्त जलवायु परिवर्तन से होने वाले दूरगामी परिणामों से निपटा जा सके।

1. परम्परागत खेती में उपयोग की जाने वाली प्रजातियों का उच्च ताप, लवणता, सूखा तथा रोग को सहने वाली प्रजातियों का मूल्यांकन कर प्रतिरोधक क्षमता वाली प्रजतियों को पौध प्रजनन में प्रयोग कर नयी प्रतिरोधक जातियों का विकास होना चाहिए।
2. जलवायु परिवर्तन के अनुकूल उच्चताप सहनशील, सूखा और लवणता प्रतिरोधक जातियों का पौध प्रजनन और जैव प्रौद्योगिकी की सहभागिता से उच्च गुणवत्ता युक्त शोध और विकास कार्यक्रम पर जोर देना चाहिए।
3. कम अवधि में तैयार होने वाली गेहूँ की प्रजातियों का विकास हो जो समय पर परिपक्व हो जिससे गेहूँ के अंतिम अवस्था पर ताप के विपरित प्रभावों से बचा जा सके।
4. अधिक उत्पादन वाले प्रजतियों का चयन का पौध प्रजनन और खेती में प्रयोग हो। जिससे जलवायु परिवर्तन से होने वाले गिरावट को कम किया जा सके।
5. उत्तरी भारत के लिये तापमान सहने वाली कठिया गेहूँ की संपूरक प्रजतियों का पौध प्रजनन में प्रयोग करना चाहिए। जिससे गेहूँ उपज में जलवायु परिवर्तन से होने वाले हानियों की भरपाई की जा सके।

उपरोक्त तथ्यों के अलावा अब हमें हर हाल में हरित गैसों के उत्सर्जन का कम करने का प्रयास करना होगा ताकि जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से निपटा जा सके।

कृषि में सूखे का प्रभाव व उसका प्रबंधन

गीता देवी, एम एम मामृथा, विनय यादव, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, बी एस त्यागी एवं प्रदीप शर्मा

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व में जल का सबसे बड़ा उपभोक्ता कृषि है। पर्यावरण के विभिन्न प्रतिकूल कारकों में से जल की कमी कृषि के लिए सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है; जिससे विश्व भर में 70 प्रतिशत उपज की हानि होती है।

विश्व खाद्य संगठन के अनुसार सन् 2025 ई. तक अकेले अफ्रीका में लगभग 480 मिलियन लोगो को पीने के लिए जल भी पर्याप्त रुप से नहीं मिल पाएगा। विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं में सूखा भारत में एक अति भीषण विपदा है। जब किसी क्षेत्र में लंबे समय तक (कई महीने व वर्षों तक) अपर्याप्त वर्षा होती है या नहीं होती उसे सूखा कहते हैं।

भारत एक कृषि प्रदान देश है। हमारी कृषि जल के लिए वर्षा पर निर्भर करती है। इसलिए सूखा के कारण सबसे अधिक कृषि क्षेत्र ही प्रभावित होता है, इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था डगमगा जाती है। सूखे के कारण हमारे देश में 18वी, 19वीं, 20वीं, 21वीं सदी में असंख्य लोगों की जान गई है। सूखा भारत के कई हिस्सों में एक स्थायी समस्या है। भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार देश भर में 68 प्रतिशत क्षेत्र सूखे से प्रभावित रहता है।

इतिहास एवं कालक्रम

भारत का वर्ष 1877, 1899, 1918, 1972 और 2002 में विषम सूखे की स्थिति का समाना करना पड़ा। देश के प्रायद्वीप, पश्चिमी, शुष्क, अर्ध–शुष्क एवं उप–आर्द्र क्षेत्र सूखे से अति प्रभावित क्षेत्र हैं जो देश कुल क्षेत्रफल का 68 प्रतिशत है।

पिछले 100 वर्षों के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि भारत के शुष्क, अर्ध–शुष्क एवं उप–आर्द्र क्षेत्रों में से कुल वर्षा का 54–57 प्रतिशत सामान्य से भी कम रही है। इन क्षेत्रों को हर 3 से 9 वर्षों में गंभीर एवं दुर्लभ सूखे का सामना करना पड़ता है। सामान्यतः हर तीसरा वर्षा सूखा होता है।

1987 वर्ष का सूखा, इस सदी के भीषण सूखे की समस्याओं में से एक है, जिससे लगभग कुल फसल क्षेत्र का 59–60 प्रतिशत और लगभग 285 लाख की आबादी प्रभावित हुई थी।

हाल में ही 2002 में सूखे से लगभग 300 लाख की आबादी प्रभावित हुई और इस वर्ष मानसून भी इतिहास के सबसे कम मानसूनों में एक था।

सूखा प्रभावित क्षेत्र :–हमारे देश में कृषि वर्षा पर निर्भर है। इसलिए अपर्याप्त वर्षा के कारण, प्रायः सूखा प्रभावित रहते हैं। इस क्षेत्रों में केवल 60 से.मी. की वर्षा होती है जो कि पर्याप्त नहीं है और गंभीर रुप से सूखे से प्रभावित है। भारत के सिंचाई आयोग ने देश के विभिन्न राज्यों जैसे राजस्थान, आन्ध्र–प्रदेश, उत्तर कर्नाटक और महाराष्ट्र आदि के 67 जिलों को अति सूखे प्रभावित क्षेत्रों में घोषित किया है।

सूखे के कारण:– हमारे देश में सूखे का प्रमुख कारण मानसून की अनिश्चितता और अनियमितता है। जिससे दक्षिण–पश्चिम मानसून देश के कुल कृषि क्षेत्र का 68 प्रतिशत को प्रभावित करता है का अति महत्वपूर्ण स्थान है। यह कुल मानसून का 74 प्रतिशत है।

हमारे देश का 68 प्रतिशत फसल क्षेत्र मध्यम और कम वर्षा वाले क्षेत्र में आते हैं। सूखे के मुख्य कारण निम्नलिखित है:–

1. अपर्याप्त वर्षा
2. पर्यावरण में जलवाष्प की कमी
3. जलवायु परिवर्तन :– गर्मी के मौसम के दौरान बढ़ते ताप के कारण जल का वाष्पीकरण तेजी से हो रहा है।
4. महासागर का बढ़ता ताप जैसे एल नीनो प्रभाव
5. हवा की जेट धाराओं में परिवर्तन के कारण
6. स्थानीय परिदृश्य में परिवर्तन के कारण:– जैसे वनों की कटाई
7. दोषपूर्ण कृषि पद्धतियाँ :– वर्षा जल संयचन और भण्डारण नितियों की कमी।

8 सूखे से निपटने के लिए उचित योजना व स्थिति से निपटने का अभाव

सूखे के प्रभाव :– लंबे समय तक सूखे से पर्यावरण, कृषि, स्वास्थ्य, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में गंभीर परिणाम होते हैं।

फसल उत्पादन पर प्रभाव:– 2002 में आये सूखे ने खाद्य उत्पादन को सबसे अधिक प्रभावित किया, जिसके कारण इस वर्ष का कुल खाद्य उत्पादन 183 मिलियन टन रहा जो कि पिछले वर्ष (2001) के उत्पादन से लगभग 29 लाख टन कम था।

सन् 2002 ई. में अकेले ऋतु में वर्षा की कमी के कारण 18 लाख हैक्टर फसल क्षेत्र में बुवाई ही नहीं हो पाई है। रबी फसल के दौरान रबी सीजन में केवल राजस्थान में ही 31. 95 लाख हैक्टर में बुवाई नहीं हो सकी जो कि कुल फसल क्षेत्र का लगभग 50 प्रतिशत है तथा इस वर्ष के रबी फसल उत्पादन में 8 प्रतिशत की गिरावट आई जो कि अब तक आये सूखों में से रबी फसलों की सबसे अधिक हानि हुई है तथा कुल 37882 करोड़ रुपये की हानि हुई।

पशु व चारा पर प्रभाव:– वैसे तो सूखे के सभी क्षेत्रों पर बड़े ही प्रतिकूल प्रभाव होते, परन्तु इसका पशुओं व उनके चारा पर सीधे तौर पर बहुत ही गंभीर प्रभाव पड़ते हैं जैसे 2002 में सूखे के दौरान, 18 राज्यों के 296.46 मिलियन पशुओं में से लगभग 150 मिलियन पशुओं को प्रभावित किया।

सूखा प्रबन्धन:– प्राकृतिक आपदा जैसे भूंकप या चक्रवात के विपरीत, सूखे की स्थिति को भविष्य में ही पहचाना जा सकता है। इसलिए सूखे से निपटने और इससे होने वाली भिन्न प्रकार की हानि से निपटने की रुप रेखा को तैयार करने का पर्याप्त समय मिल जाता है जिससे इसके कारण होने वाले गंभीर परिणामों को कम किया जा सकता है। सूखा प्रबंधन के विभिन्न कारक इस प्रकार हैः–

- **मृदा एवं जल संरक्षण** :– मृदा संरक्षण सूखा मृदा पर अति गंभीर प्रभाव डालता है जैसे भूमि कटाव, क्षरण, मूलभूत संरचना में अव्यवस्था तथा मृदा की जैव विविधता, उर्वरता आदि। अव्यवस्था इसलिए विभिन्न प्रकार की भूमि संरक्षण क्रियाओं या विधियों के माध्यम से हम मृदा में होने वाली क्षरण को कम किया जा सकता है जो कि निम्नलिखित हैंः–

1 विभिन्न प्रकार के फसल–चक्र
2 सीढ़ीनुमा फसल बुवाई
3 विभिन्न प्रकार की जुताई जैसे जीरो टीलेज
4 कटाव नियंत्रण करने के उपायः–
जैसे समोच्च बन्ध बनाकर होती :– दो बन्धों के बीच की भूमि खेती के जाये, इस प्रकार की भूमि पर भूमि एवं नमी संरक्षण साथ–साथ हो जाते हैं।

- **जल प्रबन्धन एवं संरक्षण** :–वर्षा एवं बाढ़ के बाद तथा विभिन्न प्रकार की औद्योगिक ईकाइयों से निश्कासित जल का कुशल प्रबंध व संरक्षण होना चाहिए। जल प्रबंधन एवं संरक्षण के विभिन्न उपाय निम्नलिखित हैं।
- **जल भण्डारण** :– तालाबों द्वारा, खुले कुएं आदि में वर्षा के जल का संग्रहण आदि।
- **कृषि के लिए सूखा प्रबंधन** :–हमारे देश में निरंतर सूखे के कारण गंभीर सामाजिक एवं आर्थिक दुष्प्रभाव होते हैं। परन्तु सूखे के कारण कृषि विकास एवं उत्पादन पर अति गंभीर प्रभाव पड़ते हैं। अगर हम सूखे से निपटने के लिए पहले से ही रणनीति तैयार रखें तो इससे होने वाले दीर्घकालिक प्रभावों को कम किया जा सकता है। इसके प्रबंधन के लिए विभिन्न रणनिति इस प्रकार हैः
- **मिट्टी की उचित कार्बनिक संरचना बनाये रखना**:– गोबर खाद, हरित खाद आदि द्वारा मल्च व कवर फसल आदि। इन सभी उपायों से मिट्टी की कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि होती है, जिससे मिट्टी में नमी को देर तक धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है।
- **उचित फसल प्रबंधन**:– उचित फसल पद्धति, विभिन्न फसल–चक्र एवं सस्य क्रियाओं का चयन जैसे ग्रीष्म एवं रबी चावल की बोरो विधि से होती है।
- रबी में मक्का, दलहनी और कम जल खपत वाली फसलें जैसे ज्वार, बाजरा, ग्वार आदि।
- शीघ्र परिपक्व होने वाली फसलों की किस्में।

सूखा सहिष्णु एवं प्रतिरोधक क्षमता वाली फसलों की किस्मों का चयन जैसे

पूर्वी उत्तर प्रदेश में देरी से गेहूँ की बुवाई के लिए शून्य जुताई तकनीक का महत्व

अजीत सिंह[1], अमित कुमार[1], श्रवण कुमार[2], अनुज कुमार[2], आशीष ओझा[2], जयदेव कुमार[2] एवं प्रदीप कुमार[2]

1 पीएच. डी. छात्र (नरेन्द्र देव कृषि एंव प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद)

2 शोध सहायक, भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक देश है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में खेती लगभग 48 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है। जिसका लगभग 90 प्रतिशत भाग धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अन्तर्गत आता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गेहूँ की औसत उपज लगभग 2850 किग्रा0 प्रति हैक्टर है, जो अन्य गेहूँ उत्पादक राज्यों जैसे, पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में काफी कम है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गेहूँ की बुआई उन क्षेत्रो में देर से हो पाती है जहाँ मिट्टी भारी व अधिक नमीयुक्त धान की लम्बी अवधि की फसल होती है। इस प्रकार की भूमियों में 4–5 जुताई कर गेहूँ की बुआई की जाती है जिसमें 15–20 दिन का बुआई में विलम्ब व उत्पादन व्यय भी बढ़ जाता है। देर से बोई गई गेहूँ की पकने की अवधि कम हो जाती है और उपज पर भी प्रभाव पड़ता है। इस समस्या के निदान हेतु जीरो टिलेज तकनीक विकसित की गयी है। जिसके अनुसार धान की कटाई के तुरन्त बाद उचित नमी होने पर खेत की बिना जुताई किये गेहूँ की बुआई की जा सकती है।

जीरो टिलेज क्या है?

इस तकनीक के अन्तर्गत गेहूँ की बुआई धान काटने के उपरान्त बिना जुताई किये जीरो टिल ड्रिल मशीन से करने की तकनीकी को जीरो टिलेज कहते हैं। इस मशीन में मिट्टी को चीरने वाले शावेल लगे होते हैं, जो ट्रैक्टर में जोड़ने के बाद खेत में धान की ढूँठ को चीरते हुए पतली लाईन बनाते हैं। जिनमें दानेदार उर्वरक एवं बीज एक निश्चित गहराई पर एक साथ बोया जाता है।

जीरो टिलेज ही क्यों?

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि अत्यधिक जुताई का उपज या उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, बल्कि साथ–साथ कई जुताई करने से गेहूँ का उत्पादन व्यय भी बढ़ जाता है। जीरो टिलेज तकनीक अपनाने पर सीमित व्यय और कम समय में ज्यादा क्षेत्रफल की बुआई हो सकती है।

जीरो टिलेज कहाँ?

जीरो टिलेज से गेहूँ की बुआई करने के लिए निचली भूमियां ऊपर वाली भूमियों की तुलना में ज्यादा उपयुक्त पायी गयी हैं। निचली भूमियों में धान की फसल व ज्यादा पानी होने के कारण खेत धान की कटाई के बाद खरपतवार रहित होते हैं। ऊपर वाली भूमि यदि खरपतवार रहित व उचित नमी हो तो जीरो टिलेज तकनीक को सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है। अत्यधिक नमी वाले क्षेत्रो में जहाँ जुताई करने पर बुआई में देरी हो जाती है, वहाँ गेहूँ की बुआई हेतु यह तकनीक ज्यादा लाभप्रद पायी गयी है।

गेहूँ की बुआई में देरी के प्रमुख कारण

1. धान की देरी से रोपाई के कारण

- मानसून का देरी से शुरू होना
- रोपाई के लिए पर्याप्त नमी की कमी होना
- श्रमिकों का अनुपलब्धता

2. धान की देरी से कटाई के कारण

- देर से पकने वाली प्रजातियों को उगाना
- वर्षा का देर तक होना
- मृदा अत्यधिक नम होना
- श्रमिकों की अनुपलब्धता
- गेहूँ बोने से पूर्व नमी की कमी /अधिकता का होना
- ट्रैक्टर व उपयुक्त यंत्रों की अनुपलब्धता का होना
- कटाई व गहाई की लंबी अवधि

जीरो टिलेज तकनीक को अपनाकर इस हानि की भरपाई की जा सकती है तथा खेत की तैयारी पर होने वाले व्यय (ट्रैक्टर, श्रमिक व डीजल इत्यादि) को कम किया जा सकता है। धान के कटाई के उपरान्त बची हुई नमी का उपयोग करके जीरो टिलेज मशीन द्वारा गेहूँ की बुवाई करना चाहिए। यदि खेत में नमी कम होने की सम्भावना हो तो धान की कटाई से पूर्व हल्की सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए। उचित नमी पर बुवाई करने पर बीज का जमाव अच्छा होता है फिर भी यदि बुवाई में ज्यादा विलम्ब हो रहा हो तथा खेत शुष्क दशा में हो तो मशीन द्वारा बुवाई करने के 4–5 दिन बाद हल्की सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए।

जीरो टिलेज के लाभ

1. खेत की तैयारी का समय बचाकर गेहूँ की बुवाई 15–20 दिन पहले की जा सकती है।
2. खेत की तैयारी पर होने वाला खर्च लगभग रू. 2500 प्रति हैक्टर बचाया जा सकता है।
3. ट्रैक्टर के समय व डीजल दोनो की बचत होती है सामान्यता गेहूँ बोने में ट्रैक्टर के द्वारा 8 से 10 घण्टे प्रति हैक्टर लगते हैं। परन्तु जीरो टिलेज द्वारा यह बुवाई 2–4 घण्टे में हो जाती है। इस प्रकार खेत तैयार करके गेहूँ बोने में 50–60 लीटर डीजल प्रति हैक्टर की तुलना में 6–8 लीटर डीजल में ही एक हैक्टर क्षेत्रफल की बुवाई पूरी हो जाती है।
4. फैलेरिस माइनर (गेहूँ का मामा/मंडूसी) का प्रभाव कम होता है क्योंकि इनके बीज जुताई न करने के कारण गहराई में ही पड़े रहते हैं और भूमि कड़ी होने के कारण इनका जमाव कम हो जाता है। जिससे किसान का खरपतवारनाशी दवाई का खर्च बच जाता है।
5. परम्परागत विधि की अपेक्षा जीरो टिल विधि में बीज का अंकुरण दो दिन पहले होता है।
6. पहली सिचाई में लगभग 20–30 प्रतिशत पानी व समय की बचत होती है तथा खेत में एक समान हल्की सिचाई की जा सकती है। हल्की सिचाई होने पर पौधे पीले नहीं पड़ते हैं। जिसका उपज पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
7. देर से बुवाई की स्थिति में अधिकतर गेहूँ छिटकवा विधि से लगभग 125–150 किग्रा0 प्रति हैक्टर की दर से बोया जाता है। परन्तु जीरो टिलेज मशीन द्वारा बुवाई करके 25–30 किग्रा0 प्रति हैक्टर बीज की बचत की जा सकती है तथा बीज का जमाव समान रूप से लाईनों में होता है।
8. जीरो टिल से बुवाई करने पर दानेदार उर्वरकों का समुचित गहराई पर जड़ के समीप डाला जाता है। जिससे पौधों द्वारा उर्वरक उपयोग क्षमता, छिटकवा विधि की तुलना में ज्यादा होती है।

जीरो टिलेज से हानियाँ

1. दलहनी फसलों में नोड्यूलेशन का प्रभावित होना।
2. कभी–कभी जमाव का प्रभावित होना।
3. पहली फसल के अवशेष रहने पर जीरो टिलेज मशीन का सही संचालन का न हो पाना।
4. फसल अवशेष का उचित प्रबन्धन का न होना।
5. पेस्टीसाइड का अत्यधिक प्रयोग होना।
6. सदैव भारी मशीनरी की आवश्यकता।

खरपतवार नियंत्रण

गेहूँ की बुवाई से पूर्व उगे हुए खरपतवार के नियंत्रण के लिए ग्लाइफोसेट 2.0 कि0ग्रा0 सक्रिय तत्व का 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिडकाव करें। खड़ी फसल में खरपतवार का नियंत्रण आम फसल की तरह करें। गेहूँ का मामा (फेलेरिस माइनर) के नियंत्रण हेतु आईसोप्रोट्यूरान 1.0 किग्रा0, सल्फोसल्फ्यूरान 23.0ग्राम क्लोडिनोफॉप 60.0 ग्राम, फिनोक्साप्राप 90.0 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। इन रसायनों का प्रयोग पहली सिंचाई के बाद 30 दिन की अवस्था में पूर्व करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु 2,4–डी 0.5 किग्रा0 सक्रिय तत्व या 625 ग्राम रसायन प्रति हैक्टर की दर से आइसोप्रोट्यूरॉन के साथ मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है। अन्य क्रियाएँ सामान्य गेहूँ की तरह करें।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें

- धान की कटाई के बाद खेत में पुआल व खरपतवार न रहें क्योंकि यह ड्रिल चलने पर फसते हैं। जिससे ड्रिल का पाईप रूक जाता है जिस कारण कुछ लाईनों में बीज नहीं गिर पाता और वे खाली रह जाती हैं।
- कम नमी की दशा में हल्का पाटा (सुहागा) लगा दें यदि खेत में नमी ज्यादा हो तो पाटा लगायें अन्यथा जमाव कम हो जाता है।
- ड्रिल में केवल दानेदार उर्वरक का ही प्रयोग करें, ताकि पाईप में रूकावट न हो।
- बुवाई करते समय यह सुनिश्चित करे कि मशीन सही स्थिति में है या नही तथा बीज की बुवाई 4–5 सें.मी. की गहराई पर ही करनी चाहिए।
- खरपतवारनाशी का छिड़काव फ्लैट फैन नोजल से ही करें।

कुछ सुझाव

यदि धान के खेत में जीरो टिल से गेहूँ लेना है तो गेहूँ के खेत की तैयारी धान की फसल में ही कर लें, जिससे जीरो टिल गेहूँ बोने में आने वाली समस्याओ का 80 प्रतिशत निदान हो जाता है।

सुरक्षित अनाज भण्डारण

शकुन्तला गुप्ता
कृषि विज्ञान केन्द्र, नगीना (बिजनौर) 246762
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी–विश्वविद्यालय, मेरठ उ.प्र.

भण्डारित अनाज में कीट आक्रमण करते हैं उनमें से कुछ कीट केवल बीज के भ्रूण को ही खाते हैं किन्तु अन्य कीट दाने के अन्दर प्रवेश करके सारा दाना ही चट कर जाते हैं जिससे केवल दाने की पपड़ी रह जाती है। प्रायः अनाज को क्षति पहुँचाने वाले कीटों के साथ बहुत से अन्य कीट भी रहते हैं जो उनके खाये हुये भाग पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

गेहूँ में कीटों द्वारा क्षति

गेहूँ का जब भंडारण करते हैं उस समय कई प्रकार के कीट क्षति पहुँचाते हैं –

- कीट ग्रस्त अनाज का भार कम हो जाता है।
- जब बड़ी संख्या में कीट होते हैं, तो उनके द्वारा खाए जाने से उसके भार में कमी आ जाती है।
- कभी–कभी नमी की मात्रा बढ़ने से अनाज का भार बढ़ जाता है।
- कीटों की अधिकता होने पर अनाज का स्वाद व रंग बदल जाता है।
- अनाज संदूषित भी हो जाता हैं क्योंकि उनमें कीटों का मलमूत्र, मृत कीटों के अंश और मृत डिंभक या ग्रब आदि अनेक हानिप्रद पदार्थ मिल जाते हैं जिससे अनाज संदूषित होने से अनाज खाने, बोने तथा चारे के लिए उपयुक्त नहीं होता है।
- संदूषित अनाज उपयोग करने से एलर्जी तथा खुजली, एग्जिमा दमा हो सकता है।

कीट रहित अनाज की पहचान कैसे करें?

कीट दाने को बाहर से अधिक क्षति पहुँचाता है तथा उसके डिंभक या ग्रब अन्य प्रकार से क्षति पहुँचाते किन्तु आँख से दाने को देखकर पता नहीं चल पाता है, इसकी पहचान करने के तरीके निम्नवत है–

- अनाज को सोडियम सिलिकेट के घोल में डालने से कीट ग्रस्त अनाज पानी के ऊपर तैरने लगता हैं। इस प्रकार अनाज के कीटग्रसन का अनुमान लगाया जा सकता है।
- अम्लीय विधि में पहले 50 मिलीलीटर ग्लेसियल

एसिटिक अम्ल में 950 मिलीलीटर आसुत जल को मिलाकर उसमें 0.5 मिलीलीटर अम्लीय जल को मिलाकर उसमें 0.5 अम्लीय फुकसिन अभिरंजक मिलाया जाता है। फिर 5 मिनट तथा गुनगुने पानी में भीगे अनाज के नमूने को 1–2 मिनट तक घोल में डूबोया जाता है। इसके बाद साफ पानी से धोया जाता हैं। जब गहरे लाल रंग की दिखाई देती है तब कीट दाने को क्षति पहुँचाये हुये हैं।

- आयोडीन विधि – इस विधि में अनाज नमूने को आयोडीन के घोल में डाला जाता हैं तो घून के अंडों की डाटों पर भूरा रंग चढ़ जाता है।

भंडारित अनाज में कीट आते कैसे है?

- कुछ कीट उड़ने में समर्थ होते हैं अनाज गोदामों से उड़कर खड़ी पकी फसल पर अंडे देते हैं इस कीटग्रस्त अनाज से इल्ली या ग्रब खलिहान से निकल कर अनाज खाने लगते हैं या अनाज के साथ गोदामों में साथ चले जाते हैं। यह प्रक्रिया अनुकूल वातावरण पर निर्भर करता है।
- कीट ग्रस्त भंडार को खाली किया जाता है तो कीट उसमें किसी न किसी रुप में रह जाता है जो नये अनाज को खाने लगते हैं ये कीट भंडार में बचे हुये ग्रस्त दानों, भंडार में रखें अन्य सामान तथा मकड़ी के जालों में रह जाते हैं या स्वंय जाले बनाकर रहते हैं।
- रंग के डिब्बे, बैलगाड़ी तथा ट्रक इत्यादि भी अपने साथ कीटों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने का कार्य करते हैं।

- गोदाम/टंकी में कहीं–कहीं पर अधिक नमी के कारण कुछ सफेद दाग बन जाते हैं इन स्थानों पर कीट चिपके रहते हैं और अनकूल दशा में बढ़कर अनाज की हानि पहुँचाने का कार्य करते हैं।

कीटों का नियंत्रण कैसे करें

भंडार की सफाई – यदि भंडार साफ नहीं होता है और उसके फर्श दीवारों छत चौखटों इत्यादि की दरारों में जमा कूड़े में हानिकर कीट जीवित बने रहते हैं। सफाई के लिए सारे कूड़े को इकट्ठा करके जला देना चाहिए। ताकि कीट अन्य स्थानों पर न पहुँच सके। भंडार की दीवार, फर्श तथा छत की दरारों तथा चूहों के बिलों को सीमेंट से भर देना चाहिए।

भंडार में गधंक जलाना –चिकने पक्के फर्श को फिनायल से धोना चाहिए तथा भंडार की दीवारों पर उँचाई तक कोलतार का लेप करने से दीमकों से राहत मिलती हैं पुराने बोरे साफ करके काम लेना चाहिए।

परिरक्षकों का प्रयोग – अनाज भंडारण करने से पहले उसमें परिरक्षक मिलाया जाता है जिससे वह कीटों से सुरक्षित रहे। पंजाब के कुछ जिलों में धान्यागारों में मरुवा नामक पौधे के रस से लिपा जाता हैं। उत्तर पश्चिमी भारत में अनाज में नीम की पत्तियों की 7–10 सेंटीमीटर मोटी परत डाली जाती हैं कुछ प्रदेशों में मुरही आदि का प्रयोग किया जाता है।

अनाजों की छनाई – कीट नियंत्रण के यांत्रिक उपायों में छनाई करने के कई फायदे होते जो निम्नवत हैं–

- छनाई करने से कीटग्रस्त खाद्यान्नो में पर्याप्त कीट निकल जाते हैं जिससे अनाज के दाने आकर्षक तथा स्वस्थ दिखाई देते हैं तथा अनाज का मूल्य एक हद तक बढ़ जाता है।
- जब खाद्यान्नों को बंदरगाहों, रेलवे स्टेशनों इत्यादि से भंडार में पहुँचाया जाता है, उस समय उसकी छनाई किये जाने से कीटों के फैलने की संभावना कम हो जाती है।
- छनाई द्वारा खाद्यान्नों का संदूषण काफी कम हो जाता है।

कीटनाशी रसायनों का प्रयोग

- **मैलाथियान** – मैलाथियान एक प्रभावशाली आम इस्तेमाल में आनेवाली, मनुष्यों को नुकसान न पहुँचाने वाली फास्फेटिक दवा हैं। इस दवा की प्रथम जानकारी अमेरिकन साइनामिड कम्पनी को सन् 1950 में हुई। दवा का रंग पीलापन लिए होता है और इसमें दुर्गन्ध रहती हैं। प्रीमियम ग्रेड मैलाथियान में दुर्गन्ध कम रहती है। दवा का छिड़काव अक्सर कीड़ा लगने से पहले किया जाता है। मैलाथियान 50 प्रतिशत ई0सी0 के एक भाग पानी में मिलाकर 3 लीटर प्रति 100 वर्ग मीटर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। हवा में उड़ते कीड़ों के लिए पानी मिले घोल को एक लीटर प्रति 300 घन मीटर के हिसाब से छिड़कना चाहिए। भण्डार में बोरों दीवारों और फर्श पर छिड़काव करने से रेंगतें हुये कीड़े भी मर जाते हैं।

- **पिरिमीफॉस मिथाईल** (व्यावसायिक नाम एक्टेलिक) – यह एक ओरगेनोफॉस्फोरस समूह का कीटनाशक एवं माइटिसाईड है। यह कीड़ों को प्रधूमन द्वारा मारता हैं। यह मनुष्य और पशुओं के लिए अपेक्षाकृत कम हानिकारक कीटनाशक है यह रसायन 50 प्रतिशत ई0सी0 के रुप में उपलब्ध है।

- **एल्यूमिनियम फॉस्फाइड** – एल्यूमिनियम फॉस्फाइड 15 प्रतिशत वाली 10 ग्राम की गोलियां तथा एल्यूमिनियम फॉस्फाइड 56 प्रतिशत वाला 10 ग्राम का पाउच (थैली) विकसित की है। एल्यूमिनियम फॉस्फाइड 15 प्रतिशत की चार गोलियां एक टिन के पैकिंग में बाजार में उपलब्ध हैं। प्रत्येक गोली में एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की मात्रा तथा वजन 12 ग्राम हैं। इनका आकार बड़ा तथा स्वाद तीखा होता हैं। इनका प्रयोग सभी खाद्यान्न सामग्री में किया जा सकता हैं। प्रधूमन के उपरान्त इनके अवशेष भी हानि रहित हैं। प्रधूमन किए जाने वाले भंडारण पात्र पूर्णतया हवा बंद होने चाहिए। एक टन अनाज के लिए दो गोलियां पर्याप्त हैं। अतः आवश्यकतानुसार गोलियों को सूती कपड़े में बांधकर अनाज से भरे भंडारण पात्र में रखें तथा उसे अच्छी प्रकार बंद कर दें ताकि गैस बाहर न निकल सके। प्रधूमित भंडारण पात्रों को सात दिन तक बंद रखें। हवा की नमी के सम्पर्क में आने पर गोलियों से फॉस्फीन गैस निकलती हैं जो खाद्यान्नों में उपस्थित कीटों को मार देती है।

दूसरी हरित क्रान्ति : एक चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व

लालचन्द प्रसाद एवं अनंत मडकेमोहेकर

आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005.

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ 56 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि सम्बन्धित उत्पादनों पर निर्भर करती है। सन् 1943 में धान एवं अन्य फसलों का उत्पादन कम होने के कारण बंगाल में अकाल पड़ा, जिससे लगभग 30 लाख लोगों को अन्न न मिलने से भूखमरी के कारण अपनी जान गवांनी पड़ी। यह त्रासदी स्पष्ट कर देती है कि अन्न का उत्पादन जरूरत से कम हो तो कितनी जानलेवा हो सकती है। गेहूँ एवं चावल इस समय हमारा प्रमुख अन्न है। एक समय था, जब एक तो सिंचाई के साधन कम थे, साथ ही फसलों की उन्नतशील प्रजातियों का अभाव था। सभी फसलों की खेती होती थी। लेकिन इन दो मुख्य फसलों के अलावा अन्य फसलों का उत्पादन भी कम होता था। सिंचाई के अभाव में सीमित प्रक्षेत्र पर खेती की जा सकती थी। उस समय गेहूँ व धान की जो प्रजातियाँ बोई जाती थीं, उनको उत्पादित प्रजातियों से ही चुनाव करके बनाया जाता था। ये प्रजातियाँ लम्बी हुआ करती थी। इनके तने अधिक खाद को सहन नहीं कर पाते थे नहीं उनके पोषक तत्वों का भरपूर उपयोग कर पाते थे। ये प्रजातियाँ ज्यादा ऊँची व कमजोर होने की वजह से हवा, पानी के मामूली झोके को सहन नहीं कर पाती थीं। तेज हवा के झोकों के कारण पौधे मध्य से ही टूटकर बाली सहित गिर जाते थे। जिससे उत्पादन बहुत ही कम मिलता था। जिसके कारण बढ़ती हुई जनसंख्या को अन्न उपलब्ध कराना मुश्किल हो रहा था।

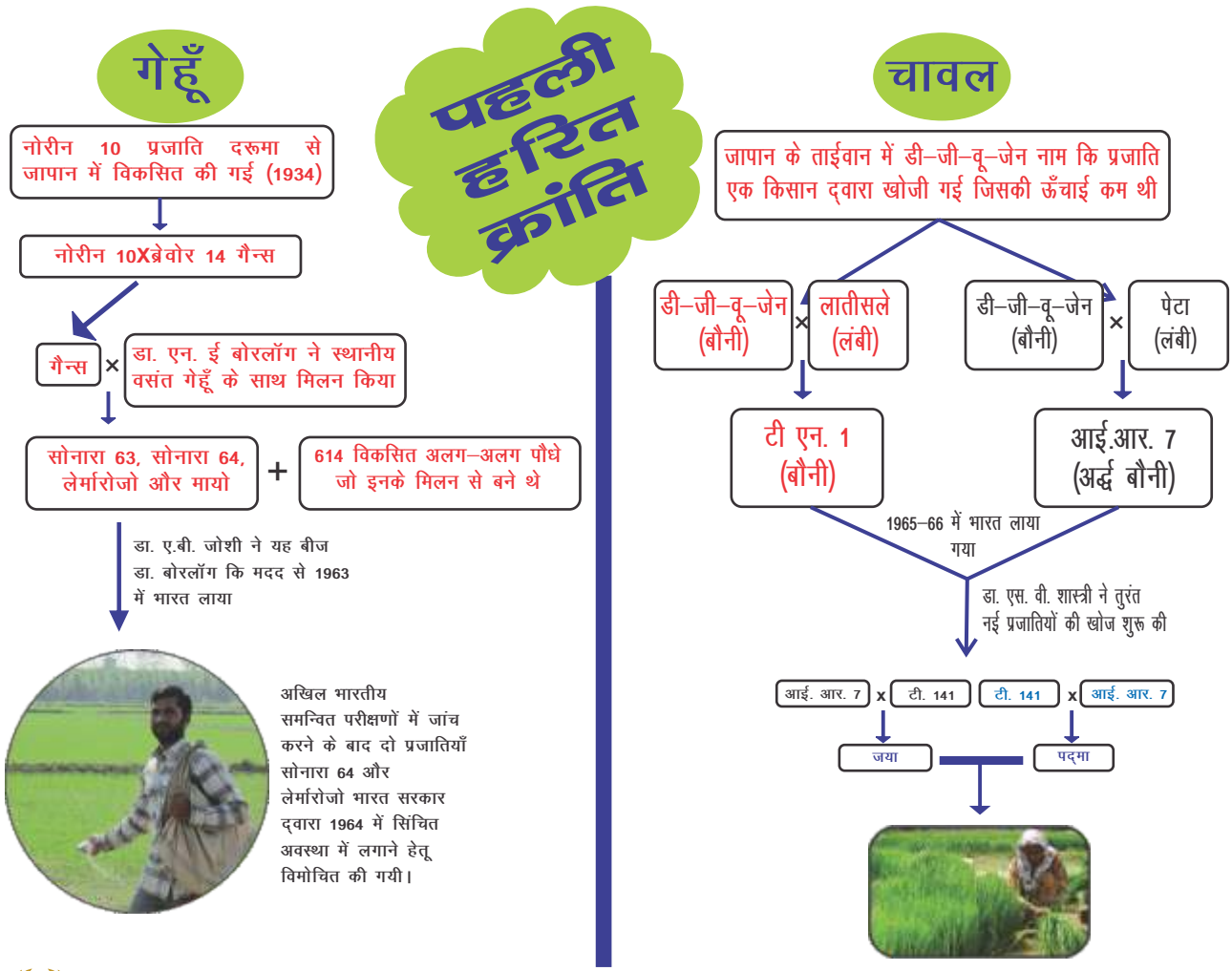

हरित क्रांति के माध्यम

जापान के वैज्ञानिकों द्वारा गेहूँ के दारूमा नाम की गेहूँ की प्रजाति को पहचाना गया। तदुपरान्त दारूमा और फुल्ज प्रजाति का मिलन किया गया, इस मिलन से प्राप्त संतति का मिलन टर्की लाल नामक प्रजाति (अमेरिका की अधिक उत्पादन देने वाली प्रजाति) से किया गया। अब जो संतति बनी वह 1934 में नोरिन 10 प्रजाति कही गई। जो गेहूँ में हरित क्रान्ति लाने में सहायक सिद्ध हुई। डॉ. ओ. ए. वोगेल ने नोरिन 10 का मिलन ब्रेबोर 14 के साथ किया जिससे गेन्स नामक प्रजाति बनी यह प्रजाति अमेरिका में लगाई गई। नोरिन 10 और ब्रेबोर 14 के मिलन से प्राप्त संतति को डॉ एन. ई. बोरलॉग ने अमेरिका और कोलम्बिया देश के बासंतिक गेहूँ के साथ मिलन करके पिटिस, पनजामों, सोनरा 63, सोनरा 64, मायो और लर्मारोजो जैसी नई प्रजातियाँ विकसित की जो बैानी किस्म की प्रजाति थीं। जिनमें रासायनिक खाद और सिंचाई को सहन करने की क्षमता थी। इन प्रजातियों को लगाने से उपज में काफी वृद्धि हुई। सन् 1963 में डॉ0 ए. बी. जोशी ने डॉ एन. ई. बोरलॉग की मदद से यह बीज सन् 1963 में भारत ले आये और भारत में भी गेहूँ की बौनी प्रजातियों को संशोधित करके उत्पादन में बढ़ोत्तरी की गई। ये गेहूँ की प्रजातियाँ ज्यादा तापमान में भी अधिकतम उपज देने की क्षमता रखने के कारण उन क्षेत्रों में भी उगाई जाने लगी जहाँ किसान कभी भी गेहूँ की फसल उगा ही नहीं सकते थे जिससे अनाज उत्पादन में बढ़ात्तरी हुई।

इसी तरह धान की डी जी वू जेन नामक प्रजाति जापान के ताईवान के एक किसान द्वारा खोजी गई जो बौनी प्रजाति थी। इसी प्रजाति के साथ ताईवान में ही लातीस्ले नामक धान की प्रजाति का मिलन करके टाइचूंग नेटिव 1 (टी.एन. 1) नामक प्रजाति विकसित की गई। डी जी वू जेन प्रजाति को अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, फिलीपिंस में समाविष्ट करके पेटा नामक प्रजाति से मिलन किया गया और आई.आर. 8 नामक प्रजाति तैयार की गई। जो अधिकतम उत्पादन देने वाली प्रजातियों में से एक है। 1965–66 में यह दोनों प्रजातियाँ (टी.एन. 1 और आई. आर. 8) भारत में ला करके जया और पद्मा नामक दो

प्रजातियाँ विकसित की गई, जो बौनी होने के कारण अधिकतम उत्पादन देने वाली प्रजातियाँ हैं, साथ ही गेहूँ की तरह ज्यादा खाद और पानी के उपयोग से अधिक उत्पादन देने लगी। इस तरह भारत में पहली हरित क्रान्ति आई, जिससे हमारा देश अपने जरूरत से भी ज्यादा अन्न उत्पादन करके अन्य देशों को अन्न निर्यात करने लगा। लेकिन असन्तुलित मौसम की मार और बराबर बढ़ती जनसंख्या के कारण वर्तमान उत्पादन खाने के लिये कम पड़ने की आशंका हो गयी है। मौसम के इन कारणों पर ध्यान देकर इनके द्वारा होने वाले नुकसान को कुछ हद तक कम किया जा सकता है।

उत्पादन पर वातावरणीय बदलाव का प्रभाव

बढ़ते तापमान और असामयिक बारिश के असंतुलित वितरण से कृषि उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। गेहूँ के लिये उत्तर भारत में तापमान 12.2–27.5 सेन्टीग्रेड होना चाहिये। यदि वातावरणीय तापमान 1 डिग्री सेन्टीग्रेड ज्यादा बढ़ जाय तो 40 से 50 लाख टन गेहूँ के राष्ट्रीय उत्पादन में कमी हो सकती है। देखा जाय तो हरित क्रान्ति आने का कारण गेहूँ एवं धान की बौनी किस्म होने से तथा इन प्रजातियों हेतु संस्तुति रसायनिक खाद की मात्रा और पानी का किसानों द्वारा इस्तेमाल करना ही था। जिससे उत्पादकता बढ़ी थी, लेकिन अधिकांश किसानों द्वारा असंतुलित मात्रा में रसायनिक खाद और पानी का इस्तेमाल करने से जमीन अनुपजाऊ हो रही है। जिससे उत्पादकता कम होती जा रही है। देश में 60 प्रतिशत

किसान पानी के लिये बारिश पर निर्भर करते हैं। बार–बार सूखा पड़ने व असमय एवं अनियमित बारीश से गेहूँ और धान के साथ अन्य फसलों का उत्पादन कम हो रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुये हमें अपने देश में अन्न का उत्पादन डेढ़ गुना बढ़ाना होगा, तभी हम अपने आने वाले दिनों में अन्न की पूर्ति बढ़ती हुई आबादी के अनुसार कर पायेंगे। जरूरत है कि हम ऐसी नई प्रजातियाँ विकसित करें जो कम पानी और बढ़ते तापमान के प्रतिरोधक हों।

दूसरी हरित क्रांति को सफल बनाने हेतु खेती में आवश्यक बदलाव

भारत में साल 2010–11 में सभी फसलों का उत्पादन 240 मिलियन टन से ज्यादा हुआ था। तभी सरकार ने 2020 तक 400 मिलियन टन तक उत्पादन बढ़ाने के लिये निर्धारित किया था। लेकिन आज 2015 में भी हमारा उत्पादन 280 मिलियन टन से ऊपर नहीं बढ़ पा रहा है। लक्षित उत्पादन कुछ प्रकृतिगत और कुछ मनुष्यकृत कारणों से प्राप्त करने में हम सफल नहीं हो पा रहे हैं। ये कारण हैं; हमारे कृषि प्रधान देश में 60 प्रतिशत फसल वर्षा के पानी पर आश्रित होना, खाद की समुचित मात्रा में इस्तेमाल न होना व बुवाई के समय खादों का उपलब्ध न होना। आधुनिक तकनीकी के इस्तेमाल में पिछड़ापन, अच्छी उपज देने वाली उन्नतशील प्रजातियों का बीज खेतों तक न पहुँचना एवं फसल–चक्र प्रबन्धन किए वगैर एक या दो प्रकार के फसलों को लगातार उगाना इत्यादि कारणों से उत्पादन बढ़ नहीं रहा है जो हमारे लिये सचमुच एक बड़ी चुनौती है।

दूसरी हरित क्रांति के लिये निम्नलिखित जरूरी सुझाव

1) कम पानी खाद पर अधिक उत्पादन देने वाली फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि

जिस क्षेत्र में पानी की कमी हो और जमीन हल्की हो वहाँ कम पानी पर उगाई जाने वाली फसलों को उगाना चाहिये। जैसे–बाजरा, ज्वार, मक्का, जौ, चना, सरसों इत्यादि। ये फसलें कम खाद और पानी मिलने पर भी अच्छी उपज दे सकती हैं। महाराष्ट्र में रबी के मौसम में कम पानी वाले क्षेत्र पर ज्वार की बुवाई होती है। जिससे उत्पादन के साथ–साथ जानवरों को खिलाने के लिये चारा भी अच्छी मात्रा में मिल जाता है। इसी तरह राजस्थान में खरीफ के मौसम में बाजरा और रबी के मौसम में सरसों की बुवाई की जाती है।

2) फसल–चक्र का समुचित उपयोग

कई राज्यों में किसान एक या दो फसलों को ही बार–बार उगाने में रूचि रखते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार जैसे राज्यों में धान और गेहूँ के फसल–चक्र को बार–बार अपनाने से जमीन बंजर होती जा रही है और उत्पादकता कम होने लगी है। इसलिये हमें दलहनी फसलों को फसल–चक्र में लाना जरूरी हो गया है, ताकि जमीन बंजर ना हो। इसके साथ ही कुछ फसलों के उत्पाद की माँग ज्यादा होने से किसान को अधिक मुनाफा हो सकता है।

3) कम पानी पर ज्यादा तापरोधी प्रजातियों का चयन

बढ़ते प्रदूषण के कारण वातावरणीय तापक्रम में सतत् वृद्धि होती जा रही है। जिसका असर वर्षा पर भी पड़ रहा है। अप्रत्याशित व असमय तापमान के बढ़ने से गेहूँ का उत्पादन प्रभावित हो रहा है, इसलिये कम पानी पर ज्यादा

तापक्रम रोधी प्रजातियों का चयन करना समय की जरूरत है जिससे उत्पादन पर होने वाला असर कम हो और किसान अच्छी पैदावार ले सकें।

4) बुवाई के समय खाद, बीज और पानी का प्रबन्धन

फसल के उपज क्षमता के बराबर उत्पादन प्राप्त करने के लिये खाद, बीज और पानी का उचित प्रबन्धन बुवाई के समय समूचे किसान तक पहुँचाकर हम हासिल कर सकते हैं। लेकिन देखा गया है कि बुवाई के समय ही इनका अकसर अभाव होता है। जिससे किसान खाद–बीज के लिये दर–दर भटकता है और बुवाई में देर होती है। देर से बुवाई के कारण फसल की उपज क्षमता से कम उत्पादन नहीं मिल पाता है। जिससे सकल उत्पादन घट जाता है। इसलिये अगर हम खाद–पानी, बीज का उचित प्रबन्धन समय से कर पायें तो अधिकतम उपज पा सकते हैं।

5) जरूरत भर पानी का उपयोग

खेती के उत्पादन में पानी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिये किसानों को पानी का न्यायसंगत तरीके से उपयोग करना चाहिये। खेत में सतही सिंचाई के बजाय फव्वारा विधि या टपकन विधि से सिंचाई समाचीन हो गयी है। जिससे सिंचाई के पानी की बचत की जा सकें और अगली फसल के लिये सिंचाई के पानी को बचाया जा सके। जिससे उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी को बरकरार रखा जा सके तथा फसल को जरूरत के अनुसार उचित मात्रा में पानी भी मिल जाय।

6) खरपतवार व रोगों का नियन्त्रण

बुवाई के बाद खेत में उगे नुकसानदायक खरपतवार का समय से नियन्त्रण करके अच्छी उपज ली जा सकती है। दवा ज्यादा असरदार हो इसके लिये दवाओं का समय से सही उपयोग कैसे किया जाय इसके लिये किसानों को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। देखा गया है कि दवाओं का सही और समयावधि के मुताबिक सभी किसान नहीं कर पाते हैं। कभी दवाओं का अधिक तो कभी कम इस्तेमाल करते हैं, जिससे दवाओं का असर कम होता है। दवाओं के समयावधि का भी ध्यान किसान न के बराबर कर खाद्यान्न विषाक्त तो करते ही हैं साथ ही उनको और खाने वालों के सेहत पर पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसे किसानों को प्रशिक्षित कर ही रोका जा सकता है। ऐसा भी देखा गया है कि फसल–चक्र अपनाने पर जो खरपतवार एक फसल उगाने पर उग आते हैं। वह दूसरी फसल उगाने पर कम उगते हैं। जिससे खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। इसलिये फसल–चक्र को अपनाना आवश्यक हो गया है।

7) आधुनिक तकनीकी का समुचित उपयोग

दशकों पहले हमारे किसान बैल से खेती करते थे और काम करने के लिये सभी औजार जो इस्तेमाल होते थे। वह आज के औजारों जैसे कारगर व टिकाऊ नहीं थे। आज खेत की जुताई व अन्य कृषिगत कार्यों के लिये ट्रैक्टर, पावर टिलर, पानी खींचने के लिये मोटर पंप, दूध निकालने के लिये मशीन तथा कीट एवं रोगनाशी के छिड़काव के लिये पंप उपलब्ध है। जिसके उपयोग से किसान का काम आसानी से जल्दी और उत्तम होता है। ग्रीन हाऊस और पॉलीहाऊस का उपयोग करके हमें सब्जियाँ तथा फुल का उत्पादन 10 गुना बढ़ा सकते हैं। फसल (सोयाबीन, गेहूँ, धान, मूँग इत्यादि) काटने के लिये भी मशीने उपलब्ध हैं, जिससे किसान एक दिन में ही पूरी फसल मशीन से काट के तैयार कर सकते हैं। इससे अनावश्यक समय की बर्बादी से बचा जा सकता है तथा कटाई उपरांत होने वाले क्षति से भी किसानों को बचाया जा सकता है।

किसानों के समग्र विकास के लिए भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियाँ

देवमणि बिन्द, दीपक कुमार, सुरेश कुमार एवं संजय कुमार सिंह

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

संस्थान का परिचय एवं उपलब्धियाँ

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल पिछले कई वर्षों से गेहूँ और जौ की नवीनतम प्रौद्योगिकियाँ विकसित व हस्तांतरित कर किसानों के विकास के लिए अमूल्य योगदान दे रहा है। स्वतन्त्रता के बाद देश में गेहूँ एवं चावल अनाज वाली फसलों के विकास में ऐतिहासिक उपलब्धियां हासिल कर हरित क्रान्ति का जन्म हुआ। हरित क्रान्ति की सफलता तथा भारतीय कृषि में मुख्य रुप से गेहूँ तथा जौ की फसलों में अधिक योगदान तथा कृषि के तरीकों को पारंपरिक रुप से आधुनिक बनाने का श्रेय इस संस्थान को ही जाता है। किसानों, वैज्ञानिकों एवं विभिन्न संस्थानों के अनवरत् प्रयासों से गेहूँ उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है जो वर्ष (2013–2014) में उत्पादन 95.85 मिलियन टन हो गया जो एक नया आयाम स्थापित करता है। लेकिन पिछले वर्ष मौसम में आए अप्रत्याशित बदलाव की वजह से सभी क्षेत्रों में उपज में भारी गिरावट देखी गई।

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान पूरे देश में नई उम्मीद एवं अधिक उत्तरदायित्व के साथ अपनी शोध, समन्वय एवं प्रसार की गतिविधियों का समन्वयन बखूबी निभा रहा है। अब तक इस संस्थान के माध्यम से गेहूँ की 12 एवं जौ की 11 प्रजातियाँ विकसित भी जा चुकी हैं। जिससे न केवल देश को खाद्यान्न पैदा करने में, देश को आत्मनिर्भर बनाने में सहायता मिली है वरन् एक लाख करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के कृषि उत्पाद का निर्यात करने में भी हमारा देश सफल रहा है। देश की अलग–अलग कृषि जलवायु स्थितियों में सभी प्रमुख फसलों की उगाई जाने वाली उच्च उपज तथा जैविक/अजैविक दबाव के प्रति सहिष्णु किस्मों का विकास, कुशल उत्पादन प्रौद्योगिकियों तथा सेमिकित फसल प्रबंधन प्रक्रियाओं का विकास (पौध स्वस्थ एवं पोषण प्रबन्धन सहित) कई अभिनव रसायन, संसाधन प्रबन्धन

सारणी नं. 1 विभिन्न फसलों के उत्पादन

फसल	उत्पादन (मि. टन) 2013–2014	2014–2015
गेहूँ	95.85	88.85
चावल	106.66	103.4
दालें	19.78	18.43
कुल खाद्यान्न	265.57	257.07

सारणी नं 2 : बाहरवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान गेहूँ एवं जौ की विकसित किस्में

अनाज		उत्पादन क्षेत्र	बिजाई की दशा	औसत उपज	उत्पादन क्षमता	पकने की अवधि
गेहूँ	डीबीडब्ल्यू 88	उ.प.मै. क्षेत्र	सिंचित, समय से बुआई	54.2	69.9	143 दिन
	डीबीडब्ल्यू 93	प्रायद्वीपीय क्षेत्र	सिंचित, समय से बुआई	29.3	39.0	101 दिन
	डीबीडब्ल्यू 71	उ.प.मै. क्षेत्र	सिंचित, देर से बुआई	42.7	68.9	119 दिन
	डीबीडब्ल्यू 90	उ.प.मै. क्षेत्र	सिंचित, देर से बुआई	42.7	66.6	121 दिन
	डीबीडब्ल्यू 110	मध्य क्षेत्र	सिंचित, समय से बुआई	39.2	50.1	124 दिन
	डीबीडब्ल्यू 107	उ.पू.मै. क्षेत्र	सिंचित, देर से बुआई	41.3	68.7	109 दिन
जौ	डीडब्ल्यूआरबी 91	उ.प.मै. क्षेत्र	सिंचित, देर से बुआई	41.96	64.50	115 दिन
	डीडब्ल्यूआरबी 92	उ.प.मै. क्षेत्र	सिंचित, समय से बुआई	43.44	65.54	133 दिन
	डीडब्ल्यूआरबी 101	उ.प.मै. क्षेत्र	सिंचित, समय से बुआई	54.98	50.1	132 दिन

(उ.प.मै. क्षेत्र – उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) (उ.पू.मै. क्षेत्र – उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र)

नीतियों/स्थानीय निर्णय, समर्थक प्रणाली तथा सामाजिक आर्थिक विश्लेषण आधारित संकल्पनाओं एवं नवीन प्रौद्योगिकियों का विकास आदि इस संस्थान के द्योतक हैं।

इस संस्थान ने आधारभूत तथा अग्रणी अनुसंधान सहित रणनीतिक और अनुप्रयुक्त अनुसंधानों द्वारा किसानों के हित में काम करता आ रहा है। नई–नई प्रजातियों का विकास, पारंपरिक तथा आणविक प्रजनन, पानी का प्रबंधन, सामाजिक विज्ञान, फार्म प्रबंधन, जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से नई–नई तकनीकों का विकास, पादप प्रजनन की उत्तम विधियों का सफल प्रयोग जैसे कई क्षेत्रों में इस संस्थान ने विशेष सक्षमता हासिल की है।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान देश के विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए अनाजों (गेहूँ एवं जौ) 09 किस्में (सारणी 2) संस्थान द्वारा विकसित कर किसानों के लिए जारी की गई है।

किसानों के समग्र विकास की युक्तियाँ :– कृषि खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के टिकाऊ विकास एवं गरीबी उनमूलन एक महत्वपूर्ण स्रोत है। देश की बड़ी जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने हेतु कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक संसाधनों के अपघटन के साथ मिलकर खाद्यान्न एवं ऊर्जा से जुड़ी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

भारतीय कृषि द्वारा वैश्विक सकल कृषि घरेलू उत्पाद में 14 प्रतिशत का योगदान करते हुए, विश्व के केवल 9 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि एवं 23 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रफल से विश्व की लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या का भरण–पोषण किया जाता है। देश की लगभग एक तिहाई जनसंख्या गरबी रेखा से नीचे रहती है और लगभग हमारी 80 प्रतिशत भूमि सूखा, बाढ़ एवं चक्रवात के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है।

कृषि क्षेत्र को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अमूल–चूल परिवर्तनों एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। कृषि में नये बदलाव की मांग तेजी से बढ़ रही है। भावी पीढ़ी की खाद्य पसंद में बदलाव आ रहा है तथा कृषि क्षेत्र कम होती लाभप्रदता की समस्या से जुझ रहा है। उभरती चुनौतियों एवं अवसरों के परिणाम समग्र खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में सभी पर्णधारकों को नवीन अन्वेषणों के साथ जोड़कर नवोन्मेश चालित कृषि अनुसंधान प्रणाली में एक आदर्श बदलाव की जरुरत है।

वर्ष 2050 तक वैश्विक खाद्यन्न मांग की दुगुना होने की संभावना है। जबकि उत्पादन वातावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों में लगातार कमी आ रही है। अगले 20 वर्षों में खाद्यान्न का उत्पादन प्रतिवर्ष 5.5 मिलियन टन की दर से बढ़ाने की जरुरत है। बढ़ते शहरीकरण के साथ प्रति व्यक्ति कृषि जोत में दिन–प्रतिदिन कमी आती जा रही है। अतः खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने की एक गंभीर चुनौती है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी कम होती जा रही है जो कि वर्ष 1990–91 में घट कर लगभग 30 प्रतिशत थी और अब घटकर 14 प्रतिशत के लगभग रह गई है। पिछले दो दशकों में कृषि क्षेत्र की औसत आर्थिक वृद्धि दर (6–7 प्रतिशत) लगभग आधी (3 प्रतिशत) रही है। वर्तमान में भी कृषि क्षेत्र में लगभग 52 प्रतिशत कार्य बल को रोजगार मिला हुआ है जोकि वर्ष 1990–91 में लगभग 61 प्रतिशत था। संगठित क्षेत्र में रोजगार की कमी वाली इस प्रवृति से कृषि में युवाओं को बनाए रखने की गंभीर चुनौती सामने आ खड़ी हुई है। किसानों की भावी पीढ़ी कृषि व्यवसाय को जारी नहीं रखना चाहती जो देश के लिए एक गंभीर खतरा है। साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गई है। कृषि उत्पादन को बढ़ाने में भूमि एवं जल अपघटन की समस्या प्रमुख है। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि देश की लगभग 120. 72 मिलियन हैक्टर जमीन मृदा कटाव के कारण अपघटित है और लगभग 8.4 मिलियन हैक्टर जमीन में मृदा लवणता एवं जलभराव की समस्या है। इसके साथ ही फसल उत्पादन चक्र के दौरान बड़ी मात्रा मे पोषक तत्वों का नुकसान होता है। प्रतिवर्ष भारत में लगभग 0.8 मिलियन टन नाइट्रोजन, 1.8 मिलियन टन फास्फोरस एवं 26.3 मिलियन पोटाशियम कम हो रहा है। भारतीय कृषि के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण मुद्दा उत्पादन की अंतिम स्तर की गतिविधियों के साथ कृषि आपूर्ति श्रृखला की अग्रिम

स्तर की गतिविधियों को जोड़ने के लिए क्रिया विधि का विकास करना। किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान द्वारा नवीन प्रौद्योगिकियों का विकास किया जा रहा है।

कृषि मेले का आयोजन :– भारतीय एवं जौ अनुसंधान संस्थान द्वारा कृषि प्रत्येक वर्ष मेले का आयोजन किया जाता है। जिसमें काफी संख्या में किसान भाग लेते हैं। इस मेले में संस्थान द्वारा विभिन्न प्रदर्शनियों एवं प्रक्षेत्र दिवस, नई–नई बीज कंपनियों तथा नई तकनीकों के जानकारी आदि में भागीदारी की जाती है। इस मेले में संस्थान के माध्यम से कृषि प्रौद्योगिकी तथा किसानों को नवीनतम प्रजातियों के बीज वितरित किए जाते हैं ताकि नई प्रजातियों को किसानों के बीच यथा शीघ्र फैलाया जा सके।

मेरा गाँव–मेरा गौरव

भारत गाँवों में बसता है। यदि भारत को विकसित होना है तब इसके गाँवों को भी विकसित करना होगा। भारत के गाँव में खुशहाली लाने के लिए कृषि मंत्रालय की योजना एक महत्वाकाक्षी योजना ''मेरा गाँव मेरा गौरव'' की शुरुआत की गई है जिसमें भारतीय एवं जौ अनुसंधान संस्थान के चार वैज्ञानिकों के समूह द्वारा पांच गाँवों का अंगीकरण किया गया है अर्थात् कुल मिलाकर इस योजना के तहत 52 गाँवों में इसका क्रियान्वयन किया जा रहा है। इसके तहत संस्थान द्वारा विकसित नवीनतम प्रौद्योगिकियों का अनुप्रयोग करने के लिए ग्रामीणों का जागरुक करेगा। प्रत्येक वैज्ञानिक दल गाँवों का नियमित दौरा करते हुए

किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन कराएगा तथा साथ ही साथ उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियां अपनाने के लिए किसानों को प्रेरित करेगा।

इस अनूठी पहल से आदर्श गाँव विकसित हो सकेंगे जो कि पड़ोसी गाँवों के विकास में उत्प्रेरक का कार्य करेंगें। संस्थान के माध्यम से गोद लिए गये गाँवों में मुफ्त बीज एवं मृदा की जांच तथा मृदा स्वस्थ कार्ड उपलब्ध कराया जा रहा है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड

मृदा स्वास्थ्य कार्ड एवं मेरा गाँव मेरा गौरव की पहल भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने दिनांक 19 फरवरी, 2015 को सूरतगढ़, राजस्थान में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना को प्रारंभ किया गया। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के लिए संस्थान द्वारा किसानों के गोद लिए गए गाँव में संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा उनके खेतों पर जाकर किसानों के खेतों से मिट्टी लेकर उसकी जांच प्रयोगशाला में की जाएगी। मिट्टी की जांच के परिणामों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड पर दर्ज किया जाएगा।

ण्कार्ड की सहायता से मिट्टी में पोषक तत्वों की आपूर्ति की जाएगी। इससे उर्वरकों की यथोचित प्रयोग करने, खेती के लिए उपयुक्त फसलों का निर्णय लेने और फसल का उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिलेगी। इसकी सहायता से उसी मिट्टी में भावी पीढ़ी **''स्वास्थ्य मृदा एवं स्वस्थ जीवन''** को फसलों की खेती जारी रखने में मृदा की उर्वरता एवं टिकाऊपन में सुधार लाया जा सकेगा।

संग्रहालय

संस्थान के अन्दर ही एक सुसज्जित गेहूँ एवं जौ संग्रहालय है जिसमें नवीनतम जानकारी हेतु विभिन्न प्रकार की प्रजातियों के बीज एवं उनसे से संबंधित जानकारी कम्प्यूटर एवं टेलीविजन के माध्यम से दी जाती है। इस संग्रहालय में हर महीने दूर–दराज के किसान यहां पर आकर नवीन जानकारियां लेते हैं तथा यहां पर किसानों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है। जिसमें हमारे वैज्ञानिक किसानों एवं विद्यार्थियों को इस संस्थान एवं इसकी

उपलब्धियों के बारे में समय–समय पर जानकारी देते रहते हैं। साथ ही संस्थान के अन्दर एक सुसज्जित पुस्तकालय है। जिसमें किसानों के लिए तथा उनकी समस्याओं के निवारण हेतु अनेक पुस्तिकाएं संस्थान द्वारा बड़े पैमाने पर विस्तार बुलेटिन, पॉकेट बुक, विस्तार कार्ड, फोल्डर आदि का प्रकाशन किसानों के लिए समय–समय पर किया जाता है ताकि हमारे देश के विभिन्न हिस्सों के किसान लाभन्वित हो सकें।

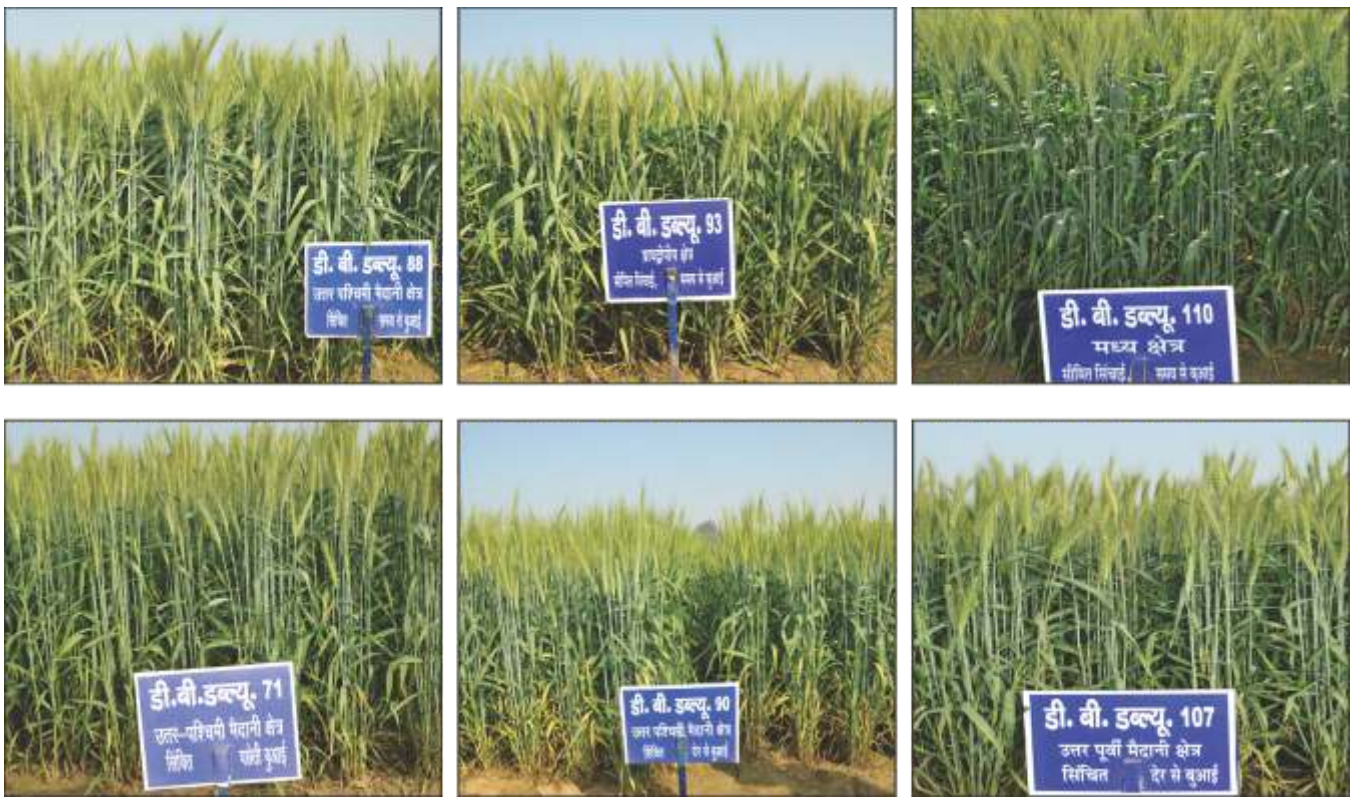

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित गेहूँ की नवीनतम प्रजातियाँ

युवाओं के लिए खेती में आजीविका के अवसर एवं संभावनायें

आत्मानंद त्रिपाठी[1], मुकेश कुमार[1], सुनीति कुमार झा[1] एवं जे के पाण्डेय[2]

1. भा कृ अनु प–केन्द्रीय पटसन एवं संबद्ध रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकता
2. भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

हमारे देश में 56 प्रतिशत से भी ज्यादा जनामानस के रोजगार व जीवनयापन का साधन कृषि है। देश की कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत (62 करोड़) हिस्सा युवाओं का है जिसकी 66 प्रतिशत (41 करोड़) आबादी गाँवों में बसती है। युवाओं को अपनी आजीविका की दशा व दिशा को बदलने हेतु खेती में अपार संभावनाएं एवं अवसर उपलब्ध हैं। 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती खाद्य सुरक्षा से जुड़ी हुई है। वर्तमान समय में 1950–52 की तुलना में खाद्यान्न के उत्पादन में 5 गुना एवं उद्यानिकी के क्षेत्र में 11 गुना की वृद्धि हुई है। देश के कृषि निर्यात से लगभग 39 बिलियन यू.एस. डॉलर के बराबर की विदेशी मुद्रा का अर्जन हो रहा है। हमारे देश में कृषि पर ज्यादा दबाव है क्योंकि पूरे विश्व का 17.6 प्रतिशत जनधन, 15 प्रतिशत पशुधन, 2.4 प्रतिशत भूधन, 4.2 प्रतिशत जलधन एवं 142 मिलियन हैक्टर कृषि क्षेत्र जैसे सीमित संसाधनों से देश की खाद्य सुरक्षा को आत्मनिर्भर बनाना होगा। इस वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक युग में कृषि का स्वरुप (कृषि शिक्षा, कृषि शोध, कृषि प्रसार एवं कृषि बाजार) ऐसा होना चाहिए जो खाद्य सुरक्षा हेतु खाद्यान्न पैदा करने वाले एवं प्रत्येक व्यक्ति का पेट भरने वाले अन्नदाता कृषक का जब भी भर सके।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों, कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं कृषि विश्वविद्यालयों की कृषि शिक्षा, शोध एवं प्रसार की योजना के माध्यम से युवा वर्ग कृषि क्षेत्र की चुनौतियों को अवसर में बदल कर अन्नदाता के रुप में देश की खाद्य, पोषण एवं अपनी आजीविका सुरक्षा को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। देश की खाद्य, पोषण एवं आजीविका सुरक्षा हेतु खाद्यान्न पहली आवश्यकता है। अतः खाद्यान्न देश में पैदा होते रहना अति आवश्यक है। श्रीमद्भगवत गीता में भी अन्न की महत्ता को ''अनादि भविन्त भूतानि'' अर्थात् अन्न ही जीवों के लिए मूल आधार है (कृषि जीवनस्य आधारम) के रुप में वर्णित किया गया है। खाद्यान्न खेती से प्राप्त होता है अतः सब कुछ छोड़कर होशियारी से खेती करना चाहिए और जहां तक संभव हो सके युवाओं को कृषि विज्ञान में निपुणता हासिल करने का प्रयास करना चाहिए। युवाओं को वैज्ञानिक तकनीकों, सरकारी एवं सहकारी नीतियों के माध्यम से कृषि की दशा व दिशा को नीति एवं नियति के अनुरुप कृषि क्षेत्र से जुड़कर परिषद के कृषि कार्यक्रमों जैस फार्मर फर्स्ट, आर्या, स्टूडेण्ट रेडी, मेरा गाँव मेरा गौरव को अपनाकर अतुल्य भारत/मेक इन इंडिया के माध्यम से विश्व के बाजार में अपना स्थान बनाकर खेती से आजीविका एवं जीवन सुरक्षा के प्रति आत्मविश्वास पैदा करना चाहिए। महान कृषि ज्योतिषाचार्य घाघ एवं भड्डारी ने कृषि की महत्ता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है ''उत्तम खेती, मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान, 'जिसका अभिप्राय यह है की सभी व्यवसायों व धनोपार्जन के तरीकों में खेती ही श्रेष्ठ एवं ईमानदारी का व्यवसाय है। हमारे देश के युवा हरित क्रांति (खाद्यान्न उत्पादन), श्वेत क्रांति (दुग्ध उत्पादन), पीली क्रांति (तिलहन उत्पादन), नीली क्रांति (मत्स्य उत्पादन), उद्यानिकी, वानिकी, ऊर्जा क्रांति के द्वारा मरुस्थल से लेकर सागर तट तक इंद्रधनुषी क्रांति लाकर फसलों की अधिक उत्पादकता हेतु मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखने के साथ–साथ प्रति बूंद प्रति ईकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन कर अपनी आजीविका के गरिमा एवं महिमामय आयाम स्थापित कर सकते हैं। जबकि द्वितीयक कृषि (खाद्य प्रसंस्करण/कटाई उपरांत प्रबंधन) के अंतर्गत खेत से बाजार तक, संरक्षित कृषि (मौसम/बेमौसम एवं कृषि क्षेत्र से परे सब्जियों एवं फल–फूलों व मशरुम की खेती), जैविक खेती, वर्मीकल्चर, औषधीय पौधों की खेती, रेशम पालन, बीज गाँव, बीज बैंक, बीज घाटी, जैव गाँव, फूड पार्क, ई–खेती, ई–बाजार/विपणन एवं कृषि पर्यटन, के माध्यम से विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं बदलती हुई जलवायुवीय परिस्थितियों में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के दृष्टिकोण से कृषि क्षेत्र की चुनौतियों को अवसर/संभावनाओं में बदल कर आजीविका, कृषि उद्यमिता एवं स्वरोजगार के नये अवसर सृजित कर सकते हैं। सिंचित/बरानी क्षेत्रों में कृषि एवं उद्यानिकी में विविधीकरण एवं नवाचार के माध्यम से प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम के अंतर्गत, कृषि के मुख्य स्तम्भों (प्राकृतिक संसाधनों) जैसे भूमि, जल, जलवायु, बीज, कृषक एवं कृषि औजार का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ–साथ नवोन्मेषी

दोहन के माध्यम से कृषि को लाभकारी व्यवसाय का रुप देकर युवाओं को कृषि के प्रति आकर्षित कर उनकी आजीविका को सुनिश्चित किया जा सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 87वें स्थापना दिवस के समारोह में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने बिहार की राजधानी पटना से चतुर क्रांति का शंखनाद कर देश के कृषि वैज्ञानिकों से दूसरी हरित क्रांति लाने हेतु मानचित्र तैयार करने का अनुरोध किया है जिससे खाद्य व पोषण सुरक्षा के साथ–साथ नई कृषि नीति के माध्यम से कृषकों एवं युवाओं की आजीविका भी सुरक्षित हो सके। इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षण करना अति आवश्यक है जो इस प्रकार वर्णित किये जो रहे हैः–

1 **कृषि प्रसार**– वैज्ञानिक उपलब्धियों को केवल प्रयोगशालाओं तक ही सीमित न रखकर किसानों एवं खेतों तक पहुंचाना अर्थात् प्रयोगशाला से खेत तक (लैब टु लैण्ड) एवं खेत से प्रयोगशाला तक तक (लैण्ड टु लैब) कार्यक्रम पर जोर देना होगा।

2 **उच्च उत्पादकता** – ज्यादा उत्पादकता हेतु मृदा की गुणवत्ता को बनाये रखने के साथ–साथ प्रति बूँद प्रति ईकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन का प्रयास करना होगा। दलहन, तिलहन, पशुपालन, मशरुम, मुधमक्खी पालन, वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन एवं समुद्री खेती (मत्स्य पालन) पर ध्यान देना होगा। आनुवंशिक रुप से रुपांतरित फसलों की रोग एवं कीटरोधी की खेती से कम लागत में अधिक उपज की प्राप्ति के साथ–साथ कम लागत वाली टिकाऊ जैविक खेती को भी बढ़ावा मिलेगा।

3 **संरक्षित कृषि**–बदलते हुए जलवायुदीय परिदृश्य में संरक्षित कृषि के माध्यम से युवा एवं कृषक अधिक आय व कम समयावधि वाली फसलों जैसे सब्जी एवं फल–फूल की मौसम/बेमौसम एवं उपयुक्त/अनुपयुक्त कृषि क्षेत्रों में खेती पर स्वरोजगार के नये अवसर सृजित कर ज्यादा लाभ कमा सकते हैं।

4 **द्वितीयक कृषि**– कटाई उपरान्त कृषि प्रबंधन एवं खाद्य प्रसंस्करण की सहायता से कृषि उत्पादों के मूल्यवर्धन एवं उनके भण्डारण पर जोर देना होगा जो कृषि उत्पादों को नष्ट होने से बचा सके जिससे कृषकों को उचित मूल्य एवं देश को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा मिल सके। हाल में निपुण भारत (स्किल इंडिया) कार्यक्रम के तहत वृहत् पैमाने पर युवाओं को प्रशिक्षित कर रोजगार के अवसर मुहैया कराएं जाएंगे।

5 **मेरा गाँव मेरा गौरव** – (वैज्ञानिक और किसानों की एक डगर, विकास के हमसफर) कृषि वैज्ञानिकों को गांवों को गोद लेने की योजना बनानी चाहिए, जिससे कृषकों एवं वैज्ञानिकों के बीच संपर्क हो सके। इस कार्यक्रम से प्रत्येक कृषक को वैज्ञानिक एवं खेत को प्रयोगशाला के रुप में परिवर्तित किया जा सकेगा। इस योजना का मुख्य उद्देश्य संस्थानों की चारदिवारी से बाहर निकलकर वैज्ञानिकों को किसानों के खेतों एवं गाँवों की वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हुए कृषि अनुसंधान व प्रसार को नई दिशा देना।

6 **फार्मर फर्स्ट**– इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सहायता से कृषकों के आर्थिक विकास पर जोर देना होगा।

7 **आर्या**– इस कार्यक्रम की सहायता से युवाओं को कृषि की और आकर्षित कर कृषि उद्यमिता की संभावनाओं का सृजन करना होगा।

8 **स्टूडेण्ट रेडी**–(विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का साथ कृषकों का आर्थिक–विकास) इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि कैप्सूल के माध्यम से व्यवसायिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर ध्यान देना होगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2014 को "**अंतर्राष्ट्रीय खेतिहर परिवार**" के रुप में मनाकर सभी को भोजन एवं कृषि के संदर्भ में सिंचित/बरानी क्षेत्रों की कृषि एवं उद्यानिकी में विविधीकरण पर जोर देकर कृषकों हेतु कृषि से आजीविका सुरक्षा की नीतिगत पहल की है।

हमारे देश के प्रिय युवा आधुनिक वैज्ञानिक कृषि तकनीकियों के माध्यम से परंपरागत कृषि में इंद्रधनुषी क्रांति लाकर देश के सपने 'जय किसान–जय जवान' के साथ–साथ सीमा पर जय जय जवान, खेतों पर विजित युवा किसान लिखो। धरती से लेकर अंबर तक जयकर्ता विज्ञान लिखो, साँसों की धड़कन–धड़कन पर अपना हिंदुस्तान लिखो, की धुन को साकार करने लायक बना सकेंगे।

विषाक्त होते खाद्य पदार्थ

जीतेन्द्र सिंह, कर्णम वेंकटेश, अनिता मीणा एवं मामृथा एच एम

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि मंत्रालय द्वारा जारी की गई रिपोर्ट के अनुसार कृषि उत्पाद विपणन समीति, जैविक उत्पाद बेचने वाली दुकानों और खुदरा व थोक बाजारों से सब्जियों, फल, दूध, चाय, अंडे, मांस, मसाले, कढ़ी पत्ते, दाल, चावल, गेहूँ, मछली, सामुद्रिक खाद्य उत्पाद आदि के नमूने इकट्ठे किये गये थे और सभी में जहरीले कीटनाशकों का अंश और स्तर उच्च पाया गया है, जो स्वास्थय के लिए बेहद खतरनाक है।

हमारे देश में कीटनाशक नियंत्रण हेतु तीन बड़ी संस्थाएं कार्यरत हैं। ये हैं केन्द्रीय कीटनाशक बोर्ड एवं पंजीकरण समीति, भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक अथॉरिटी ऑफ इंडिया, एग्रीकल्चर एवं प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स डेवलपमेंट अथॉरिटी। ये तीनों संस्थान, क्रमशः कृषि, स्वास्थ्य और वाणिज्य मंत्रालय के तहत काम करते हैं, लेकिन सबसे बड़ी दिक्कत यही है कि इनके काम–काज में आपसी तालमेल का अभाव है। इसी वजह से प्रतिबंधित कीटनाशकों की बिक्री सरेआम खुले बाजार में हो रही है। इनकी बिक्री के लिए लाइसेंस देने की प्रक्रिया भी बेहद लचर है। जहां एशिया के प्रमुख देशों में मोनोक्रोटोफास जैसे कीटनाशकों को सिरे से ही प्रतिबंधित कर दिया है, परन्तु भारत में इसका उत्पादन, इस्तेमाल और दूसरे देशों को निर्यात का सिलसिला अब भी जारी है।

मैगी नूडल उत्पाद के नमूनों की जांच हुई और कई नमूनों मे मैगी के नूडल में सामान्य से 17 गुना ज्यादा शीशा (लेड) और मोनो सोडियम ग्लूटामेट (अजीनोमोटो) पाया गया है। सीसा (लेड) अत्यन्त विषैला धातु माना जाता है, जिसकी वजह से कैंसर, मस्तिष्क रोग, मिर्गी, किडनी की बीमारी और ज्यादा मात्रा हो जाने पर मौत तक हो सकती है। छोटे बच्चों के मामलों में खाद्य में शीशे के प्रभाव से दिमागी विकास पर स्थायी नुकसान पहुँचता है, जो ठीक नहीं हो सकता है। अजीनोमोटो के उपयोग से सरदर्द, पसीना आना, चेहरे की माँसपेशियों पर तनाव, चेहरे, गर्दन और शरीर के अन्य हिस्सों में सूखापन, सिहरन या जलन का अनुभव होता है।

डेयरियों पर बेचे जाने वाले दूध को ताजा रखने के लिए इसमें हाइड्रोजन पेरॉक्साइड (हेअर ब्लीचिंग एजेन्ट), पोटाशियम हाइड्रोक्साइड, हाइपो की मिलावट होती है। इस मिलावटी दूध के सेवन से पेट में जलन होती है। लंबे समय तक पीने से किडनी और लीवर खराब हो सकते हैं। गाय तथा भैस से जबरदस्ती दूध उतारने हेतु 'ऑक्सीटोसिन' इंजेक्शन का प्रयोग किया जाता है, जबकि 'ऑक्सीटोसिन' को पशु–क्रूरता अधिनियम 1960 की धारा 12 के अनुसार गाय व भैंसों के लिए प्रतिबंधित किया गया है। मनुष्य में 'ऑक्सीटोसिन' युक्त दूध के सेवन से हार्मोन असंतुलित हो जाते हैं। इससे नपुंसकता, छोटी आंत का कैंसर, मासिक धर्म संबंधी बिमारियां हो जाती हैं। भैंस तथा गाय के दूध में कीटनाशक मौजूद है, जो चारे के जरिये इनके शरीर में पहुंचते हैं।

	भैंस के दूध में कीटनाशक	गाय के दूध में कीटनाशक
मौसम	मात्रा	मात्रा
सर्दी	11.79 पी.पी.एम.	7.10 पी.पी.एम.
गर्मी	6.61 पी.पी.एम.	4.82 पी.पी.एम.
वर्षा	5.57 पी.पी.एम.	2.43 पी.पी.एम.

केन्द्रीय एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन केन्द्र, लखनऊ के शोध से ज्ञात हुआ है कि अधिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से उगाये अनाज एवं सब्जियों के सेवन से मनुष्य के शरीर में प्रतिदिन 0.27 मिलीग्राम विष पहुंच रहा है। वर्ष भर में इस मात्रा को जोड़े तो ये लगभग 100 मिलीग्राम हो जाती हैं यदि इतनी मात्रा में जहर का सेवन एक साथ किया जाए तो मनुष्य बच नहीं सकता। देश में विभिन्न ब्रान्डेड गेहूँ के आटे में पेस्टीसाइड, डी.डी.टी., एल्ड्रिन, डायएड्रिन, लिंडेन के अंश पाये गये हैं। इन नमूनों में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रसायनों की मात्रा खाद्य पदार्थों में मिलावट कानून (पी.एफ.एक्ट) 1954 के नियम में निर्धारित मात्रा से बहुत ज्यादा पाई गई है।

फूलगोभी में अधिक सफेदी उत्पन्न करने के लिए मिथाइल पेराथियान छिड़का जाता है, जो हमारी पाचन प्रणाली को

खाद्य पदार्थ और उनमें डी.डी.टी. की मात्रा की तालिका

खाद्य पदार्थ के नाम	डी.डी.टी. की मात्रा
गेहूँ	1.60–17.40 पी.पी.एम.
चावल	0.80–16.40 पी.पी.एम.
मूँगफली	3.0–19.90 पी.पी.एम.
आम	68.50 पी.पी.एम.

हानि पहुंचाता है। भिन्डी, परवल में अधिक हरा दिखाने के लिए बिक्री से कुछ समय पूर्व कॉपर सल्फेट में डुबाया जाता है।

माँ के दूध में भी हानिकारक कीटनाशक रसायनों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जो माँ तथा बच्चों दोनों के लिए खतरा है। बच्चे के मुँह से लार गिरना, पेशाब ज्यादा आना, डायरिया का प्रकोप ज्यादा होना, फेफड़ों के रोग बढ़ना, शारीरिक व मानसिक विकलांग बच्चे का जन्म लेना, साथ ही अत्यधिक कीटनाशकों के इस्तेमाल वाली हरी सब्जियों आदि के सेवन के कारण महिलाओं में गर्भपात, मृत शिशु पैदा होना (मरा हुआ बच्चा पैदा होना), समय से पूर्व बच्चा पैदा होना आदि विकृतियां दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका प्रमुख कारण पेस्टीसाइड माना गया है। पेस्टीसाइड मनुष्य में पाये जाने वाले क्रोमिक एसिड निर्माण को बाधित करता है, जो बच्चों के विकास मे काफी सहायक है। पुरुपों के शुक्राणु स्तर में पेस्टीसाइड्स के कारण कमी पाई जाती है।

सुप्रीम कोर्ट ने खाद्य और पेय पदार्थों को लेकर केन्द्र और राज्य सरकारों को कई बार फटकार लगा चुका है। कोर्ट ने तो मिलावट करने वालों को उम्र कैद की सजा देने के प्रावधान तक की बात की है।

सब्जियों में कीटनाशकों की मात्रा की तालिका

सब्जी	मात्रा	डब्ल्यू.एच.ओ. मानक	स्वास्थ्य मंत्रालय मानक	बाजार की हालत शोध में पाई गई
आलू	1 किलोग्राम	0.0181 मिलीग्राम	6.65 मिलीग्राम	20.60 मिलीग्राम
पालक	1 किलोग्राम	0.0181 मिलीग्राम	6.65 मिलीग्राम	20.44 मिलीग्राम
भिन्डी	1 किलोग्राम	0.0181 मिलीग्राम	6.65 मिलीग्राम	17.82 मिलीग्राम
गोभी	1 किलोग्राम	0.0181 मिलीग्राम	6.65 मिलीग्राम	21.20 मिलीग्राम
टमाटर	1 किलोग्राम	0.0181 मिलीग्राम	6.65 मिलीग्राम	17.04 मिलीग्राम

माँ के दूध में कीटनाशकों की मात्रा की तालिका

माताओं की श्रेणी	नमूनों की संख्या	कीटनाशकों की मात्रा
1 शहरी क्षेत्र की माता	50	3.91 पी.पी.एम.
2 ग्रामीण क्षेत्र की माता	50	6.00 पी.पी.एम.
3 तंबाकू आदि का सेवन नहीं करने वाली माता	50	3.74 पी.पी.एम.
4 तंबाकू आदि का सेवन करने वाली माता	50	6.01 पी.पी.एम.
5 श्रमिक माता	50	6.11 पी.पी.एम.
6 गैर श्रमिक माता	50	4.76 पी.पी.एम.

स्रोतः राजस्थान पत्रिका

जैव सूचना विज्ञान का कृषि के क्षेत्र में योगदान

जीतेन्द्र सिंह, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, कर्णम वेंकटेश, मामृथा एच एम, अनिता मीणा एवं अनुज कुमार

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जैव सूचना विज्ञान (बायोईन्फॉरमेटिक्स) एक अंतः विषय क्षेत्र है जो जैविक आंकड़ों (डेटा) को समझने के तरीके और सॉफ्टवेयर विकसित करता है। विज्ञान के अंतः विषय क्षेत्र के रूप में, जैव सूचना विश्लेषण और जैविक डेटा की व्याख्या करने के लिए संगणक (कम्पयूटर) विज्ञान, सांख्यिकी, गणित और अभियांत्रिकी को जोड़ती है। जैव सूचना विज्ञान, विज्ञान का एक नया क्षेत्र है, लेकिन यह बहुत तेजी से जैव प्रौद्योगिकी के हर क्षेत्र में प्रगति कर रहा है। इसका उपयोग कृषि के क्षेत्र में, जीनोम की जानकारी प्राप्त करने में होता है तथा यह पौधों तथा जानवरों के जीनोम अनुक्रमण की जानकारी प्रदान करता है जो कि कृषि के लिए लाभदायक है। जैव सूचना विज्ञान के द्वारा हम विभिन्न प्रकार की प्रजातियों के जीनोम डाटा का विश्लेषण करते हैं तथा हम जीनोम के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करते हैं। जैव सूचना विज्ञान के द्वारा हम जीनों को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों तथा फंक्शन की संभावित भविष्याणी करते हैं।

डेटा विश्लेषण

जैव सूचना विज्ञान के द्वारा कृषि के डेटा का विश्लेषण करने के लिए विभिन्न प्रकार के साफ्टवेयर का उपयोग करते हैं जैसे SPAR 1.0 (statistical package for agriculture research var. 1.0) मुख्य रूप से पादप प्रजनन और आनुवंशिक में प्रायोगिक अनुसंधान आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए उपयोग किया जाता है। यह विंडोज आधारित साफ्टवेयर है। SAS (Statistical Analysis System) का उपयोग पौधों तथा जानवरों के डेटा विश्लेषण के लिए करते हैं।

ट्रिम्बल एक कृषि आधारित साफ्टवेयर है जो मानचित्रण, लेखांकन, जल प्रबंधन के डेटा विश्लेषण के लिए उपयोग करते हैं। WASP% यह सबसे पहला वेब आधारित कृषि सांख्यिकी सॉफ्टवेयर है, जो कृषि डेटा का विश्लेषण करता है।

जीन भविष्यवाणी

कम्पयूटेशनल जीव विज्ञान में जीन भविष्यवाणी अथवा जीन निष्कर्ष, जीन को सांकेतिक शब्दों में बदलते हैं, जो जीनोमिक डी.एन.ए. के क्षेत्रों की पहचान करने की प्रक्रिया को दर्शाते हैं। इसमें प्रोटीन–जीन कोडिंग के साथ आर. एन.ए. जीन भी शामिल है, लेकिन यह भी इस तरह के नियामक क्षेत्रों (रेगुलेटरी रीजन) के रूप में अन्य कार्यात्मक तत्त्वों की भविष्यवाणी में शामिल हो सकते हैं। जीन निष्कर्षण अनुक्रम निर्धारण तथा जीनोम की प्रजाति को समझने के लिए एक पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदमों में से एक है।

जीन भविष्यवाणी एक महत्वपूर्ण कदम है, जीनोम एनोटेशन, अनुक्रमण वर्ग से नॉन कोडिंग क्षेत्र को छानना और दोबारा छुपाव में। जीन भविष्यवाणी, लक्ष्य खोज समस्या (target search problem) से निकट संबंधित है, जो डी.एन.ए. जुड़ाव प्रोटीन, प्रति लेखन कारक (transcription factor), जीनोम के अंदर विशिष्ट बांध्यकारी क्षेत्रों (specific binding sites) का पता लगाने में करते हैं।

संरचनात्मक जीन भविष्यवाणी के कई पहुलओं को जैसे ट्रांसक्रिप्टोमिक, प्रोटीयोमिक्स मेटाबोलोमीक्स संरचनात्मक एवं कार्यात्मक जीनोमिक्स के रूप में विभिन्न ओमिक्स क्षेत्रों में सक्रिय अनुसंधान का विषय है जो इस तरह के जीन प्रतिलेखन (gene transcription), ट्रांसलेशन, प्रोटीन–प्रोटीन अंतर्संबंध और नियंत्रण विधि के रूप में कोशिका में अंतर्निहित जैव–रसायनिक प्रक्रियाओं की वर्तमान समझ के आधार पर होते हैं।

जीन भविष्यवाणी के विभिन्न प्रकार के सॉफ्टवेयर हैं जैसे; ERGO, GATHER आदि। ERGO एक व्यापक माइक्रोनियल जीनोम डेटावेस है जिसके द्वारा जीन एनोटेशन, प्रोटीन अनुक्रमण और संजाल मेटाबोलिक/नॉन मेटाबोलिक का अध्ययन करते हैं। GATHER

software का उपयोग जीन एंटोलोजी, प्रोटीन बाइंडिंग में करते हैं। KEGG (जीन और जीनोम की क्योटो इनसाइक्लोपीडीया) डेटावेस का उपयोग, जीनोम डेटावेस विश्लेषण, मेटाजिनोमिक्स, प्रणाली जीवविज्ञान में सिमुलेशन तथा मोडिलिंग, दवा शोधन, नाइट्रोजन उपापचय आदि में करते हैं।

अन्य जीन भविष्यवाणी सॉफ्टवेयर तालिका

क्र.सं.	नाम	विवरण
1.	Gene scan/ glimmer	Eukaryotic gene predictor
2.	Glimmer 3	Prokaryotic gene predictor
3.	SNAP	Gene predictor (जीन भविष्यवाणी)
4.	Get ORF	Open Reading Frame Finder (ओ आर एफ खोजी)
5.	BLAT	Transcript के लिए संरेखण (Alignment) उपकरण
6.	SSR Finder	उपयोगकर्ता परिभाषित सरल sequence दोहराना ढूंढना (Finds user designed simple sequence repeats)
7.	t-RNA scan-SE	t-RNA अनुक्रमण पहचानने में
8.	Evidence modeler	सहमति जीन संरचना बनाने में
9.	GRAIL	तंत्रिका नेटवर्क आधारित जीन खोजने में
10.	Geneid	जीन, एक्सॉनो, कटाव क्षेत्र की भविष्यवाणी करने में
11.	Genome scan	जीनोमिक अनुक्रमण में जीन के स्थानों और एक्सॉन–इन्ट्रान संरचनाओं की भविष्यवाणी करने में
12.	NNPP	तंत्रिका नेटवर्क के द्वारा प्रमोटर भविष्यवाणी
13.	Analysis Tools	नॉन कोडिंग (sequence) में नियामक संकेतों (regulatory signals) का पता लगाने में।

कृषि उत्पादों की जीवनावधि (शेल्फ लाईफ) तथा गुणवत्ता बढ़ाने के विभिन्न तरीके

रिंकी[1], आशुतोष श्रीवास्तव[1], काशीनाथ तिवारी[1] एवं संदीप दुहन[2]

1. भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
2. भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत अन्न, फलों तथा सब्जियों के उत्पादन में अग्रणी देश है। एफ.ए.ओ. के अनुसार कटाई के उपरान्त सभी खाद्य उत्पादों का 25 प्रतिशत भाग कीट, रोग, यांत्रिक क्षति तथा खराब भंडारण के कारण बर्बाद हो जाता है। अतः भंडारण की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए सुरक्षित तथा उपयुक्त तरीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

कटाई के उपरान्त होने वाले भौतिक, रासायनिक तथा एंजाइमेटिक विनिमय, पौधे के उत्तकों को नर्म करने, वर्णक घटाने तथा मलिन करने का कारण बनते हैं। ये सब विनिमय आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के परिवर्तनों पर निर्भर करते हैं। भौतिक क्षति तथा सूक्ष्मजीव भी इस क्षय की मात्रा को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अतः इन सभी पर नियंत्रण के पश्चात् ही फलों एवं सब्जियों की जीवना वधि (शेल्फ लाईफ) को बढ़ाया जा सकता है। शेल्फ लाईफ बढ़ाने के लिए मुख्य तकनीक इस प्रकार है;

1 भौतिक प्रक्रियाओं को निष्क्रिय करके उत्तक संरक्षण को बढ़ाना, यानी खाद्य सरंक्षण के लिए कम तापमान पर भंडारण, थर्मल प्रसंस्करण, निर्जली–करण इत्यदि का उपयोग।

2 पूर्व शीलतन, नियंत्रित वातावरण भंडारण तथा इथिलीन के प्रयोग द्वारा भौतिक प्रक्रियाओं की गति को धीमा या अवरुद्ध करके

3 फल तथा सब्जियों के क्षय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रमुख कारक

1 जैविक कारक :

- एथिलीन का उत्पादन
- वष्पोत्सर्जन
- भौतिक क्षति
- श्वसन
- रासायनिक विनिमय

2 बाह्य (पर्यावरण संबंधित) कारक

- तापमान
- सापेक्ष आर्द्रता
- वायुमंडलीय संरचना
- एथिलीन
- प्रकाश

3 शेल्फ लाइफ को बढ़ाने के तरीके

भौतिक तरीके	रासायनिक तरीके
पूर्व शीतलन	क्लोरिन डाइ ऑक्साइड
सापेक्ष आर्द्रता पर नियंत्रण	ब्रोमिन और क्लोरीन
पराबैगनी प्रकाश (यूवी)	पेरोक्सी एसिटिक एसिड
स्पंदित प्रकाश (पी एल)	कैल्शियम आधारित रसायन
शीत भंडारण	
मोम की परत चढ़ाना	
विकिरण	

भौतिक तरीके

1 **पूर्व शीतलन** :– यह कटाई उपरांत होने वाले क्षय को नियंत्रित करने के लिए बागवानी उत्पादों के तापमान प्रबंधन में पहला कदम है। इस विधि द्वारा वाष्पीकरण, इथिलीन उत्पादन तथा सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को कम किया जाता है। इस विधि का प्रयोग अंगूर, पत्तेदार सब्जियों जड़ वाली सब्जियों के सरंक्षण में किया जाता है।

2 **सापेक्ष आर्द्रता पर नियंत्रण** :– सापेक्ष आर्द्रता पानी की कमी, क्षय विकास, भौतिक विकार तथा फल पकने की एकरुपता को प्रभावित करके शेल्फ लाइफ को बढ़ाने मे सहायता करती है।

3 **पराबैगनी प्रकाश** :– आमतौर पर पराबैगनी प्रकाश एक मुख्य रोगाणु रोधी एजेंट के रुप में प्रयोग किया जाता है। यूवी–सी प्रकाश बैक्टीरिया के डी एन ए को क्षति पहुँचा कर फलों तथा सब्जियों में रोग प्रतिरोधन उत्पन्न करता है।

4 **सपंदित प्रकाश** :–यह पराबैगनी प्रकाश के लिए एक अच्छी वैकल्पिक विधि है। यह विधि सूक्ष्मजीवों से ठोस व तरल खाद्य पदार्थों में होने वाली हानि को तीव्रता तथा अधिक प्रभावशाली तरीके से रोकने में सहायक है।

5 **भीत भंडारण** :–तीव्र गति की दबावयुक्त शीतल हवा भंडारण की एक उपयुक्त विधि है। इस विधि में सापेक्ष आर्द्रता 95 प्रतिशत से अधिक रखी जाती है।

6 **मोम की परत चढ़ाना (वैक्सिंग)** :– इस विधि में फलों तथा सब्जियों के ऊपर एक अतिरिक्त असंतत मोम की परत चढ़ा दी जाती है जो क्षय जीवों के प्रवेश के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करती है।

रासायनिक तरीके

1 **क्लोरिन डाइऑक्साइड**:– फलों तथा सब्जियों को क्लोरिन डाईआक्साइड से उपचारित करके इथिलीन का उत्पादन घटा कर, शेल्फ लाइफ को बढ़ाया जा सकता है। इस रसायन के द्वारा रोगणुजनक सूक्ष्मजीवों तथा हानिकारक बैक्टिरिया को भी कम किया जा सकता है।

2 **ब्रोमिन और क्लोरीन**:–इन रासायनों का प्रयोग सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को कम करने में किया जाता है। क्लोरिन से मिलकर ब्रोमिन एफ बागवानी उत्पादों पर सहक्रियाशील रोगाणुरोधी की तरह काम करता है।

3 **पेरोक्सी एसिटिक एसिड**:–यह एक शक्तिशाली ऑक्सीडेंट है, जो फल व सब्जियों को धोने के लिए प्रयोग किया जाता है। अन्य रासायनों की तुलना में इसका कम सांद्रता वाला घोल सूक्ष्मजीवों को निष्क्रिय करने में अधिक प्रभावी है।

4 **कैल्शियम रसायन आधारित**:– इस प्रकार के रसायन जल्दी खराब होने वाले फल व सब्जियों के लिए व्यापक रुप से इस्तेमाल किए जाते हैं। कैल्शियम लैक्टेट एक ऐसा ही जीवाणुरोधि यौगिक है जो कि ताजा कटी हुई सलाद में भी क्लोरिन की तरह ही माइक्रोबियल भार को कम करता है।

संशोधित वातावरण पैकेजिंग:– संशोधित वातावरण पैकेजिंग कार्बन डाई ऑक्साईड/नाईट्रोजन/ऑक्सीजन की मात्रा को नियंत्रत करके आंतरिक वातावरण को संरक्षण के लिए अनुकूल बनाती है। यह प्रक्रिया श्वसन, इथीलिन उत्पादन, उपापचय में कमी, एंजाइमेटिक प्रक्रिया को धीमा कर के बागवानी उत्पादों की शेल्फ लाईफ में वृद्धि करने में सहायता करती है।

हालांकि वैज्ञानिक, कृषक समुदाय और उपभोक्ता संरक्षण के लिए रसायनों के उपयोग के पक्ष में बिल्कुल नहीं है। रसायनों का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव देखते हुए कुछ रसायनों के प्रयोग पर प्रतिबंध भी लगाया गया है जैसे–मिथाइल ब्रोमाईड, मौलिक हाइड्राजाईड इत्यादि। कोल्ड स्टोरेज एक अच्छी युक्ति है, किन्तु कोल्ड स्टोरेज की भारी ऊर्जा की मांग भारत जैसे विकासशील देश की वास्तविक स्थिति के अनुरुप नहीं हैं तथा गरीब किसानों के लिए भी आर्थिक रुप से व्यवहारिक विकल्प नहीं है। अन्य अभी संरक्षण के तरीकों की समीक्षा के पश्चात् विकिरण ही एक ऐसा समाधान है जो आज के समय के संदर्भ में खाद्य संरक्षण तथा शेल्फ लाईफ बढ़ाने में काफी विश्वसनीयता हासिल कर रहा है।

वर्तमान परिदृश्य में जहां पर विकासशील देशों के बच्चे कुपोषण से ग्रसित है, खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाना सर्वोच्च महत्व का विषय है। अतः विश्व के अधिकांश देशों के लिए, विकिरण तथा आइसोटोप्स का प्रयोग मानव जाति के कल्याण के लिए एक आदर्श मार्ग के रुप में उभर कर आया है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विश्व स्वास्थ्य संगठन खाद्य और कृषि संगठन तथा अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने **'खाद्य विकिरण'** की तकनीकी को सुरक्षित तथा प्रभावशाली माना है। विकिरण ऊर्जा का प्रयोग कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में अपार क्षमता प्रस्तुत करता है। विकिरण ऊर्जा में उच्च ऊर्जा वाली गामा किरण, एक्स रे और त्वरित इलेक्ट्रोन शामिल है। आयनीकरण विकिरण का इस्तेमाल

आमतौर पर कृषि उत्पादों को जीवाणु रहित बनाने के लिए किया जाता है ताकि आयात–निर्यात के समय उनकी बर्बादी को कम कर के शेल्फ लाईफ को बढ़ाया जा सके।

गामा किरणें इलेक्ट्रोमैग्नेटिक विकिरणों का सबसे ऊर्जावान रुप है तथा अल्फा व बीटा किरणों की अपेक्षा अधिक भेदन क्षमता वाली है। गामा किरणों का जैविक प्रभाव कोशिका में परमाणुओं तथा अणुओं की पारस्परिक क्रिया (विशेष रुप से जल अणुओं के साथ) द्वारा उत्पन्न होने वाले मुक्त कणों पर निर्भर करता है। इन प्रभावों में पादप कोशिकीय संरचना, उपापचय क्रियाओं में परिवर्तन, जैसे–थायलाकॉयड झिल्ली का फैलाव, प्रकाश संश्लेषण में परिवर्तन, फिनोलिक यौगिकों का संचय तथा ऑक्सीडेटिव प्रणाली का नियमन शामिल है।

उच्च तीव्रता वाली गामा किरणें उपचयिक शर्करा तथा स्टार्च की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त ये किरणें कार्बनिक रंगद्रव्य जैसे कैरोटिनाईड्स, क्लोरोप्लास्ट जो कि प्रकाश संश्लेषण के लिए उपयोग में आने वाले प्रकाश को अवशोषित करते हैं और अधिक प्रकाश द्वारा होने वाली हानि से क्लोरोफिल की सुरक्षा करते हैं, को भी प्रभावित करते हैं। पौधे की शारीरिक संरचना, जैव रसायन तथा उपापचय क्रियाओं में होने वाले परिवर्तन गामा किरणों की खुराक पर निर्भर करते हैं। कम खुराक अनाज और फलों में कीड़े का नियंत्रण, देरी से पकने तथा कंद में अंकुरण को बाधित करती है। जबकि उच्च खुराक मसालों में सूक्ष्मजीवों और कीड़ों को मार कर उन्हें जीवाणु रहित करने के लिए प्रयोग की जा सकती है। गामा किरणें पादप बीजों की अंकुरण क्षमता तथा उपज में सुधार के लिए भी उपयोगी है। 0.5 से 5 म. रेडियन खुराक, गेहूँ की भूसी से प्रोटीन तथा फास्फोरस के बेहतर उपयोग की क्षमता को बढ़ाती है। गेहूँ में विकिरण की कम मात्रा अंकुरण को बढ़ाती है। पौधे की ऊंचाई को कम करने, पादप शक्ति में सुधार लाने तथा फ्लैग लीफ का क्षेत्रफल बढ़ाने में भी गामा किरणों का प्रयोग देखा गया है। गामा किरणें जड़ की प्रवृति को प्रभावित करके खनिज पोषक तत्वों की अधिग्रहण क्षमता को बदल सकती है। भिंडी के विकास व वृद्धि के लिए 0.15 के.जी.वाई. की गामा विकिरणों का प्रयोग सकारात्मक पाया गया है। गामा विकिरणों द्वारा सेम के पौधे के पोषक तत्वों की गुणवत्ता में भी सुधार देखा गया।

फल तथा सब्जियों के लिए रसायनों के उपयोग को कम करने की दृढ़ इच्छा, गैर–अवशिष्ट सुविधा तथा भौतिक युक्तियों से जुड़ी आर्थिक समस्याओं के कारण विकिरण एक अच्छा विकल्प है। विकिरण ऊर्जा का फसल उत्पादन व संरक्षण में प्रयोग बढ़ाकर हम देश में भूखे सोने वाले लोगों को भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करा कर मानवता को एक सार्थक दिशा दे सकते हैं।

न्यूट्रीजीनोमिक्स

भारती अनेजा, गिरीश चन्द्र पाण्डेय एवं रतन तिवारी

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

न्यूट्रीजीनोमिक्स शब्द 1999 ईं में डॉ. नैन्सी फॉग जॉनसन एवं उनके सहयोगी एलेक्स मेरोली ने प्रतिपादित किया था। न्यूट्रीजीनोमिक्स मुख्यतः जीनोमिक्स, ट्रोसक्रिप्टोमिक्स, प्रोटीयोमिक्स, मेटाबोलोमिक्स एवं उच्च थ्रुपुट जीनोमिक्स उपकरणों का प्रयोग करके मानव पोषण के लिए पोषण एवं स्वास्थ्य के संबंध को आणविक एवं आनुवंशिक स्तर पर समझने का प्रयास है। पोषण, उपापचय मार्ग एवं समस्थिति (होमियोस्टेसिस) नियंत्रण को प्रभावित करता है तथा आहार संबंधित रोगों के प्रारंभिक अवस्था को भी बाधित करता है। यह जीन एवं आहार के तालमेल को समझने के लिए द्वि दिशात्मक शाखा है। इसमें आहार जनित सामान्य रोगों के रोकथाम के लिए आहार प्रेरित क्षमता का प्रयोग करके निदान किया जा सकता है। न्यूट्रीजीनोमिक्स एक उभरता हुआ नवीन बहु विषयी अनुसंधान क्षेत्र है जो कि आहार–जीन के आपसी प्रभावों को पहचानने में मदद करता है तथा आहार प्रेरित विकास के लिए एक अवसर प्रदान करता है (काकोटी एट.आल., 2015)।

न्यूट्रीजीनोमिक्स का मुख्य विषय वस्तु आहार प्रेरित जीन प्रभाव को समझना तथा उपापचयी अनियंत्रण है जो कि आहार जनित रोग उत्पन्न करता है। यह आहार के पोषकता को आणविक स्तर पर तथा जीन में फेरबदल के फलस्वरुप उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने में मदद करता है। आहार केंद्रित जीन के खोज के लिए यह सोने की खान के समान है।

व्यक्ति विशेष के आनुवंशिक संरचना आधारित व्यक्तिगत पोषकता का विकास आवश्यक है। न्यूट्रीजीनोमिक्स का अंततः एवं दीर्घकालिक उद्देश्य पोषकता के प्रयोग द्वारा आहार जनित रोगों की रोकथाम या भविष्य में रोगों की संवदेनशीलता को व्यक्तिगत आहार द्वारा सुधारना है। चिकित्सा विज्ञान के जनक हिप्पोक्रेटीज के मतानुसार दवाईयों को दवा विक्रेता के पास ही रहने दे यदि आप किसी रोगी को आहार से ही ठीक कर देते हैं। वे निदान की अपेक्षा रोकथाम के मत के समर्थक थे।

न्यूट्रीजीनोमिक्स के परिप्रेक्ष्य में, पोषक एक आहार संकेत है जो कि कोशिकीय संकेत तंत्र द्वारा जीन एवं प्रोटीन प्रभाव तथा उपापचयी उत्पादनों को ज्ञात करने में मदद करते हैं। विशेष पोषक या पोषकता के प्रति जीन, प्रोटीन के प्रभावों तथा उपापचयी उत्पादन के द्योतक हैं। आहार संबंधित घातक रोग यथा; मोटापा, प्रकार II मधुमेह, हृदय संबंधी रोग इत्यादि का रोकथाम विशेष कोशिकाओं, उत्तक एवं जीवों के पोषकता से प्रभावित उपापचयी मार्ग एवं समस्थिति के द्वारा किया जा सकता है।

न्यूट्रीजीनोमिक्स एवं न्यूट्रीजेनेटिक्स में अंतर यह है कि न्यूट्रीजीनोमिक्स एवं जीनोमिक्स के प्रयोग खाद्य एवं खाद्य तत्व द्वारा जीन प्रभाव को समझने में मदद देता है जबकि न्यूट्रीजेनेटिक्स, जीनोटाईप के आहार से संबंधित होने वाले रोग जैसे–कैंसर, मधुमेह एवं हृदय संबंधित रोगों से संबधित शाखा है। न्यूट्रीजीनोमिक्स एवं न्यूट्रीजेनेटिक्स जैसी दो अलग शाखाओं का प्रादुर्भाव आहार एवं जीन के आपसी संबंधों को समझने तथा व्यक्तिगत आहार द्वारा स्वास्थय को अर्जित करना है।

न्यूट्रीजेनेटिक्स में विकास मुख्यतः मानव जीनोम परियोजना एवं नई बायोमिक्स तकनीक–ट्रांसक्रिप्टोमिक्स, प्रोटीयोमिक्स एवं उपापचयमिक्स आदि जैवसूचना तकनीक के साथ मिलकर कार्यात्मक जीनोमिक्स की शाखा स्थापित करते हैं जो कि सिस्टम जीव विज्ञान भी कहलाता है। अन्य पारंपरिक पोषक अध्ययन जैवसूचक का प्रयोग तथा वसा प्रोफाईल (यथा–कोलेस्ट्रोल, ट्राईग्लिसराईड) है। उच्च रक्त चाप, न्यून इन्सूलिन संवेदना हृदय एवं उपापचय संबंधित रोगों के सूचक हैं। ये जैवसूचक मुख्यतः एकल प्रोटीन या उपापचय या कुछ अन्य शारीरिक कार्य है जो कि रोग कार्यिकी में होने वाले परिवर्तनों के सूचक हैं जो कि कई घातक रोग उत्पन्न करते हैं (अफमान एवं मुलर, 2006)।

न्यूट्रीजेनेटिक्स में दो विभिन्न रणनीति प्रयोग किए जाते हैं; प्रथम रणनीति के अनुसार, जीनोमिक उपकरण एवं नियंत्रण मार्ग का प्रयोग करके मुख्य जीन एवं प्रोटीन का पोषण पर होने वाले प्रभाव को ज्ञात किया जा सकता है। इसके लिए ट्रांसजेनिक चूहा मॉडल महत्वपूर्ण विधि सिद्ध हो सकता है। द्वितीय रणनीति, सिस्टम जीव विज्ञान तरीका हो सकता है जिसमें जीन, प्रोटीन और उपापचयी हस्ताक्षरों का प्रयोग करके प्रमुख पोषक या पोषण क्षेत्र का वर्गीकरण करना एवं पूर्व सूचना देने वाले आणविक जैवसूचक की भूमिका निभाना है।

बर्ग एट.आल. (2000ई) ने आंत में माइक्रोअरे तकनीक एवं जैव सूचना औजारों का प्रयोग करके कोशिकीय वसा परिवहन प्रोटीन को कोड करने वाले नई जीन एबीसीजी 5 एवं एबीसीजी 8 का पता लगाया। ये आंत में स्टेरोल के ब्युत्क्रम आवागमन को नियंत्रित करते हैं। जीन में उत्परिवर्तन से कोलेस्ट्रोल का चयनित एवं नियंत्रित आवागमन बाधित होने से, विभिन्न स्टेरोल का उच्च चूषण होता है जिससे सिटोस्टेरोलेमिया रोग उत्पन्न हो जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में, भविष्य उपापचयी आंकड़ों के संग्रह, प्रबंध एवं उनके उचित व्याख्या पर निर्भर करता है। अकेली कोई भी प्रयोगशाला व्यक्तिगत पोषण के विचार को प्राप्त करने में असक्षम हैं। ये तो वैज्ञानिक समुदाय के संयुक्त प्रयासों पर निर्भर करता है जो अनुसंधानकर्त्ताओं एवं क्लीनिकल व्यक्तियों को एक डाटाबेस उपलब्ध कराएगा। 21वीं शताब्दी में पोषण एक बहुत ही क्रियाशील तथा अत्यधिक उपयोगी अनुसंधान का क्षेत्र होगा जिसमें आये दिन जीवन शैली एवं जीनोटाईप का स्वास्थ्य एवं रोगों पर योगदान के अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास किया जाएगा। यह हमारे मुख्य लक्ष्य व्यक्तिगत पोषण के एक कदम और नजदीक ले जाएगा (मुच एट आल, 2005)।

मानव द्वारा डीएनए की प्रकृति को समझने के पश्चात् न्यूट्रीजीनोमिक्स अपना मार्ग विकास के द्वारा तय करेगा न कि क्रांति से। न्यूट्रीजीनोमिक्स के सामने मुख्य समस्या संपूर्ण जीनों को पहचानना एवं लक्ष्य करना है जो मनुष्य में बहुजीनी रोगों यथा–कैंसर, हृदय संबंधी रोग, मोटापा इत्यादि को उत्पन्न करते हैं। जैवक्रियाशील, रोगों को क्रियाहीन करना एक महत्त्वपूर्ण निदान हो सकता है। विस्तृत आंकड़ों का संग्रह, प्रबंधन एवं व्याख्या एक दुष्कर कार्य है। स्वस्थ व्यक्तियों में उत्तक सैंपल की अनुपलब्धता एक अन्य समस्या है। अंतर–व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण स्वस्थ एवं पूर्व रोगी में विशेष जीन प्रभाव हस्ताक्षर एक कठिन कार्य है। वृहत् आर्थिक एवं बौद्धिक विनिवेश की भी आवश्यकता है।

न्यूट्रीजीनोमिक्स से संबंधित नैतिक पहलू यह है कि लोगों को इसके प्रति शिक्षित किया जाए। हमारा भोजन के प्रति सामान्य समझ यह नहीं होना चाहिए कि वह जीन पर सीधा प्रभाव डाल रहा है जबकि वह कैसे और क्यों कार्य कर रहा है। व्यावसायिक पोषकों की भूमिका को सावधानिपूर्वक आनुवंशिक जांच एवं सूचना को पहुँचाने के परिपेक्ष्य में समझना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को उसके इच्छानुसार व्यक्तिगत पोषण उसके आहार चुनाव के स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। पोषण–जीन के अंतर्संबंध का विश्लेषण कोशिका संवर्द्धन एवं पशु मॉडल पर होना चाहिए, तत्पश्चात् इसे मानव विषयों पर चिकित्सीय परिक्षण किया जाना चाहिए।

मानवीय विषयों की जांच एक संवेदी विषय है तथा कुछ अनुसंधानकर्ता मनुष्यों को प्रयोगशाला पशु के रुप में प्रयोग करते हैं तथा सामाजिक–आर्थिक रुप से गरीबों को शोषण भी करते हैं। बोयोप्सी परीक्षण के लिए यकृत, गुर्दा एवं ग्रीवा से डी.एन.ए. का संग्रह बहुत उपयोगी है।

अतः हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि न्यूट्रीजीनोमिक्स एक तेजी से उभरता हुआ विज्ञान है परंतु यह अभी नवजात है। इसके सफल विकास के लिए वैश्विक ज्ञान का आदान–प्रदान तथा विभिन्न क्षेत्रों से विशेषज्ञों की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में माइक्रोअरे तकनीक द्वारा उत्पन्न सूचना को संग्रह करने के लिए एक डेटाबेस अत्यन्त आवश्यक है। न्यूट्रीजीनोमिक्स का ज्ञान भोजन को केवल जीवन यापन का माध्यम न मानकर, भैषजशास्त्र के लिए रोगों के निदान तथा बुढ़ापा पर काबु पाने के लिए एक क्रांतिकारी मार्ग मानना श्रेयस्कर होगा।

आधुनिक कृषि क्षेत्र में नैनोटेक्नोलोजी का भविष्य

आशुतोष श्रीवास्तव, रिंकी एवं काशीनाथ तिवारी

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

नैनो टेक्नोलोजी कृषि क्षेत्र में अंतःविषय अनुसंधान के लिए एक उभरता हुआ क्षेत्र है। यह दवा, फार्मास्यूटिकल्स, इलेक्ट्रानिक्स और कृषि जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अवसरों की एक विस्तृत सारणी प्रस्तुत करता है। आजकल कृषि तथा खाद्य उदयोगों में भी नैनो टेक्नोलोजी लोगों का ध्यान आकर्षित कर रही है। कृषि तथा खाद्य नैनो टेक्नोलोजी में निवेश बढ़ता जा रहा है, क्योंकि खाद्य पदार्थों को बेहतर गुणवत्ता, कृषि आदानों में कमी, बेहतर प्रसंस्करण तथा पोषण इत्यादि संभावित लाभ नैनो टेक्नोलोजी से प्राप्त किए जा सकते हैं। दूसरी ओर, नैनोबायो टेक्नोलोजी संभावित पैदावार, उत्पादन व पोषण में वृद्धि के साथ–साथ विभिन्न प्रकार की फसलों की जीवन प्रक्रियाओं को समझने में सहायक है।

नैनोटेक्नोलोजी द्वारा पर्यावरण परिवर्तनों की समीक्षा करने वाले संयंत्रों तथा प्रणाली को विकसित किया जा सकता है तथा पौधे की पोषक तत्वों की ग्रहण करने की क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है।

नैनोटेक्नोलोजी वायरस तथा रोग संक्रमित कणों के स्तर पर काम करती है। संक्रमण का पता लगाने तथा उसके उन्मूलन में भी नैनोटेक्नोलोजी की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह तकनीक स्मार्ट सेंसर तथा वितरण प्रणाली के कृषि में उपयोग को सरल बना कर वायरस तथा फसल रोगजनकों का सामना करने में मद्द करती है। किसी भी रोग के लक्षण उत्पन्न होने से पहले ही इसका एकीकृत संवेदन, निगरानी तथा नियंत्रण प्रणाली रोग की उपस्थिति का पता लगाकर और किसान को सूचित करके, बायोएक्टिव दवाओं, कीटनाशकों, पोषक तत्वों, प्रोबायोटिक्स, न्यूट्रास्यूटिकल्स और इनप्लांटऐबल सेल बायोटिएक्टर को सक्रिय कर देता है। निकट भविष्य में नैनोटेक्नोलोजी द्वारा किटनाशकों तथा शाकनाशियों की दक्षता में वृद्धि करने वाले संरक्षित उत्प्रेरक भी बनाए जा सकेंगें।

कृषि क्षेत्र में, नैनोटेक अनुसंधान तथा विकास द्वारा आनुवंशिक रुप से संशोधित फसलों, पशु उत्पादन निवेश/आदानों, रसायनिक कीटनाशकों तथा सटीक खेती की तकनीकों को अगले स्तर पर पहुँचाने, गढ़ने तथा विस्तार करने की अपार संभावनाएँ हैं। कृषि तकनीकों में नैनोटेक्नोलोजी के कारण हुए परिवर्तन आधुनिक कृषि को नया स्वरुप देने वाले मुख्य कारक है। प्रौद्योगिक नवाचारों की नवीनतम श्रृंखला में, नैनोटेक्नोलोजी का कृषि व खाद्य उत्पादन को परिवर्तित करने मे प्रमुख स्थान है। नैनो उपकरणों तथा नैनो सामग्री का विकास पादप जैव प्रौद्योगिकी तथा कृषि के क्षेत्र में नए आयामों को हासिल करने में सहायक सिद्ध होगा।

कृषि क्षेत्र में नैनोटेक्नोलोजी का अवलोकन

निकट भविष्य में, नैनो संरचित उत्प्रेरक कीटनाशकों तथा शाकनाशकों का कम मात्रा में इस्तेमाल करने के बाद भी उसकी दक्षता को बढ़ा देंगें। यू.एस.ए, यूरोप तथा जापान में ''पर्यावरण नियंत्रित कृषि'' नामक एक कृषि प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है, जिसमें कुशलतापूर्वक फसल प्रबंधन के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है। पर्यावरण नियंत्रित कृषि (कंट्रोल इनवारमेंट एग्रीकल्चर) हाईड्रोपोनिक्स आधारित एक उन्नत कृषि प्रणाली है। इससे पौधों को एक नियंत्रित वातावरण में उगाया जाता है ताकि कृषि पद्धतियों को अनुकूलित किया जा सके। कम्प्यूटरीकृत प्रणाली द्वारा फसल वातावरण तथा सिंचित पानी के लिए क्षेत्रों का निरीक्षण एवं नियंत्रण किया जाता है। पर्यावरण नियंत्रित कृषि (कंट्रोल इनवारमेंट एग्रीकल्चर) प्रौद्योगिकी कृषि के लिए नैनो टेक्नोलॉजी की शुरुआत के लिए एक उत्कृष्ट मंच प्रदान करता है। पर्यावरण नियंत्रित कृषि (कंट्रोल इनवारमेंट एग्रीकल्चर) के लिए इस्तेमाल होने वाले नैनोटेक्नोलॉजी उपकरण स्काउटिंग क्षमता प्रदान करते हैं जो कि उत्पादकों को फसल काटने का सही समय, फसल की जीवन शक्ति, तथा खाद्य सुरक्षा से संबंधित मुददों जैसे सूक्ष्म जीवाणु या रसायनिक संदूषक के बारे में सही जानकारी देकर उत्पादन क्षमता का सुधारने में सहायता प्रदान करते हैं।

नैनो बायोसेंसर

सेंसर परिष्कृत उपकरण है जो भौतिक, रसायनिक और जैविक परिवर्तनों के अनुसार प्रतिक्रिया करके उसे संकेत के रुप में बदल देते हैं। मनुष्य द्वारा इस प्रकार के संकेतों का प्रयोग सुक्ष्मजीवों, कीटों तथा पोषक तत्वों की मात्रा, पौधे पर सुखा, तापमान, कीट, रोगजनक दबाव या पोषक तत्वों की कमी का पता लगाने के लिए किया जाता है। नैनो सेंसर स्थानिक तथा सामाजिक स्तर पर पौधों में पानी तथा पोषक तत्वों की सही स्थिति का ज्ञान कराकर किसानों की आदानों का अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग करने में मदद करते हैं। यह किसान को आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्वों, पानी, कीटनाशक, शाकनाशक, कवकनाशी का प्रयोग करने की जानकारी देते हैं। नैनो टेक्नोलोजी सक्षम उपकरणों की प्रमुख भूमिकाओं में से एक महत्वपूर्ण भूमिका है कि नैनोटेक्नोलोजी ने स्वायतंत्र सेंसर के प्रयोग को बढ़ा दिया है जो कि ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम प्रणाली तथा मिट्टी की स्थिति पर नजर रखी जा सके। नैनोकणों को इस तरह से संशोधित किया जा सकता है जिससे की वे विद्युत तथा रासायनिक संकेतों द्वारा दूषित पदार्थों की उपस्थिति का सही ज्ञान करा सकें। अंत में हम कह सकते हैं कि सटीक खेती के लिए, स्मार्ट सेंसर सही जानकारी प्रदान करके कृषि उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं तथा कृषक को सही समय पर सही निर्यण लेने में मदद भी कर सकते हैं।

जैविक खेती में नैनोटेक्नोलोजी

जैविक खेती का लक्ष्य कम संसाधनों (कीटनाशकों, शाकनाशी) का प्रयोग करके, पर्यावरण संबंधित परिवर्तनों का निरक्षण करते हुए अधिक उत्पादन लेना है। जैविक खेती में स्थानीय पर्यावरण की स्थिति जानने के लिए कम्प्यूटर, पीपीएस प्रणाली तथा रिमोट सेंसिंग उपकरणों का प्रयोग हो रहा है, जो कि फसलों की अधिकतम क्षमता, कृषि से जुड़ी समस्याओं तथा उनके विभिन्न प्रकारों का सही विवरण देती है। केन्द्रीकृत डाटा का प्रयोग करके मृदा की स्थिति, पौधे की वृद्धि, उर्वरक, रसायन तथा पानी के उपयोग की क्षमता को पहचान कर कम लागत से भी किसान की उत्पादकता को बढ़ा कर उसे लभान्वित किया जा सकता है। इस प्रकार की सटीक खेती के द्वारा कृषि अपशिष्ट पदार्थों को कम करके पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में भी सहायता मिलेगी। अतः इन सभी स्मार्ट सेंसर का प्रयोग करके की गई सटीक कृषि किसानों को बेहतर निर्णय लेने में मदद करेगी जो भविष्य में उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

नैना शाकनाशी

खरपतवार को समाप्त करने का सबसे आसान तरीका है मिट्टी में उपस्थित खरपतवार के बीज बैंक को नष्ट करना तथा अनुकूल वातावरण में भी उनका अंकुरण अवरुद्ध करना। आकार में बहुत छोटा होने के कारण नैनो शाकनाशी मिट्टी के साथ अच्छी प्रकार मिश्रित होकर, विषाक्त अपशिष्ट छोड़े बिना ही खरपतवार को परिस्थितिकी के अनुकूल पूर्ण रुप से नष्ट करने में सहायक है, तथा ऐसी खरपतवार जो पारंपरिक शाकनाशी के लिए प्रतिरोधी हो गई है, की वृद्धि और विकास को भी अवरुद्ध करते हैं। खरपतवार गहरी जड़ों और कंद के रुप में भूमिगत संरचनाओं के माध्यम से फैलते हैं। खरपतवार को हाथों द्वारा खेत से हटाते समय की गई संक्रमित खेत की जुताई इन अवांछित पौधों को असंक्रमित क्षेत्रों में फैला सकती है। अगर सक्रीय संघटकों को स्मार्ट वितरण प्रणाली के साथ जोड़कर प्रयोग किया जाए तो शाकनाशकों के अत्याधिक प्रयोग को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

खरपतवार से दूषित मृदा में उत्पादन भी कम होता है। इसलिए नैनो टेक्नोलोजी के प्रयोग द्वारा शाकनाशियों की कुशलता को बढ़ाया जा सकता है, जो कि उत्पादकता की वृद्धि के साथ ही कृषि श्रमिकों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को भी कम करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

फसल जैव प्रौद्योगिकी के लिए नैनोटेक्नोलोजी

नैनो कैप्सूल के सक्रीय घटकों का धीमा तथा नियमित रिसाव पौधे की उपत्वचा (क्यूटिकल) तथा उत्तकों द्वारा शाकनाशी को सफलतापूर्वक पौधे के अंदर पहुंचाने में सहायक हैं। ये नैनोकैप्सूल एक जादू की गोली की तरह काम करते हैं। टॉर्नी एट.ऐल. (2007) ने 3 एमएम के

सिलिका नैनो कणों के प्रयोग द्वारा पृथक पादप कोशिकाओं मे डी.एन.ए. को स्थानांतरित किया था। सिलिका नैनो कणों को रसायनिक रुप से लेपित कर के उन्हें जीव का परिदान करने के लिए वाहक के रुप में इस्तेमाल किया गया ताकि कोशिका भित्ति द्वारा ये कण आसानी से पौधे में प्रवेश कर सकें जिससे जीन को बिना किसी विषाक्त दुष्प्रभावों के, नियंत्रित तरीक से स्थानांतरित किया जा सके। सबसे पहले इस प्रौदयोगिकी का प्रयोग तम्बाकू तथा मक्के के पौधे में डी.एन.ए. को स्थापित करने के लिए किया गया था।

नैनो कण और पादप रोग नियंत्रण

नैनो के कुछ कणों ने पादप रोग नियंत्रण क्षेत्र में भी प्रवेश कर लिया है जैसेः– कार्बन, चांदी, सिलिका, एल्यूमिनो सिलिकेट। नैनो कणों के इस प्रयोग ने नैनो वैज्ञानिक समुदाय को चकित कर दिया है क्योंकि नैनो स्तर पर ये कण बहुत ही अलग प्रवृति दिखाते हैं। रोगाणुरोधी एजेंट के रुप में नैनो आकार के चांदी के कणों का उपयोग बहुत आम हो गया है तथा इनका उत्पादन भी किफायती है। चांदी सुक्ष्मजीवों पर बहुत ही निरोधात्मक गुण दर्शाती है, अतः अन्य व्यवसायिक कवकनाशकों की अपेक्षा इसका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त भी चांदी सूक्ष्मजीवों की विभिन्न जैव रसायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है।

जी एम फसलें

निशा वालिया[1], मनोज[1], गिरीश चन्द्र पाण्डेय[2] एवं रतन तिवारी[2]

1 जैवप्रौद्योगिकी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

बीटी कपास, बीटी बैगन, गोल्डेन राइस आदि प्रायः जी एम फसल के पर्याय के रुप में जाने जाते हैं। कुछ फसलों को आनुवंशिक रुप से परिवर्तित कर उनकी उत्पादकता, रोगाणु विशेष के प्रति प्रतिरोधकता एवं अन्य अजैविक दबावों (जैसे तापमान, जल भराव आदि) के प्रति सहिष्णुता में वृद्धि की गई है। इस कार्य को करने के प्रति यह उद्देश्य था कि फसल किसी भी पर्यावरणीय कारकों या कीट के प्रकोप में अपने आप को जीवित रख सकें।

खेत में जीएम फसलों को किसी भी प्रकार के रसायनिक पदार्थो यथा–कीटनाशी, खरपतवारनाशी, उर्वरक आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये फसलें बुआई से कटाई तक की अवधि तक जी एम फसलें पूर्णतः प्राकृतिक हैं तथा ये मांसाहारी भी नहीं होते है जैसा सामान्य व्यक्ति सोचता है। यह केवल अन्य जातियों से छोटे डीएनए के टुकड़े द्वारा डीएनए परिवर्तन या विस्थापन की प्रक्रिया है। आज तक ऐसा कोई भी रोग या संक्रमण का तथ्य जीएम फसल के उपभोग के फलस्वरुप सामने नहीं आया है। यह फसल राष्ट्र की बढ़ती जनसंख्या के लिए अत्यधिक उत्पादन पर बल देती है। कुछ फसल जो कि विभिन्न अच्छा परिणाम प्रदर्शित कर रहे है।

- **बीटी (कपास)**:– कीट प्रतिरोधी, खरपतवार रोधी, उच्च उत्पादक एवं विशेषकर बॉलवर्म प्रकोप के प्रति प्रतिरोधी होता है।
- **फ्लेवर सेवर टमाटर**:–पकने में विलंब एवं उच्च पोषक गुणवत्ता।
- **स्वर्णिम चावल** (गोल्डेन राइस):– ये विटामिन ए से संपन्न चावल होते हैं।
- **आलू**:– उच्च प्रोटीन अवयव।
- **मक्का एवं बैगन**:– कीट प्रतिरोधी।
- **सोयाबीन एवं मक्का**:– खरपतवार रोधी।

दैनिक जीवन में उपयोग आने वाले अन्य उत्पाद जो कि कुछ सूक्ष्मजीवों के प्रयोग से उत्पादित होते हैं वे निम्न हैं;

- जीवाणु (बैक्टीरिया) से दही बनाना।
- पोलियो टीकाकरण जो कि 5 वर्षों तक बच्चों को दिए जाते है।
- सूअर से इन्सुलिन का उत्पादन, परंतु विगत वर्षों में इन्सुलिन उत्पादन के लिए इ. कोलाई का प्रयोग किया जा रहा है।
- यीस्ट किण्वीकरण के द्वारा बीयर एवं शराब का उत्पादन।
- संक्रामण जीवाणु एवं हानिकारक सूक्ष्मजीवों के प्रति प्रतिरोधकता के लिए प्रतिजैविक का उत्पादन।

जीनोमिक्स का कृषि में योगदान

- उच्च पोषकता, जैवकीटनाशी एवं खाने योग्य टीका को खाद्य पदार्थों में सम्मिलित किया गया है।
- तंबाकू जैसे पौधों से नवीन पर्यावरणीय सफाई की सामग्री प्राप्त होना।
- रोग, कीट एवं सुखा प्रतिरोधी फसल का विकास।
- स्वस्थ, अधिक उत्पादक एवं रोग प्रतिरोधी कृषि में प्रयोग आने वाले पशुओं का विकास।
- खाद्यान एवं चारा फसलों में उच्च पैदावार।
- पर्यावरणीय मित्र फसलों को लंबी अवधि के लिए संरक्षित रखना।
- खाद्य श्रृंखला में गैर जैव अपघटक एवं जैव हानिकारक रसायनों का समावेश पर प्रतिबंध या रोक।

जी एम फसलें कृषकों के लिए आय के अच्छे स्रोत हैं क्योंकि इनके उत्पादन में उर्वरक, कीटनाशी, खरपतवारनाशी इत्यादि का न्यूनतम प्रयोग होता है तथा इनमें जैविक एवं अजैविक दबावों को सहन कर उच्च उत्पादकता बनाए रखने की क्षमता होती है। जीएम फसलों को बढ़ावा के लिए विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर विषयों के पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। किसान मेला, जागरुकता अभियान प्रदर्शनी एवं संचार माध्यमों के इस विषय पर कार्यक्रमों की प्रस्तुति द्वारा किसानों और उपभोक्ताओं को जागरुक बनाया कृषकों समुदाय के लिए इंटरनेट पर जीएम फसलों के बारे में उनके क्षेत्रिय भाषाओं में जानकारी उपलब्ध कराना चाहिए।

जौ के विभिन्न स्वास्थ्य लाभ उपयोगिता एवं उपलब्धता

कीर्तिमणि त्रिपाठी*, थीरू सेलवन एवं सुखदेव सिंह*****

* वि. वस्तु विशेषज्ञ/सहा. प्रा. गृह विज्ञान, स.व.प. कृषि एवं प्रौ. वि., मेरठ

** सहा. प्राध्यापक वानिकी (जैव विविधता), त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतल्ला, त्रिपुरा

*** सह निदेशक/सह. प्रा. कृषि वानिकी, स.व.प. कृषि एवं प्रौ. वि., मेरठ

जौ एक आश्चर्यपूर्ण एवं अद्भुत खाद्यान्न है। पुरातन काल से ही जौ मनुष्यों एवं पशुओं के भोजन हेतु उपयुक्त होता रहा हैं। हम सभी जानते हैं कि जौ को बहुत पहले से मादक पेय बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता रहा है। ग्रीक सभ्यता से यह ब्रेड बनाने का प्रमुख माध्यम है। धावकों के लिए यह स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। पुराने समय में जब गेहूँ महंगा हुआ करता था तब जौ को ही मुख्य खाद्यान्न के रूप में उपयोग किया जाता था।

यदि गुणवत्ता की बात की जाय तो जौ में कुछ ऐसे आवश्यक पोषक तत्व पाये जाते हैं जो अन्य किसी खाद्य पदार्थ में नहीं मिलते तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद की दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि जौ को गर्म अन्न की संज्ञा दी गई है तथा शरद ऋतु में सेवन करने की सलाह दी गई है इसमें विशेषतः मौलिब्डेनम, मैगनीज, रेशा, सेलेनियम, कॉपर, विटामिन बी–1, क्रोमियम, फॉस्फोरस, मैग्निशियम एवं नियासिन पाया जाता है। आइये विस्तार से जानते हैं कि जौ के विभिन्न स्वास्थ्य लाभ क्या हैं तथा हम किस प्रकार इसे उपयोग में ला सकते हैं–

कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण एवं आँत संबंधी विकारों से बचाव

जौ आँतों के स्वास्थ्य को दुरुस्त रखता है, आयाम को बढ़ाते हुए प्रेषण समय को घटाता है फलस्वरूप कोलोन कैंसर तथा हिमेराइड्स का खतरा कम हो जाता है। बड़ी आँत में उपस्थिति मित्र जीवाणुओं के लिए जौ का रेशा भोजन का कार्य करता है। जौ के अघुलनशील रेशों से उत्पादित प्रोपियोनिक एसिड भी मानव शरीर में कोलेस्ट्रॉल कम करने के लिए उपयोगी है। शोधों से ज्ञात हुआ कि प्रोपियोनिक एसिड एच.एम.जी.–सी.ओ.ए.–रिडक्टेज नामक उत्प्रेरक की गतिविधियों को रोकता है जो कि लीवर में कॉलेस्ट्राल बनाने का काम करता है। इसी के साथ जौ में उपस्थित आहारीय रेशा में बीटा–ग्लूकन की मात्रा अधिक होने के कारण वह कोलेस्ट्रॉल को बाइल्स से बांधता है तथा मल द्वारा निष्कासन की क्रिया को उत्प्रेरित करता है।

आरचीव्स आफ इंटरनल मेडीसिन के एक शोध के अनुसार

उच्च रेशा युक्त भोजन जो कि जौ से उपयुक्त मात्रा में प्राप्त होता है हृदय की बिमारियों के लिए स्वास्थ्यवर्धक है।

धमनियों में जमाव से अतिरिक्त सुरक्षा

जौ में पाया जाने वाला नियासिन विटामिन बी का अच्छा स्रोत है। दिल की बिमारियों के खतरे के कारकों पर नियंत्रित करता है। नियासिन प्लेटलेट्स के जमाव को रोकता है। जिनसे हृदय में रक्त जमने की सम्भावना कम हो जाती है। एक कप जौ से प्रतिदिन की नियासिन आवश्यकता का 14.2% भाग उपलब्ध हो जाता है।

रजोनिवृति के बाद महिलाओं में हृदय स्वस्थता

यदि एक कप जौ हफ्ते में 6 बार महिलाओं द्वारा खाया जाये तो रजोनिवृति के बाद होने बाले उच्च कोलेस्ट्रॉल, उच्च रक्तचाप एवं हृदयाघात जैसी बिमारियों में लाभ मिलता है। शोधों में यह भी पाया गया है कि फलों एवं सब्जियों या प्रसंस्कृत अनाजों से मिलने वाला रेशा हृदय सम्बन्धी विकारों को घटाने में उतना उपयोगी नहीं है जितना साबुत अनाजों में पाया जाने वाला रेशा। अतः अपने आहार में साबुत अनाजों को वरीयता दें।

टाइप–2 मधुमेह का नियंत्रण

जौ तथा अन्य साबुत अनाज मैग्निशियम के बहुत अच्छे स्रोत हैं। मैग्निशियम एक ऐसा खनिज है जो कि हमारे शरीर के लगभग 500 उत्प्रेरकों के फैक्टर का कार्य करता

है। जिसमें ग्लूकोज तथा इंसुलिन को नियंत्रित करने वाले उत्प्रेरक भी सम्मिलित हैं। साबुत अनाजों का सेवन मधुमेह के खतरे को कम करता है। यह रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित करता है।
शोधों के अनुसार जौ शरीर में ग्लूकोज एवं इन्सुलिन की मात्रा को जई की अपेक्षा जौ अधिक नियंत्रित रखता है।

रजोनिवृति के उपरान्त होने वाले स्तन कैंसर से बचाव

एक शोध के अनुसार साबुत अनाज से पाए जाने वाले रेशों से 34% तक स्तन कैंसर का खतरा टाला जा सकता है। साबुत अनाज जैसे जौ से अधिक मात्रा में रेशा ब्रान के रूप में पाया जाता है। (1/3 कप जौ के ब्रान में 14 ग्राम रेशा होता है)। एक तिहाई कप जौ का दूध के साथ सेवन करने पर संस्तुत पोषण मात्रा का एक तिहाई रेशा शरीर को उपलब्ध हो जाता है। ब्रान स्तन कैंसर की रोकथाम के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

गॉल ब्लैडर की पथरी से बचाव

अमेरिका जर्नल ऑफ गैस्ट्रोलोजी के अनुसार ऐसे खाद्यों का सेवन करना जिनमें अघुलनशील रेशे पाये जाते हैं महिलाओं में पित्त की थैली में होने वाली पथरी से बचाव करता है। इसका खतरा लगभग 17% तक कम होने की सम्भावना होती है।

साबुत अनाज तथा मछली बच्चों में दमा के लिए कारगर

इंटरनेशनल स्टडी ऑन एलर्जी एंड अस्थमा इन चाइल्डहुड (तबक सी, विजगां ए.एच., थोरैक्स) के शोध के अनुसार साबुत अनाज जैसे जौ तथा मछली का सेवन रोज के आहार में बढ़ाने से बच्चों में दमा का खतरा 50% तक घट जाता है। ब्रोंकियल हाइपर रेसपोनसिवनेस (बी.एच.आर.) जो कि वायुतंत्र को कमजोर करके संवेदनशीलता को बढ़ाता है यदि बच्चों को पूर्ण अनाज एवं मछली की उच्च मात्रा दी जाये तो 72 से 88% तक खतरा टाला जा सकता हैं। मछली में ओमेगा 3 फैटी एसिड होते हैं तथा मैग्निशियम एवं विटामिन ई साबुत अनाजों से मिलता है जो कि दमा के खतरे को कम करने में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

बड़ी आंत के कैंसर से बचाव

जौ में सेलेनियम पाया जाता है जो कि बड़ी आंत के कैंसर होने की सम्भावना को कम कर देता है। सेलेनियम एक सशक्त सूक्ष्म पोषक तत्व है जो कि थाइराइड हारमोन मेटाबोलिज्म, रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास तथा एंटीऑक्सीडेन्ट्स के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। यह डी.एन.ए. की सुरक्षा का कार्य भी करता है जिससे कैंसर होने की सम्भावना 30% तक कम हो जाती है।

गठिया के मरीजों के लिए कारगर

कॉपर एक सूक्ष्म पोषक तत्व है जो जौ से उपलब्ध होता है यह रयूमेटाइड अर्थराइटिस (गठिया) के लक्षणों को कम करता है। कॉपर लाइसिल ऑक्सीडेज नामक उत्प्रेरक जो कोलेजिन एवं इलैस्टिन को बनाने में तथा रक्त धमनियों के लचीलेपन के लिए बहुत सक्रियता का कार्य करता है, हड्डियां एवं जोड़ों के लिए अधिक कारगर सिद्ध होता है। एक कप पका हुआ जौ 32% कॉपर उपलब्ध कराता है।

विभिन्न खाद्य पदार्थों में रेशों की मात्रा

खाद्य	फाइबर रेशा (ग्राम)
ओटमील. 1 कप	3.98
पूर्ण गेहूँ की रोटी	2.00
ब्रउन राइस–1 कप	3.5
जौ –1 कप	13.6
बकव्हीट–1 कप	4.54
मक्का –1 कप	4.60
सेब–1 छिलका सहित	5.0
केला– 1 मध्यम	4.0
जामुन– 1 कप	3.92
संतरा– 1 बड़ा	4.42
नाशपाती– 1 बड़ी	5.02
खजूर – 1/4 कप	3.02
स्ट्राबेरी–1 कप	3.82
रसभरी– 1 कप	8.36

जौ की उपलब्धता

बाजार में जौ विभिन्न रूपों में पाया जाता है जैसे–

हल्ड जौ (छिलका उतरा) : जैसा कि नाम से ज्ञात होता

है कि इसमें जौ का सबसे ऊपरी छिलका उतारा जाता है। इसके उपयोग करने के लिए ज्यादा भिगोने और पकाने की जरूरत पड़ती हैं। परन्तु पोषण की दृष्टि से ये उत्कृष्ट है। इसकी गणना साबुत अनाजों में की जाती है।

पर्ल जौ : इसमें जौ को कई बार पॉलिशिंग से गुजरना पड़ता है। ऊपर का ब्रान पूरी तरह से हट जाता है। यह खाने में कम लचीला तथा जल्दी पकता है। इसमें पोषक तत्वों का क्षरण ज्यादा होने के कारण यह पूर्ण जौ की अपेक्षा कम लाभदायक है।

पॉट/स्कॉच जौ : यह हल्ड जौ एवं पर्ल जौ के बीच की अवस्था है। पॉलिशिंग द्वारा ऊपर का छिलका उतारा जाता है, परन्तु ब्रान की कुछ विशेषतायें इसमें निहित होती हैं। पॉट जौ को साबुत अनाज के वर्ग में नहीं रखा जाता लेकिन पर्ल जौ की अपेक्षा पोषण का अच्छा विकल्प है। इसको प्रायः दुनिया के विभिन्न भागों में सूप में उपयोग किया जाता हैं।

जौ फ्लेक्स : यह देखने में ओट्स की तरह ही होता है। इसको हल्ड या पर्ल जौ से बनाया जाता है इसीलिये इसके पोषक तत्वों में भी भिन्नता होती है।

चयन एवं भन्डारण

बाजार में जौ पर्ल, हल्ड और फ्लेक्स रूप में उपलब्ध है। जिस तरह किसी भी साबुत अनाज को खरीदने पर डिब्बा या पौली पैकिंग की जाती है उसी तरह इसकी भी पैकिंग होती है। उत्पाद को खरीदने से पहले ध्यान रखें कि पैकिंग भली–भाँति हो ताकि ताजापन बना रहे। जौ का भन्डारण कांच के बड़े डिब्बे में जिसका ढक्कन अच्छी प्रकार बन्द होता हो, में करें। गर्मियों के मौसम में इसे फ्रिज में भी रख सकते हैं।

तैयार एवं पकाने के तरीके

सभी अनाजों की तरह पकाने से पहले अच्छी तरह धोयें ताकि धूल के कण और कचरा निकल जाये। धोने के बाद उसे तीन गुना पानी में पकायें। जब तक उबाल न आये, आंच को धीमा रखकर पकने के लिये छोड़ें। इस तरह से पहले जौ को पकाने में 25 मिनट तथा हल्ड जौ को पकाने में 40 मिनट से एक घन्टा तक लग सकता है।

खाने के तरीके

गेहूँ के साथ आटे के रूप में जौ का सेवन करना सबसे उपयुक्त तरीका है। इसके साथ ही खिचड़ी, बिस्कुट, कच्ची सब्जियों के साथ सलाद के रूप में सूप में पुलाव की तरह व नमकीन इत्यादि में।

ध्यान रखने योग्य

ग्लूटेन अपच

प्रत्येक अनाज की तरह जौ भी ग्लूटेन युक्त हैं कुछ लोगों को ग्लूटेन जो कि गेहूँ तथा अन्य उत्पदों से मिलता हैं, से

जौ हल्ड सूखा (0.33 कप) 61.33 ग्राम		ऊर्जा–217 ग्लाइसेमिक इंडेक्स–कम		
पोषक तत्व	**मात्रा**	**दैनिक आवश्यकता का भाग %**	**पोषण घनत्व**	**विश्व के सबसे स्वास्थ्यकर खाद्यों की गणना दरें**
मॉलिब्डेनम	26.99 मिग्रा	60	5.0	बहुत अच्छा
मैंगनीज	1.19 मिग्रा	60	4.9	बहुत अच्छा
फाइबर	10.61 ग्राम	42	3.5	बहुत अच्छा
सेलेनियम	23.12 मिग्रा	42	3.5	बहुत अच्छा
कॉपर	0.31 मिग्रा	34	2.9	अच्छा
विटामिन बी–1	0.40 मिग्रा	33	2.8	अच्छा
क्रोमियम	8.16 मिग्रा	23	1.9	अच्छा
फास्फोरस	161.92 मिग्रा	23	1.9	अच्छा
मैग्निशियम	81.57 मिग्रा	20	1.7	अच्छा
विटामिन बी–3	2.82 मिग्रा	18	1.5	अच्छा

विश्व के सबसे स्वास्थकर खाद्यों की गणना	नियम
उत्कृष्ट	दैनिक आवश्यकता का भाग>=75% या घनत्व >=7.6
बहुत अच्छा	दैनिक आवश्यकता का भाग>=50% या घनत्व >=3.4
अच्छा	दैनिक आवश्यकता का भाग>=25% या घनत्व >=1.5

(स्रोतः आई.सी.एम.आर., नई दिल्ली)

संवेदनशीलता बढ़ती हैं तथा पेट उसे पचा नहीं पाता ऐसी स्थिति में डॉक्टर उन्हें साबुत अनाजों से दूर रहने के लिए कहता है ऐसे में जौ के साथ प्रयोग नहीं करने चाहिए। जब कि जौ यदि अन्य अनाजों, सब्जियों एवं फलों के साथ उपयोग किया जाता है तो ग्लूटेन संवेदनशीलता कम हो जाती है।

घरेलू स्तर पर तैयार करने हेतु जौ के विभिन्न व्यंजन

1. जौ एवं मूंग दाल की खिचड़ी

जौ को आधा घन्टा भिगो लें। कुकर में तेल गरम करें तथा जीरा डालें तथा हींग, हल्दी डालकर चलायें। जौ, मूंग दाल, पानी तथा नमक डालकर 2 सीटी आने तक पकायें।

पोषक मूल्य–ऊर्जा–196 कैलोरी, प्रोटीन–12.7 ग्राम कार्बन–38.2 ग्राम, वसा–3.2 ग्राम, रेशा–4.2 ग्राम व लोहा–1.2 मि.ग्रा।

2. जौ एवं कार्न सलाद

जौ एवं स्वीट कार्न को 1 कप पानी डालकर कुकर में पकायें (2 सीटी तक), अतिरिक्त पानी निकाल दें तथा शिमला मिर्च, हरा धनिया, प्याज, नीबू रस, नमक एवं काली मिर्च मिलायें तथा रख दें। ठन्डा होने पर खायें।

पोषक मूल्य– ऊर्जा–53 केलोरी, प्रोटीन.1.9 ग्राम, कार्बन 10.8 ग्राम, वसा–0.3 ग्राम, रेशा– 2.1 ग्राम, विटामिन–ए–207.4 मि. ग्राम व विटामिन – सी–29.7 मि. ग्राम.।

3. जौ इडली

1/2 कप चावल एव 1/4 कप उड़द दाल तथा 5 या 10 मेथी बीजों को पानी में भिगोयें,1/4 कप जौ को अलग भिगोयें (2–3 घन्टे के लिए) 2 चम्मच भीगने के बाद अलग निकालकर रखें। सभी चीजों को मिलाकर पीस लें तथा 3–4 घन्टे के लिए ढककर रख दें। नमक मिलायें अब इडली के बर्तन में डालें तथा ऊपर से थोड़ी जौ तथा बारीक कटी मनपसंद सब्जियां डालें। पकाकर परोसें।

पोषक मूल्य– ऊर्जा–57 केलोरी, प्रोटीन–1.9 ग्राम, कार्बन–12.0 ग्राम, वसा–0.1 ग्राम, रेशा– 0.2 ग्राम व फोलिक एसिड–7.0 मि. ग्राम ।

4. जौ एवं सब्जियों का सूप

तेल गर्म करके प्याज और लहसुन डालें तथा सब्जियां डालें। जैसे गाजर, टमाटर प्यूरी, पालक, नमक तथा 5–7 मिनट तक पकनें दें। जौ व मैकरोनी या पास्ता डालकर पकने दें। थोड़ा चीज डालकर परोसें।

पोषक मूल्यः ऊर्जा 83 केलोरी, प्रोटीन–2.4 ग्राम, कार्ब –10.1 ग्राम, वसा–3.7 ग्राम, कैलशियम –49.5 मि.ग्राम व फोलिक एसिड – 13.6 मि.ग्राम।

5. जौ का पानी (शिशुओं के लिए) :

1 चम्मच जौ को 2 कप पानी तथा दो चम्मच गुड़ के साथ उबालें। ठन्डा होने के बाद इसे ब्लेंड कर लें। छान लें ठंडा होने पर 1 चम्मच नीबू का रस मिलाकर दें।

पोषक मूल्यः ऊर्जा 135 कैलोरी, प्रोटीन–1.8 ग्राम, कार्बन–45.9 ग्राम, वसा–0.5 ग्राम, विटामिन–ए–1.2 माइक्रो ग्राम, विटामिन सी–11.7 मि. ग्राम, कैल्शियम –52. 9 मि. ग्राम व लोहा–1.2 मि.ग्राम।

जौ का दलिया, खिचड़ी, पुलाव एवं पोहा आदि में भी उपयोग होता है।

हम सभी को विशेष प्रयत्न करने चाहिए कि ऐसे खाद्य पदार्थों का चयन करें जिससे हमारे शरीर को उपयुक्त पोषण मिले तथा शरीर रोगों एवं विकारों से लड़ने की क्षमता को विकसित कर सकें।

हर्बल हाइड्रोजल लेपित बीज, गेहूँ व अन्य फसलों में सिंचाई पानी व दूसरे संसाधनों के बचत की नई तकनीक

वीरेंद्र सिंह लाठर, अशोक सिवाच*, अमित कुमार एवं धीरेन्दर चौधरी

भा कृ अनु प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रिय स्टेशन, करनाल के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. वीरेंद्र सिंह लाठर द्वारा विकसित नई बीज तकनीक हर्बल हाइड्रोजल पर आधारित है। जिसमे हर्बल हाइड्रोजल गोंद कतीरा लेपित बीज की बिजाई की जाती है जिससे सभी फसलों के पौधों व जड़ों में जल्दी सूखा नहीं आता और सिंचाई की जररूरत कम रह जाती है। फसलों में पहली सिंचाई देर से व कम सिंचाई लगाने के कारण खरपतवार व अन्य बिमारियाँ, कीड़े भी कम आते हैं। डॉ. लाठर ने इंसानो द्वारा खाए जाने वाले गोंद कतीरे की पहचान हर्बल हाइड्रोजल के रूप में की और इसको कृषि के उपयोग में लाने व सिंचाई पानी बचाने के लिए, दुनिया में पहली बार इस नई बीज लेपित तकनीक का विकास किया जिसका परिक्षण अब कृषक खेतों पर चल रहा है।

नई तकनीक में पहले एक लीटर उबलते पानी में 250 ग्राम गुड़ और 100 ग्राम बबूल की गोंद डाल कर एक तार की चासनी बनाई जाती है फिर इस चासनी को बीजों पर डाल कर चिपचिपा बनाया जाता है (एक लीटर चासनी प्रति 50–60 किलोग्राम बीज)। तब चिपचिपे बीजों पर 10 प्रतिशत की दर से गोंद कतीरे का पाउडर (एक किलो गोंद कतीरे का पाउडर प्रति 10 किलोग्राम बीज) डाल कर हाथ व घुमाने वाली मशीन की सहायता से मिलाया जाता है जिसे 4–6 घंटे छाया में सुखा कर बिजाई की जाती है।

पिछले साल, किसानों के खेतों पर, गेहूँ व अन्य फसलों में किये गए विस्तृत परीक्षणों में, नई बीज लेपित तकनीक ने सिंचाई पानी बचाने व खरपतवार रोकथाम करने में अपनी उपयोगिता साबित की और यह सभव हुआ, बिजाई के तुरंत बाद एक लीटर प्रति एकड़ की दर से पेंडामेथालीन 200 लीटर पानी में छिड़काव करने और पहली सिंचाई देर से लगाने पर, जो खरीफ फसलों (धान वगैर) में बिजाई के लगभग 15–20 दिनों व रबी फसलों (गेहूँ व जौ वगैर) में लगभग 45–50 दिनों के बाद की जाती है।

गेहूँ की फसल में पहली सिंचाई देर से व सीमित तीन सिंचाई (50, 90, 125 दिनों) पर भी फसल की पैदावार, कृषि विज्ञानिकों द्वारा सिफारिश की गयी 6 सिंचाई (25, 45, 65, 85, 105, 125 दिनों पर) के बराबर ही रही है। गेहूँ व अन्य फसलों में तो नई बीज लेपित तकनीक, लगभग सभी खतपरवारों (जैसे कि गेहूँ में मंडूसी, गूली–डंडा, बथुआ, जंगली जई वगैर) के रोकथाम के लिए रामबाण सिद्ध हुई है वह भी बिजाई के बाद बिना किसी दवाई के छिड़काव के। जो की आगे चित्रों में भी दिखाया गया है। जिससे किसानों के लागत खर्चों में भारी बचत तथा पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम होती है। सबसे ज्यादा फायदें की बात, नई बीज लेपित तकनीक के उपयोग में आने वाली सारी सामग्री (गोंद–कतीरा, गुड़, कीकर–बबूल की गोंद) इंसानो के भी खाद्य पदार्थ है जो सभी गांवों, कस्बों व् शहरों की दुकानों पर सस्ते भाव (लगभग 250 रुपए प्रति किलोग्राम) में आसानी से मिल जाते है।

हर्बल हाइड्रोजल लेपित बीज तकनीक के फसलों में लाभ :

- लगभग आधी सिंचाई; पानी व अन्य संसाधनों की बचत।
- खतपरवारों की रोकथाम, बिना किसी दवाई के छिड़काव के।
- आधी लागत–खर्चे की बचत।
- पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम ।

सारणीः 1 गेहूँ व जौ की फसल में हर्बल हाइड्रोजल गोंद कतीरा लेपित बीज तकनीक का कृषक प्रक्षेत्र पर प्रदर्शन (2015–16)

जिला	फसल/किस्म	प्रदर्शन प्लाट (प्रति एकड़)	पहली सिचाई बिजाई के बाद दिनों पर		सिचाई		बिजाई के बाद खरपतवारनाशक दवाई का छिड़काव		पैदावार (कुंतल प्रति एकड़)		टिप्पणी
			लेपित बीज	अलेपित बीज	लेपित बीज	अलेपित बीज	लेपित बीज	अलेपित बीज	लेपित बीज	अलेपित बीज	
करनाल	गेहूँ	40	46.0	25.3	3	5	0	2	18.28	18.16	रबी–2015–16 में अल्प वर्षा
	सी–306	5	50	26	2	4	0	2	13.5	11.0	नगण्य खरपतवार
	एच डी 3086	9	46	24	3	5	0	2	18.0	17.6	नगण्य खरपतवार
	एच डी 3086	6	45	25	3	5	2	2	16.8	17.2	जीरो टिलेज, खूब खरपतवार
	एच डी 2967	6	48	24	3	5	0	2	20.8	21.1	नगण्य खतपरवार
कैथल	एच डी 3086	1	40	24	3	5	1	2	18.0	18.4	नगण्य खरपतवार
भिवानी	डब्ल्यू एच 1105	9	44	25	3	5	0	2	21.2	21.6	नगण्य खरपतवार
गुड़गांव*	एच डी 2967	1	32	22	5	6	1	2	20.4	16.8	नगण्य खरपतवार
	डब्ल्यू एच 711	1	35	27	5	7	0	1	16.0	20.0	नगण्य खरपतवार
	डब्ल्यू एच 1105	1	35	24	4	4	0	1	18.8	18.6	नगण्य खतपरवार
	डब्ल्यू एच 283	1	38	23	3	5	0	1	12.0	15.2	नगण्य खरपतवार
गुड़गांव*	जौ बी एच 393	393	2	44	22	3	5	0	1	18.6	नगण्य खरपतवार
• हरियाणा कृषि विभाग, गुड़गांव के सहयोग से कृषक प्रदर्शन											

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन में गेहूँ का उपयोग

अनिता मीणा और अजय वर्मा

भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

आजादी के छह दशक बाद भी गरीबों की स्थिति में विशेष सुधार नहीं आया है। देश की जनसंख्या का दो तिहाई हिस्सा आज भी गरीब है। आज भी ऐसे बहुत गरीब परिवार हैं जिन्हें आमतौर पर दो वक्त का भोजन नसीब नहीं होता हैं। जबकि उनके मासिक बजट का एक बड़ा हिस्सा भोजन पर व्यय होता है। देश के लोगों को बुनियादी आवश्यकताएं प्रदान करने के महत्व को देखते हुए भारत में एक लम्बे समय से सार्वजनिक वितरण प्रणाली कायम है जिसने गरीब लोगों की भूख कम करने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की है और देश की गरीबी में कमी लाने में गहरा प्रभाव छोड़ा है। वर्ष 1997 से सार्वजनिक वितरण प्रणली से लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणली में नीतिगत बदलाव आया है। गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को अधिक खाद्य सब्सिडी देने पर खास जोर दिया गया है। भोजन मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है और इसी कारण भोजन को मानव अधिकार के संयुक्त राष्ट्र के अन्तराष्ट्रीय कानून (1999) के विभिन्न अभिकरणों में मान्यता दी गई है। खासकर आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र में भूख और कुपोषण से मुक्ति को मौलिक अधिकारों में मान्यता प्रदान करती है देश में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 में बना है जो देश के 67% गरीब लोगों को भोजन की गारंटी प्रदान करता है। विशेषकर गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को भोजन उपलब्ध कराने कि गारंटी का उनकी आमदनी पर भी उल्लेखनीय प्रभाव होगा। निर्धन वर्गों को भरपूर भोजन मिलने उनका पोषण बेहतर ढंग से होगा। बेहतर स्वास्थ्य में भी सुधार होगा। बेहतर स्वास्थ्य होने से अधिक काम करने पर अतिरिक्त आय स्वैच्छिक मुदों पर व्यय की जा सकती है। खेती में काम आने वाले उपकरणों व सामग्री पर खर्च की जा सकती है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे परिवारों के लिए सुनिश्चत खाद्यान्न निश्चय ही उन्हें सम्मान के साथ जीने का अवसर प्रदान करेगा।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तीन घटकों में गेहूँ का प्रमुख स्थान है–

- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–चावल
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन– गेहूँ
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–दलहन

वर्ष 2015–16 भारत में खाद्यान्न का कुल उत्पादन 264.1 मिलियन टन होने का अनुमान है जो पिछले वर्ष 252.68 मिलियन टन की तुलना में 11.3 मिलियन टन अधिक है और इस वर्ष चावल एवं गेहूँ का रिकॉर्ड उत्पादन 106.1 मिलियन टन और 94.75 मिलियन टन का अनुमान है। मक्का (23.8 मिलियन टन), तूर (3.67 मिलियन टन), सभी दालें (20.05 मिलियन टन), नौ प्रमुख तिलहनी फसलों का 330 मिलियन टन और कपास की 351.1 मिलियन गाठें भी रिकॉर्ड उत्पादन का अनुमान है। पिछले पांच वर्षों की तुलना में वर्ष 2015–16 में प्रमुख फसलों के उत्पादन इस प्रकार हैं।

गेहूँ का उत्पादन फसलों में विशिष्ट स्थान है। कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन गेहूँ के दो मुख्य तत्व हैं। इस वर्ष के कुल खाद्यन्न उत्पादन में चावल, गेहूँ और मोटे अनाज की हिस्सेदारी 40, 36 व 26% तक है। देश के कुल खाद्यान्न में 5.36% तथा गेहूँ 1.7% वृद्धि (विगत पांच सालों में) को दिखाया है जो प्रमुख चावल (20) से कम है इसका एक प्रमुख कारण गेहूँ और उसके प्रसंस्कृत उत्पादों की बढ़ती लोकप्रियता है। जबकि ज्यादा प्रमुख वृद्धि अरहर उत्पादन में 35.7% से ज्यादा है।

इस उल्लेखनीय मिशन में देश के ज्यादा खाद्यान्न उत्पादन वाले राज्य शामिल हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–चावल

इसके अंतर्गत देश के 14 राज्यों से 142 जिलें (आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल) शामिल किये हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–गेहूँ

इसके अंतर्गत देश के 9 राज्यों से 142 जिले (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र व पश्चिम बंगाल) शामिल किये हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–दलहन योजना के अंतर्गत 16 राज्यों से 468 जिलें (आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल) शामिल किये जाएंगे।

इन शामिल जिलों के अंतर्गत 20 मिलियन हैक्टर धान के क्षेत्र, 13 हैक्टर गेहूँ के क्षेत्र व 4.5 मिलियन हैक्टर दलहन के क्षेत्र शामिल किये गये हैं जो धान व गेहूँ के कुल बुआई क्षेत्र का प्रतिशत है। दलहन के लिए अतिरिक्त 20 प्रतिशत क्षेत्र का सृजन किया जाएगा। साथ ही साथ अतिरिक्त रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होंगे।

भारत के 25 राज्यों में से केवल 9 राज्यों में ही खेती के लिए ज्यादा क्षेत्रफल का उपयोग किया जाता है और देश के कुल गेहूँ क्षेत्रफल में लगभग 25 प्रतिशत का हिस्सा इन्हीं राज्यों का ही है। दूसरे शब्दों में देश के कुल क्षेत्रफल का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा इन्हीं राज्यों का ही है। उत्पादन की दृष्टि में भी इसी तरह की तस्वीर उभरकर आती है क्योंकि कुल उत्पादन का 27 प्रतिशत हिस्सा 2 राज्यों का ही है। एक बात और भी महसूस होती है कि गेहूँ उत्पादन की दृष्टि में इन राज्यों की जलवायु बहुत ही उपयुक्त है। जबकि उत्तर प्रदेश, अकेले ही, देश के कुल गेहूँ क्षेत्रफल में 33 और उत्पादन में 32 प्रतिशत तक का योगदान देता है।

खाद्य सुरक्षा कानून बनने से देश की दो तिहाई आबादी को सस्ता अनाज मिलेगा। इसके तहत लाभ प्राप्त करने वाले परिवारों को प्राथमिकता ओर सामान्य परिवार में बांटा गया है। प्राथमिकता वाले परिवारों में गरीबी रेखा से नीचे गुजर–बसर करने वाले और सामान्य कोटि में गरीबी रेखा से ऊपर के परिवारों को रख गया है। इससे ग्रामीण क्षेत्र की 75 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्र की 50 प्रतिशत आबादी इस विधेयक के दायरे में आएगी। प्राथमिकता वाले परिवारों को तीन रूपये प्रति किलोग्राम की दर से चावल और दो रूपये प्रति किलोग्राम की दर से गेहूँ उपलब्ध कराने की बात कही गई है। खाद्य सुरक्षा विधेयक के तहत देश की 63.5 प्रतिशत जनता को खाद्य सुरक्षा प्रदान की जाएगी। इससे अनाज की मांग 5.5 करोड़ मिट्रिक टन से बढ़कर 6.1 करोड़ मिट्रिक टन हो जाएगी। शहरी इलाकों में कुल आबादी के 50 फीसदी लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान की जाएगी और इनमें से कम से कम 25 प्रतिशत प्राथमिकता श्रेणी के लोगों को दिया जाएगा।

तालिकाः राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन में खाद्यान्न उत्पादन करने वाले राज्य

फसल	राज्य	जिलों की संख्या	लक्षित क्षेत्रफल (मि.है.)	उत्पादन लक्ष्य (मि.टन.)
धान	14	142	20	10
गेहूँ	09	142	13	08
दलहन	16	468	4.5	04
मोटे अनाज	28	623		03
			कुल खाद्यान्न	25 मि.टन.

विविध

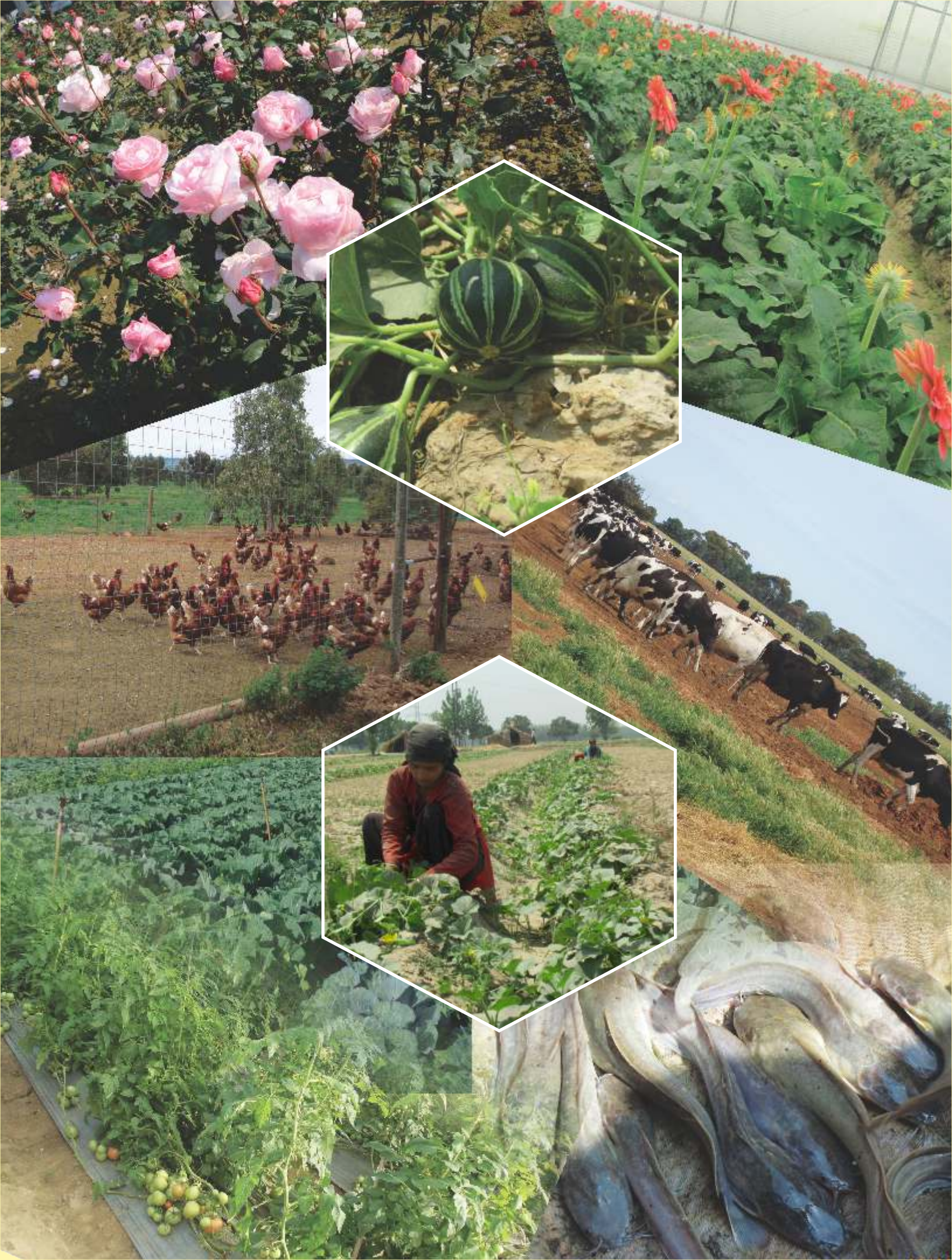

प्याज बीज उत्पादन प्रौद्योगिकी

धिरेन्द्र चौधरी[1], सुरेश चंद राणा[2], विनोद कुमार पंडिता[2] एवं पी बी सिंह[2]
1. भा कृ अनु प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
2. भा कृ अनु प – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल

प्याज का हमारे देश में उगाई जाने वाली सब्जियों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक महत्वपूर्ण शल्ककंद सब्जी फसल है। यह पोटाशियम, फास्फोरस, कैल्शियम तथा विटामीन सी का एक अच्छा स्त्रोत है। इसका बीजोत्पादन उष्ण कटिबन्धीय, शीतोष्ण तथा सम–शीतोष्ण आदि विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में संभव है। पौधे की आरंभिक बढ़वार की अवस्था में व कंद बनना शुरु होने से पहले 13–21° सेंटीग्रेड तापमान तथा कंद बनना शुरु होने की अवस्था में 15–25° सेंटीग्रेड तापमान अनुकूल रहता है। बीज के पकने के समय अपेक्षाकत सुखे व गर्म मौसम की आवश्यकता होती है।

उन्नत किस्में

रबी फसल के लिए उन्नत किस्में

लाल किस्में– पूसा लाल, पूसा माधवी, पूसा रिद्धि, पूसा रतनार, पंजाब रेड राउंड, अरका निकेतन, एग्रीफाउण्ड लाईट रेड, एन.एच.आर.डी.एफ. रेड।

सफेद किस्में–पूसा व्हाईट फ्लैट, पूसा व्हाईट राउंड, एग्रीफाउण्ड व्हाईट, एस–48, पजांब व्हाईट।

पीले रंग की किस्में– अर्ली ग्रेनो

खरीफ फसल के लिए उन्नत किस्में

एन–53, एग्रीफाउण्ड डार्क रेड।

खेत का चयन

प्याज बीज उत्पादन के लिए ऐसे खेत का चुनाव करना चाहिए जिसमें पिछले मौसम में प्याज या लहसुन की शल्ककंद या बीज फसल ना उगाई गई हो। खेत की मिट्टी दोमट, बलुई दोमट या चिकनी दोमट तथा पी.एच. मान 6 से 7.5 होना चाहिए। खेत की मिट्टी में जीवांश पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो तथा पानी के निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

पृथक्करण दूरी

शल्ककंद उत्पादन के दौरान दो किस्मों के बीच में न्यूनतम 5 मीटर का फासला होना चाहिए। प्रमाणित बीज फसल उत्पादन के लिए न्यूनतम 400 मीटर की पृथक्करण दूरी तथा आधार बीज फसल के लिए यह पृथक्करण दूरी 1000 मीटर होनी चाहिए। प्याज एक पर–परागित फसल है जिसमें मधुमक्खियाँ तथा अन्य कीट परागण में मदद करते है अतः आनुवंशिक रुप से शुद्ध बीज उत्पादन के लिए निर्धारित न्यूनतम पृथक्करण दूरी का होना आवश्यक है।

बीजोत्पादन विधि : उत्तर भारत के मैदानी भागों में बीजोत्पादन की दो विभिन्न विधियां है।

1. **बीज से बीज तैयार करना** : इस विधि में सीधा बीज से बीज तैयार किया जाता है। इसके अंतर्गत पौधशाला में बीज की बुवाई अगस्त माह में तथा पौध की रोपाई अक्तूबर में की जाती है। अप्रैल–मई में बीज तैयार होता है। इस विधि में अपेक्षाकृत अधिक बीज की उपज होती है एवं बीज हेतु कन्दों/गाँठों के भंडारण तथा पुनः रोपण आदि का खर्चा भी बचता है। इस विधि में प्याज के बीज की जातीय शुद्धता बनाए रखना सम्भव नहीं है। क्योंकि इसमें कन्दों के रंग, आकार आदि गुणों की परख नहीं की जा सकती।

2. **शल्ककंदों से बीज बनाना** : प्याज के अच्छी गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन हेतु अधिकतर इस विधि का उपयोग किया जाता है। इसके अंर्तगत दो विधियाँ आती है।

(क) एक वर्षीय विधिः इस विधि में खरीफ में उगाई जाने वाली प्रजातियां जैसे एन–53, एग्रीफाउड डार्क रेड आदि का बीज तैयार किया जाता है। इसमें जून माह में पौध तैयार करते हैं तथा पौध की रोपाई अगस्त में की जाती है। कंद नवंबर–दिसंबर माह में तैयार हो जाते हैं। कंदों की खुदाई के 15–20 दिन उपरांत चुने हुए स्वस्थ कंदों को बीज खेत में लगाते हैं। पुष्प दंड जनवरी–फरवरी में निकलते हैं तथा बीज अप्रैल–मई में निकाला जाता है। यह विधि लगभग एक वर्ष का समय लेती है।

(ख) द्विवर्षीय विधिः इस विधि से रबी प्याज की प्रजातियाँ जैसे पूसा रेड, पूसा माधवी, पूसा रिद्धि, पूसा व्हाइट फ्लैट, पूसा व्हाइट राउंड, एस–48, एग्रीफाउंड लाइट रेड, एन.एच.आर.डी.एफ. रेड आदि का बीज तैयार करते हैं। बीज अक्तूबर–नवंबर में बोया जाता है तथा पौध की रोपाई दिसंबर से जनवरी के प्रथम पखवाड़े तक करते हैं। शल्ककंद अप्रैल–मई में तैयार हो जाते हैं। खुदाई के उपरांत चुने हुए स्वस्थ शल्ककंदों को अक्तूबर तक भंडारण में रखते हैं। जिन्हें अक्तूबर–नवंबर में बीज उत्पादन हेतु खेत में लगाते हैं। बीज अप्रैल–मई में निकाला जाता है। इस विधि से बीज तैयार करने में लगभग डेढ़ वर्ष का समय लगता है। उत्तर भारत में बीज की अच्छी उपज एवं उच्च गुणवत्ता हेतु प्याज के बीज उत्पादन के लिए यह विधि अपनाई जाती है जिसका विवरण निम्न प्रकार है :–

1 बीज से शल्ककंद तैयार करना

शल्ककंद उत्पादन हेतु पौध तैयार करने के लिए बीज को 15–20 सें.मी. ऊंची उठी हुई क्यारियों में लगाया जाता है। एक हैक्टर क्षेत्र में रोपाई के लिए 3 मीटर लंबी तथा 60 सें. मी. चौड़े आकार की लगभग 80–100 क्यारियाँ पौध उत्पादन हेतु पर्याप्त होती है। दो–तीन जुताईयां करके खेत को समतल बनाकर क्यारियों व नालियों में बांट देते हैं। 8–10 किलोग्राम बीज एक हैक्टर के लिए पर्याप्त रहता है। बीज को 5–6 सें.मी. की दूरी पर कतारों में बोना चाहिए। बीजाई के बाद बीज को आधा सें.मी. तक अच्छी तरह सड़ी तथा छनी हुई गोबर की खाद से ढक देते हैं। 6 से 8 सप्ताह में पौध रोपाई हेतु तैयार हो जाती है। खरीफ फसल के लिए बीज मई–जून में बोया जाता है तथा पौध रोपण जुलाई–अगस्त में करते हैं। रबी फसल हेतु बीज अक्तूबर–नवंबर में बोया जाता है तथा पौध की रोपाई दिसंबर से जनवरी के प्रथम पखवाड़े तक करते हैं। पौध रोपण 15×10 से.मी. के अंतराल पर करते हैं। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करते हैं। पौध रोपण के लिए खेत तैयार करते समय 50 टन गोबर की सड़ी खाद, 240 किलोग्राम कैल्शियम अमोनियम नाईट्रेट या 60 किलोग्राम यूरिया, 200 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 80 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश तथा 10–12 किलोग्राम पी. एस.बी. कल्चर प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिलाते हैं। इसके अतिरिक्त 35 कि.ग्रा. यूरिया पौध रोपण के 30 दिन बाद तथा 35 कि.ग्रा. यूरिया पौध रोपण के 45–50 दिन बाद छिड़काव द्वारा डालते हैं। प्याज की जड़ें अपेक्षाकृत कम गहराई तक जाती है अतः 2–3 बार उथली निराई–गुड़ाई करते है और खरपतवार निकालते हैं। समय–समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते हैं। साधारणतया जाड़े के मौसम में 10–15 दिन के अंतराल पर तथा गर्मियों में सिंचाई 7–8 दिन के अंतराल पर करते हैं। जिस समय शल्ककंद बन रहें हो मिट्टी में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए।

2 शल्ककंदों की खुदाई व भंडारण

पौध रोपण के लगभग 110–125 दिन बाद शल्ककंद खुदाई के लिए तैयार हो जाते हैं। पौधों की 50 प्रतिशत पत्तियाँ सुखने के 8–10 दिन पश्चात् शल्ककंदों की खुदाई करने से भंडारण में होने वाली हानि कम हो जाती है। पत्तों सहित खुदाई करके शल्ककंदों को कतारों में रखकर 5–7 दिन छाया में सुखाते हैं। पत्तों को गर्दन से 2–2.25 से.मी. छोड़कर काट देते हैं। भंडारण में होने वाली हानि से बचने के लिए शल्ककंदों को सीधा धूप में नहीं सुखाना चाहिए तथा भीगने से बचाना चाहिए। मई में शल्ककंदों को निकालने के बाद साफ करके अक्तूबर तक अच्छे हवादार भंडार–गृह में रखते हैं। बोई गई किस्म से मेल खाती अच्छी, एक रंग की, पतली गर्दन वाली, दोफाड़े रहित शल्ककंदों का भंडारण करते हैं। भंडारित किये गए कंदों की 15–20 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छंटाई करते हैं तथा सड़े–गले तथा रोग ग्रस्त कंदों को निकालते हैं।

3 शल्ककंदों से बीज उत्पादन

बीजोत्पादन हेतु रबी प्रजातियां के शल्ककंदों को नवंबर के प्रथम पखवाड़े में तथा खरीफ प्रजातियाँ को शल्ककंदों के मध्य दिसंबर तक लगाया जाना चाहिए। बोने के लिए चुनी गई किस्म के गुणों से मेल खाते शल्ककंदों को उनके रंग, आकार व रुप के आधार पर छांटते हैं। पुर्णतः पक्व, स्वस्थ, एक रंग की, पतली गर्दन वाली, दोफाड़े रहित एवं 4.5–6.5 से.मी. व्यास तथा 60–70 ग्राम भार के शल्ककंदों को बीज

उत्पादन हेतु रोपण के लिए चुनते हैं। चुने हुए कंदों के उपर का एक चौथाई या एक तिहाई हिस्सा काटकर हटा देतें है तथा काटे गए कंद के निचले हिस्से को को 0.2 प्रतिशत कार्बेंडाजिम अथवा मैंकोजेब के धोल में 5–10 मिनट तक भिगोकर खेत में रोपाई करते हैं। कंदों को बगैर काटे या साबूत भी लगाया जाता है। उपचारित शल्ककंदों को अच्छी तरह तैयार किए गए खेत में समतल क्यारियों में 60×30 सें.मी. की दूरी पर 6–7.5 सें.मी. की गहराई पर लगाया जाता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें.मी. से कम होने पर फसल में मिट्टी चढ़ाने के कार्य में बाधा आती है। शल्ककंदों की रोपाई हेतु 60 सें.मी. के अंतर पर हल्की नालियां ट्रैक्टर चालित ड्रील द्वारा बनाई जा सकती है जिससे रोपाई में श्रमिक खर्च की लागत कम आती है। एक हैक्टर क्षेत्र में लगाने के लिए लगभग 25–30 कुंतल शल्ककंदों की आवश्यकता होती है। खरीफ प्रजातियों के प्याज को लगाने से पहले पौटाशियम नाइट्रेट 1 प्रतिशत के धोल में 5 मिनट डुबोकर लगाने से अंकुरण में लाभ होता है।

सिंचाई प्रबंधन

शल्ककंदों को बीजने के बाद सिंचाई करते हैं। बीज खेत में समय–समय पर सिंचाई करने की आवश्यकता होती है विशेषकर पुष्पन तथा बीज विकास के समय खेत में उचित नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। दिन के समय अथवा तेज हवा चलने की अवस्था में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। टपका सिंचाई का उपयोग करने पर भी अच्छी बीज फसल प्राप्त होती है।

मिट्टी चढ़ाना

पौधों को गिरने से बचाने के लिए बीज फसल में स्फुटन के आरंभ होने की अवस्था पर मिट्टी चढ़ाते हैं।

खाद एंव उर्वरक

शल्ककंद रोपण के लिए खेत तैयार करते समय 50 टन गोबर की सड़ी खाद, 240 किलोग्राम कैल्शियम अमोनियम नाईट्रेट या 60 किलोग्राम यूरिया, 150 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 80 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश तथा 10–12 किलोग्राम पी.एस.बी. कल्चर प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिलाते है। इसके अतिरिक्त 35 कि.ग्रा. यूरिया शल्ककंद लगाने के 30 दिन बाद तथा 35 कि.ग्राम यूरिया शल्ककंद लगाने के 45–50 दिन बाद छिड़काव द्वारा डालते हैं।

अवांछनीय पौधों को निकालना

बीज खेत में कोई भी वह पौधा जो लगायी गई किस्म के अनुरूप लक्षण नहीं रखता है उसे अवांछनीय पौधा माना जाता है। जिन पौधों में बीमारी, खासकर बीज से उत्पन्न होने वाली बीमारी हो तो उन्हें भी खेत से हटाना जरूरी है। अवांछनीय पौधों को खेत से बाहर निकालने वाले व्यक्ति को किस्म के लक्षणों का भली भांति ज्ञान होना चाहिए जिससे की वह अवांछनीय पौधों को पौधे की बढ़वार, पत्तों व फूलों के रंग–रूप, फूलों के खिलने का समय आदि के आधार पर पहचान सके। प्याज में तीन अवस्थाओं पर अवांछनीय पौधों को निकालने का कार्य करना चाहिए।

वानस्पतिक अवस्था

शाकीय वृद्धि लक्षणों में भिन्नता युक्त पौधों तथा विषाणु रोग से ग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

पुष्पन की अवस्था

विषाणु रोग तथा स्टेमफीलियम रोग से ग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट करना चाहिए।

पुष्पन के बाद तथा कटाई से पूर्व

इस अवस्था पर पौधों को स्टेमफीलियम रोग तथा नीला धब्बा रोग से ग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट करना चाहिए।

हर अवस्था पर जो भी अवांछनीय पौधे मिले उन्हें निकालते रहना चाहिए।

बीजवृंतों की कटाई, गहाई व भंडारण

कंदों की बुवाई के एक सप्ताह बाद अंकुरण आरंभ हो जाता है तथा लगभग ढाई माह बाद फूल वाले डंठल बनने शुरु हो जाते हैं। पुष्प गुच्छ बनने के 6 सप्ताह के अंदर ही बीज पक जाता है। बीजवृंतों का रंग जब मटमैला हो जाए एवं उनमें 10–15 प्रतिशत कैप्सूल के बीज बाहर दिखाई देने लगे तो बीजवृंतों को कटाई योग्य समझना चाहिए। सभी बीजवृंत एक साथ नहीं पकते अतः उन्ही बीजवृंतों को काटना चाहिए जिनमें 10–15 प्रतिशत काले बीज बाहर दिखाई देने लगे हों। 10–15 से.मी. लम्बे डंठल के साथ पुष्प गुच्छों को काटना चाहिए। कटाई के बाद बीजवृंतों को तिरपाल या पक्के फर्श पर फैलाकर खुले व छायादार स्थान पर सुखाना चाहिए। अच्छी तरह सुखाए गए बीजवृंतों को डंडों से पीटकर या ट्रैक्टर द्वारा गहाई करके बीजों को निकालते हैं। बीजों से बीजवृंत अवशेषों, तिनकों, डंठलों

आदि को अलग कर लेते है। यांत्रिक प्रसंस्करण सुविधा ना होने की स्थिति में सफाई के लिए बीज को 2–3 मिनट तक पानी में डुबोना चाहिए तथा नीचे बैठे हुए भारी बीजों को निथारकर सुखाना चाहिए। सुखाने के बाद बीज को फफुंदीनाशक दवा से उपचारित करना चाहिए। साफ बीज को अगर टीन के डिब्बों, अल्यूमिनियम फॉयल या मोटे प्लास्टीक के लिफाफे में भरना हो तो बीज को 5–6 प्रतिशत नमी तक सुखाना चाहिए। सुरक्षित भंडारण हेतु बीज को 18–20^{0} सें. तापक्रम तथा 30–40 प्रतिशत आपेक्षित आद्रर्ता पर रखना चाहिए।

बीज उपज एवं मानक

अच्छी बीज फसल से प्रति हैक्टर लगभग 800–900 कि.ग्रा. बीज प्राप्त किया जा सकता है।

प्रमुख कीट एवं रोग

प्याज का थ्रिप: ये कीड़े छोटे और पीले रंग के होते हैं, जो पत्तियों का रस चूसते हैं। पत्तियों पर हल्के हरे रंग के लंबे–लंबे दाग दिखाई देते हैं जो बाद मे सफेद हो जाते हैं। इनके नियंत्रण हेतु डाइमेथोएट 1.0 मि.ली. या साइपरमेथ्रिन 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। घोल में 0.1 प्रतिशत ट्राइट्रोन या सैन्डोविट या टीपोल नामक चिपचिपा पदार्थ अवश्य मिलायें।

शीर्ष छेदक (हेलिओथिस आर्मिजेरा): इस कीट का लार्वा पत्तियों को काटकर फसल को हानि पहुँचाता है। यह कीट प्याज की बीज वाली फसल में ज्यादा क्षति पहुँचाता है। इनके नियंत्रण हेतु मिथाइल डेमेटोन या साइपरमेथ्रिन 0.5–1.0 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। घोल में 0.1 प्रतिशत ट्राइट्रोन या सैन्डोविट नामक चिपचिपा पदार्थ अवश्य मिलायें।

बैगनी धब्बा (परपल ब्लॉच): यह रोग अल्टरनेरिया पोरी नामक फफूँद से होता है। प्रभावित पत्तियों और तनों पर छोटे–छोटे गुलाबी रंग के सिकुड़े हुए धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में बैंगनी रंग के हो जाते है। प्याज की गाँठे भण्डार गृह में सड़ने लगती हैं। पौधों की पत्तियाँ एक तरफ पीली तथा दूसरी तरफ हरी रहती हैं। इस रोग से बचाव के लिए क्लोरोथेलोनील या मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) 2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

मृदुरोमिल फफूँदी (डाउनी मिल्ड्यू): इस रोग में पत्तियों तथा पुष्प दंडों की सतह पर बैंगनी रोयेदार वृद्धि होती है जो बाद में हरा रंग लिए पीली हो जाती हैं तथा अन्त में पत्तियां एवं पुष्पदंड सूखकर गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम हेतु मैंकोजेब या कॉपर आक्सीक्लोराईड का 0.15 से 0.20 प्रतिशत घोल (1.5–2.0 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) बनाकर फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10–15 दिन के अन्तराल पर पुनः छिड़काव करें।

स्टेमफिलियम ब्लाइट: इस रोग में पत्तों के मध्य में छोटी पीली–नारंगी धारियां उत्पन्न होती है जो बाद में अंडाकार होती हुई फेल जाती है। अन्त में पत्तियां सूख जाती हैं। इस रोग से बचाव के लिए क्लोरोथेलोनील या मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) 2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

बीज मानक	मानक स्तर	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98 प्रतिशत	98 प्रतिशत
निष्क्रिय पदार्थ (अधिकतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किलोग्राम	10 प्रति किलोग्राम
खरपतवार के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किलोग्राम	10 प्रति किलोग्राम
अंकुरण क्षमता (न्यूनतम)	70 प्रतिशत	70 प्रतिशत
नमी (अधिकतम) सामान्य पैकिंग	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत
नमी अवरोधी पैकिंग	6 प्रतिशत	6 प्रतिशत

भिण्डी बीज उत्पादन प्रौद्योगिकी

भाग चंद, वी के पंडिता एवं एस सी राणा

भा कृ अनु प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल

फलदार सब्जियों में भिण्डी का एक प्रमुख स्थान है। भिण्डी में प्रचुर मात्रा में विटामिन्स, प्रोटीन, फास्फोरस व अन्य खनिज लवण उपलब्ध रहते हैं। इसके बीज में 13–22 प्रतिशत तक खाने योग्य तेल तथा 20–22 प्रतिशत तक प्रोटीन पाई जाती है। भिण्डी गर्म मौसम की फसल है तथा इसके पौधे पाले को सहन करने में असमर्थ होते हैं। 30–32^{0} सें. तापमान बीज अंकुरण के लिए उत्तम होता है। बीज के पकने के समय अपेक्षाकत सुखे व गर्म मौसम की आवश्यकता होती है। भिण्डी का उत्तम गुणवत्तावाला बीज बनाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

उन्नत किस्में: पूसा ए–4, पूसा सावनी, अर्का अनामिका, अर्का अभय, हिसार नवीन, हिसार उन्नत, वर्षा उपहार, पंजाब–7, पंजाब पद्मिनी, पंजाब–8

संकर किस्में: काशी भैरव, काशी महिमा, लाम संकर सेलेक्शन–1

खेत का चयन

भिण्डी के लिए 6 से 6.8 पी.एच. मान की दोमट, चिकनी दोमट या बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। खेत की मिट्टी में जीवांश पदार्थ प्रचुर मात्रा में होना चाहिए। बीज उत्पादन के लिए उन्ही खेतों का चयन किया जाता हे जिनमें पिछले एक साल में भिण्डी की फसल ना उगाई गई हो। ऐसा करने से पिछली फसल के ऐच्छिक पौधों के कारण बीज फसल में संदुषण की संभावना घट जाती है।

पृथक्करण दूरी

भिण्डी प्रायः परासेचित फसल है जिसमें 5–19 प्रतिशत तक पर–परागण हो सकता है। आनुवंशिक रुप से शुद्ध बीज उत्पादन के लिए भिण्डी के बीज खेत को भिण्डी की अन्य प्रजातियों के खेतों से अथवा इसी प्रजाति के ऐसे खेतों से जिनकी प्रजाति संबंधी शुद्धता प्रमाणीकरण स्तर की ना हो एवं जंगली भिण्डी के पौधों से एक न्यूनतम

पृथक्करण दूरी पर रखते हैं। आधार बीज के लिए यह दूरी 500 मीटर तथा प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु यह दूरी 250 मीटर होनी चाहिए।

बुआई का समय

उत्तर भारत के मैदानी भागों में भिण्डी की बीजाई फरवरी–मार्च तथा जून–जुलाई में की जाती है। दक्षिण भारत में भिण्डी की फसल सारा साल उगाई जा सकती है। अच्छी गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन हेतु बुआई का समय इस प्रकार निर्धारित करते है कि पुष्पन तथा बीज पकने के समय मौसम अपेक्षाकृत गर्म व सुखा रहे तथा फलों की तोड़ाई व बीज का निकालना सुखे मौसम में हो। बसंत–ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए 18–20 कि.ग्रा. तथा वर्षाकालीन फसल के लिए 10–12 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से आवश्यकता होती है। डिब्लर विधि या हाथ से बीजाई करने पर बीज की दर में बचत होती है। बसंत–ग्रीष्म ऋतु की फसल में बीज की अंकुरण क्षमता बढ़ाने हेतु बीजाई से पहले बीज को 8–10 घंटे पानी में भिगोकर लगाना उपयोगी होता है। जो बीज पानी के उपर तैरते रह जाएं उन्हें बीजाई के लिए प्रयोग ना करें। अच्छी पैदावार हेतु लाईन से लाईन की दूरी 50–60 सें. मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 25–30 सें. मी. रखते हैं। मेड़ों पर 1 या 2 कतारों में बुआई लाभप्रद है।

खाद एंव उर्वरक प्रबंधन

बीज फसल में उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक डालने के लिए मृदा जांच उपयोगी है। अतः मृदा जांच के आधार पर ही उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। साधारणतया भिण्डी की बीज फसल में 100 कि.ग्रा. नाईट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से आवश्यकता होती है। बीजाई हेतु खेत तैयार करते समय 20–25 टन गोबर की सड़ी खाद, 160 किलोग्राम कैल्शियम अमोनियम नाईटेट या 80 किलोग्राम युरिया, 300 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 120 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश तथा 10–12 किलोग्राम पी. एस. बी. कल्चर प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी में मिलाते हैं। इसके अतिरिक्त 65 कि.ग्रा. यूरिया बीजाई के 30–35 दिन बाद तथा 65 कि.ग्रा. यूरिया बीजाई के 60–65 दिन बाद छिड़काव द्वारा डालते हैं।

सिंचाई प्रबंधन

हल्की सिंचाई व उचित जल निकास अच्छी फसल के लिए आवश्यक है। बीजाई से पहले एक सिंचाई करके खेत तैयार करना चाहिए। डोल/मेड़ों पर बीज बोने के बाद सिंचाई करते हैं। बीज खेत में समय–समय पर सिंचाई करने की आवश्यकता होती है विशेषकर पुष्पन तथा बीज विकास के समय खेत में उचित नमी बनाए रखना आवश्यक होता है।

खरपतवार प्रबंधन

भिण्डी की अच्छी बीज फसल लेने के लिए बुआई के प्रारंभिक 25–30 दिन तक प्रभावी खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। इसके लिए 2–3 बार निराई–गुड़ाई करते है। अगर किसी कारण से निराई–गुड़ाई संभव ना हो तो खरपतवार नियंत्रण हेतु बुआई के तुरंत बाद पैन्डीमिथालीन 1–1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को प्रति हैक्टर की दर छिड़काव द्वारा डालते हैं।

अवांछनीय पौधों को निकालना

अवांछनीय पौधें निकालने वाले व्यक्ति को किस्म के लक्षणों का भली–भांति ज्ञान होना चाहिए जिससे की वह अवांछनीय पौधों को पौधें की बढ़वार, पत्तों व फूलों के रंग–रूप, फूलों के खिलने का समय आदि के आधार पर पहचान सके।

भिण्डी में तीन अवस्थाओं पर अवांछनीय पौधों को निकालने का कार्य करना चाहिए। वानस्पतिक अवस्था के दौरान शाकीय वृद्धि लक्षणों में भिन्नता युक्त पौधों तथा पीत शिरा मौजेक विषाणु रोग से ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। पुष्पन की अवस्था में अवांछनीय पौधों को उनकी उंचाई, शाखाओं की संख्या, पत्तियों का कटाव, रंग, आकार व उन पर रंजकों के धब्बे, गांठों के बीच की दूरी के आधार पर निकाला जाता है। पुष्पन के बाद तथा कटाई से पूर्व की अवस्था पर पौधों को फलों के आकार, रुप व रंग आदि के आधार पर तथा विषाणु रोग से ग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट करना चाहिए। पीत शिरा विषाणु रोग के लक्षण यदि 4–5 फलों के बाद आएं तो ऐसे पौधों से प्रमाणित कोटि का बीज ले लें। आधार कोटि के बीज के लिए लगभग 60 प्रतिशत फलन होने तक पीत शिरा विषाणु रोग ग्रसित पौधे निकालते रहें।

फलों की तुड़ाई व बीज निकालना

बीजाई के लगभग 40–45 दिन बाद पौधों में फूल आने शुरु हो जाते हैं। 30–40 दिन का समय फूल से फल बनने, पकने व सुखने में लग जाता है। भिण्डी में सभी फल एक साथ नहीं पकते अतः उन्हीं फलों की कटाई करनी चाहिए जो पक कर पूरी तरह सुख जाएं तथा जिनके किनारों पर दरार दिखाई देने लगे। फलों को चिटकने से पहले 2–3 बार में तोड़ा जाता है। कटाई के बाद फलों को तिरपाल या पक्के फर्श पर फैलाकर सुखाना चाहिए। अच्छी तरह सुखाए गए फलों को डंडों से पीट कर या टैक्टर द्वारा गहाई करके बीजों को निकालते हैं। बीजों से फल के अवशेषों, तिनकों, डंठलों आदि को अलग कर लेते हैं। यांत्रिक प्रसंस्करण सुविधा ना होने की स्थिति में सफाई के लिए बीज को 2–3 मिनट तक पानी में डुबोना चाहिए तथा नीचे बैठे हुए भारी बीजों को निथारकर सुखाना चाहिए।

सारणी–1: भिण्डी के आधार एवं प्रमाणित बीज हेतु मानक स्तर

बीज मानक	मानक स्तर	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	99 प्रतिशत	98 प्रतिशत
निष्क्रिय पदार्थ (अधिकतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किलो	10 प्रति किलो
खरपतवार के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किलो	10 प्रति किलो
अंकुरण क्षमता (न्यूनतम)	65 प्रतिशत	65 प्रतिशत
नमी (अधिकतम) सामान्य पैकिंग	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत
नमी अवरोधी पैकिंग	6 प्रतिशत	6 प्रतिशत

भण्डारण

सुखाने के बाद बीज को फफूंदीनाशक दवा से उपचारित करना चाहिए। साफ बीज को अगर टीन के डिब्बों, एल्यूमीनियम फॉयल या मोटे प्लास्टिक के लिफाफे में भरना हो तो बीज को 6 प्रतिशत नमी तक सुखाना चाहिए। सुरक्षित भंडारण हेतु बीज को 18–20° सें. तापक्रम तथा 30–40 प्रतिशत आपेक्षित आद्रर्ता पर रखना चाहिए।

बीज उपज एवं मानक

अच्छी बीज फसल से प्रति हैक्टर 12–15 कुंतल बीज प्राप्त किया जा सकता है।

संकर बीज उत्पादन

भिण्डी में संकर बीज उत्पादन हेतु तीन अवयव है। सत्य आनुवंशिकी वाले पितरों (पैरेन्ट्स) का चुनाव, नियंत्रित परासेचन तथा बीज निकालना। पितरों के चयन पर संकर की सफलता निर्भर होती है। बीज इकट्ठा किये जाने वाले पितर पर सम्पुष्ट कली से शाम को नर भाग (पुंकेसर) निकाल कर लिफाफे से ढक देते हैं और अगली सुबह (6–10 बजे के बीच) नर पितर के ढके हुए पुष्प से पराग लेकर मादा पितर पर लगा लिफाफा खोल कर उसके पराग केशर पर लगाकर लिफाफे से ढक देते हैं।

कालांतर में इस परागित पुष्प से बनने वाला फल व उससे मिलने वाला बीज संकर बीज है। अभी तक यह कार्य हाथ से ही किया जाता है जिससे समय तथा धन का व्यय अधिक होता है। पीतशिरा रोग के लिए अवरोधी गुणों का समावेश संकर प्रजातियों में कर के इसका लाभ लिया जा रहा है।

प्रमुख कीट एवं रोग

तना एवं फल छेदक कीट

वयस्क सूंडी कोमल तने तथा फल में सुराख बनाकर अंदर घुस जाती है। तना मुरझा जाता है एवं पौधे का शीर्ष भाग सुख जाता है। जबकि ग्रसित फल सही आकार नहीं ले पाता है और टेढ़ा हो जाता है। प्रभावित फल जो पौधों पर रह जाते हैं सब्जी के लायक नहीं रहते। बरसात वाली फसल इस कीट से ज्यादा प्रभावित होती है। साइपरमेथ्रीन 10 ई.सी. का 0.5 मि.ली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट का नियंत्रण सम्भव है।

हरा फुदका/जैसिड

हरा फुदका भिण्डी के अलावा कई अन्य फसलों को हानि पहुँचाता है, परन्तु भिण्डी और कपास की फसलों को इस कीट से अधिक नुकसान होता है। यह पत्ती की निचली सतह पर बड़ी संख्या में पाया जाता है। शिशु तथा प्रौढ़ दोनों पत्ती की निचली सतह से रस चूसते हैं और साथ ही एक प्रकार का जहरीला पदार्थ अपने लार के साथ पत्ती के अन्दर छोड़ते हैं जिसके फलस्वरुप पत्ती किनारे से पीली होकर सिकुड़ती है तथा प्यालानुमा आकर बनाती है तथा धीरे–धीरे पत्ती मुरझाकर सूख जाती है। वातावरण में

अधिक नमी एंव अधिक तापक्रम से इनकी संख्या में भारी वृद्धि होती है। भिण्डी की पैदावार बहुत घट जाती है। गाउचो 70 डब्ल्यू एस का 2.5–3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित बीज बोने से इस कीट का प्रकोप 40–45 दिनों तक नहीं होता है। 35 दिन पुरानी फसल पर ईमामेक्टिन बेन्जोएट 6 ग्रा. प्रति 10 लीटर पानी या बाइफेन्थ्रिन 0.5–1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर 1–2 छिड़काव करने से 30 दिन तक इस कीट का प्रकोप नहीं होता।

भिण्डी की लाल माइट

गर्मी वाली भिण्डी में यह बहुत हानिकारक होती है। शिशु तथा प्रौढ़ पत्तियों की निचली सतह पर रस चूसते हैं और वहीं सिल्कनुमा जाल से ढकी रहती हैं । इनके रस चूसने से पत्तियो की ऊपरी सतह पर पीली चित्तियाँ उभर आती हैं और धीरे–धीरे पत्तियाँ लाल होकर सुख जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु डायकोफाल 18.5 ई.सी. का 2.5 मि.ली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। समय–समय पर पानी की फुहार करने से जाल नहीं बन पाती हैं एवं पत्तियों पर जमी धूल हट जाती है इससे इनकी संख्या कम हो जाती है।

काला धब्बा

पत्तों पर इस रोग का प्रभाव बरसात की फसल में सितम्बर के अन्तिम सप्ताह से शुरू होता है एवं कम तापक्रम व अधिक आर्द्रता के साथ बढ़ता जाता है। इसके नियंत्रण हेतु ट्राइएडिमीफोन या बिट्रेटीनाल 0.5 ग्राम अथवा थायोफनेट–मिथाइल या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम लीटर पानी में घोलकर 8 से 10 दिन के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करें।

पीत शिरा मोजैक

यह रोग विषाणु द्वारा फैलता है जिसके कारण पौधों की बढ़ोत्तरी रूक जाती है। पत्तियां की शिराएं पीली पड़ जाती है। पत्तियों पर छोटे–छोटे पीले रंग के चितकबरे धब्बे बन जाते हैं। जब तने और फलों का रंग पीला पड़ जाए तो समझें कि रोग का प्रकोप ज्यादा है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे तक पहुँचता है और धीरे–धीरे पूरी फसल में यह रोग फैल जाता है। इसके नियंत्रण हेतु बीज को इमिडाक्लोप्रिड 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके लगाना चाहिए। अन्तर प्रवाही कीटनाशी दवा मेटासिस्टॉक्स या कोन्फीडोर 1.5 मिली प्रति लीटर पानी में घोल कर 15 दिन के अन्तराल पर 3 बार छिड़काव करें। इस रोग के लिए बहुत सारी अवरोधी किस्में उपलब्ध है जिनके प्रयोग से यह रोग आसानी से रोका जा सकता है।

मुर्गीपालन के जरिए कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त आय

राकेश कुमार, अमनदीप कौर, रेखा, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, कर्णम वेंकटेश, मामृथा एच एम एवं अनिता मीणा
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एंव जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)

कृषि क्षेत्र में रोजगार के कई अवसर उपलब्ध हैं। बदलाव के इस दौर में कृषि क्षेत्र भी नवाचारों एवं प्रविधियों के असर से अछूता नहीं है। कृषि वैज्ञानिकों तथा किसानों की अनवरत कोशिश से हरित क्रांति सफल हुई जिससे भारत खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बना। लेकिन बढ़ती आबादी और कृषि योग्य भूमि की कमी ने नई चुनौतियों को पैदा कर दिया है। वर्तमान में कृषि क्षेत्र की सबसे बड़ी चुनौती उत्पादकता में लगातार आ रही गिरावट है और इस गिरावट के चलते कृषि लाभ का सौदा नहीं बन पा रही है। जल जोकि कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है, की कमी से कृषि उत्पादकता में कमी आ रही है। अतः जलवायु परिवर्तन को देखते हुए किसानों को परम्परागत कृषि के साथ–साथ, कृषि के दूसरे घटकों का समावेश कर कृषि से होने वाली आमदनी की कटौती की भरपाई करनी चाहिए। इस तरह से ग्रामीण भारत के शिक्षित बेरोजगार युवकों को खेती की ओर आकर्षित किया जा सकता है। जिससे रोजगार के अवसरों के साथ–साथ, कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि होगी। परम्परागत खेती यानि खाद्य फसलों की खेती करते हुए बागवानी में फल व सब्जी उत्पादन, पशुपालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन तथा मुर्गीपालन को अपना कर कृषि में समेकित प्रणाली को अपनाया जा सकता है। फसल उत्पादन से भिन्न लेकिन खेती से जुड़े ये विभिन्न घटक आज कृषि क्षेत्र की व्यवसायिक क्षमता को साबित करने में सफल हो रहे है। समय की मांग को देखते हुए बहुत से किसान कृषि क्षेत्र के दूसरे घटकों का अपनी परम्परागत खेती में समावेश कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने में कामयाब हुए हैं।

परम्परागत खेती के साथ मुर्गीपालन कर बहुत से किसान आज अच्छी आमदनी प्राप्त कर रहे हैं। मुर्गीपालन, कृषि क्षेत्र का एक ऐसा व्सवसाय है जिसमें थोड़ी पूंजी और थोड़ी मेहनत कर अच्छा मुनाफा लिया जा सकता है। खेती पर मौसम की मार पड़ने की स्थिति में भी मुर्गीपालन से एक सुनिश्चित आय प्राप्त कर किसान अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण करने में सक्षम बन सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे स्तर पर मुर्गी पालन से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है साथ ही मुर्गी का मल (विष्ठा) का उपयोग बटन मशरूम उत्पादन हेतु कम्पोस्ट बनाने तथा खाद के

रूप में खेतो में प्रयोग से फसल की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में केंद्रीय पक्षी अनुसन्धान संस्थान, इज्जतनगर बरेली से विकसित उन्नत प्रजाति श्यामा, निर्भीक, उपकारी तथा हितकारी का प्रयोग करें। इसके पालन में आने वाले व्यय की भरपाई पांचवे महीने में मुर्गा बेचकर हो जाती है। इसके उपरान्त मुर्गी से 12–15 माह तक अंडा उत्पादन से अच्छी कमाई प्राप्त होती है। वर्मी कम्पोस्ट बनाते समय प्राप्त हुए अधिक केचुओं को मुर्गों हेतु खाने को देने से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। इसी प्रकार एजोला का भी उपयोग मुर्गों द्वारा किया जाता है।

मुर्गीपालन से अच्छी आमदनी के लिए अच्छी प्रजातियों का चयन करना आवश्यक है। ये प्रजातियां ऐसी होनी चाहिए जो कम समय में परिपक्व हो जाए तथा विभिन्न बिमारियों से लड़ने में सक्षम हो अर्थात इनमें विभिन्न बिमारियों के लिए प्रतिरोधक क्षमता हो। मुर्गियों को श्वास, पाचन एवं त्वचा से संबंधित रोग होती है। रानीखेत रोग, मुर्गी पालन व्यवसाय में महामारी की भूमिका अदा करती है। अतः इस रोग के प्रबंधन पर मुर्गीपालकों को विशेष ध्यान देना चाहिए।

मुर्गीपालन का व्यवसाय करने वाले किसानों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कम समय में अधिक मुनाफा कमाने के लिए चूजों को उच्च गुणवत्ता का आहार दें। ये आहार प्रोटीन, विटामीन, खनिज लवण इत्यादि के मिश्रण से भरपूर होना चाहिए। मुर्गी के चूजे बड़े नाजुक होते हैं इसलिए उनके रख–रखाव पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए प्रतिदिन मुर्गीफार्म की साफ सफाई, पीने के पानी तथा उच्च गुणवत्ता के आहार की उपलब्धता की व्यवस्था होनी चाहिए। चूजों को बिमारियों से बचाने के उपाय भी तत्परता से करने चाहिए। इसके लिए समय–समय पर उनकी जांच तथा टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए तथा उनके विकास के विभिन्न स्तरों पर दवाई देते रहनी चाहिए ताकि उन्हें प्राणघातक बिमारियों के प्रभाव से दूर रखा जा सके।

मुर्गीपालन से निकलने वाली खाद का प्रयोग खेत में करने से अनाज, सब्जी, उद्यानों, फसलों का अधिक उत्पादन होता है क्योंकि इसमें अधिक पोषक तत्व मौजूद होते हैं जो भूमि की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाते हैं। करीब 40 मुर्गियों के विष्ठा से उतना ही पोषक तत्त्व प्राप्त होता है जितना कि एक गाय के गोबर से प्राप्त होता है। इस खाद का उपयोग करने से रसायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम हो जाती है। इस तरह रसायनिक उर्वरकों पर होने वाले अतिरिक्त खर्च को भी बचाया जा सकता है। इसके साथ–साथ भूमि प्रदूषण में भी कमी आती है।

अतः मुर्गीपालन को खेती के साथ–साथ अपनाकर, किसान अपनी आर्थिक आय में बढ़ोत्तरी कर सकता है। किसानों को मुर्गीपालन से जहां नकदी प्राप्ति होती है वही मुर्गीपालन की खाद प्रयोग कर कृषि उत्पाद भी गुणवत्ता युक्त प्राप्त होते हैं।

खेती–किसानी में मेरे अनुभव का सफर

महेन्द्र सिंह कटियार, ग्रामः सरायप्रयाग, जनपदः कन्नौज (उ.प्र.)

1. वर्ष 2014 में अपने 0.75 एकड़ क्षेत्रफल में हरी खाद्य के रूप में तिली की बुआई की और माह अगस्त के आखिरी में हैरो द्वारा पलटवा दी। इस प्रक्रिया से हमारे खेतों की मिट्टी में उपज देने की क्षमता में मजबूती आयी। हैरो से इस हरी खाद्य को पलटवाने के बाद कल्टीवेटर से दोबारा जुताई करवा देने के उपरान्त खेतों को पड़ा रहने दिया।
2. गेहूँ बुआई से पहले समस्त खेतों का समतलीकरण ट्रैक्टर से चलाये जाने वाले लेवलर द्वारा करवा दिया और फिर देशी हल से पाटा लगवा दिया। इस तरह से लेवलर द्वारा भूमि एक सी समतल हो जाने पर आगे लगाये जाने वाले पानी में सुविधा हुयी और पानी सम्पूर्ण भूमि एवं क्यारियों में एक जैसा लगा।
3. घट रही उर्वरा शक्ति, दम तोड़ रही मिट्टी में उत्पादकता बढ़ाने के लिए मिट्टी का परीक्षण करवाया और परीक्षण के आये हुए नतीजों के अनुसार ही उर्वरकों का प्रयोग किया।
4. भूमि शोधन

   भूमि शोधन के लिए मैंने उपरोक्त खेतों के रकबे को ट्राइकोडर्मा से 1 कि.ग्रा. प्रति एकड़ ट्राइकोडर्मा व 40 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद मिलवाकर अलग–अलग दो ढेरियों में पेंड़ की छाया में रखकर लगातार 6 दिनों तक ऊपर से हल्का–हल्का पानी का छिड़काव किया। गेहूँ बुआई के पूर्व इस मिश्रण के ऊपर सफेद फंगस आने पर फावड़े द्वारा मिलावा दिया और शाम को सम्पूर्ण खेतों में एक जैसा बिखेर दिया। इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के बाद पूरे खेतों की जुताई कल्टीवेटर के द्वारा करने के उपरान्त बैलों के द्वारा देशी पटेला आड़ा–बेड़ा लगवा दिया ताकि गेहूँ समतल हो जाए।
5. बीज शोधन

   मैंने अपने समस्त गेहूँ के बीजों को पहले जैव कवकनाशी (ट्राइकोडर्मा) मित्र फफूंद 4 या 5 ग्राम लगभग 1 कि.ग्रा. प्रति की दर से शोधित किया और डेढ़ घण्टे तक छाया में सूखने दिया। मेरा ट्राइकोडर्मा लेने का श्रोत बायोकन्ट्रोल लैब, पादप रोग विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर रहा। इसके प्रयोग से बीज जनित रोगों से छुटकारा मिल गया। पुनः सम्पूर्ण गेहूँ बीज को पी.एस. बी. कल्चर के एक पैकेट को 10 कि.ग्रा. बीज के अनुसार भी उपचारित किया।
6. उपरोक्त क्रम सं. 3 पर भूमि शोधन में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा बतलाये गये प्रयोग के साथ–साथ निम्न क्रियाएं भी प्रयोग में लायीं। जिससे उत्पादन में बहुत ही अधिक लाभकारी परिणाम प्राप्त हुये।

(क) पी.एस.बी. कल्चर को 3 कि.ग्रा. प्रति एकड़ के हिसाब से मिट्टी में मिलवाकर सायंकाल फैलवा दिया। इसी क्रम के उपरान्त उपरोक्त दर से एजोटोवैक्टर की मात्रा का भी प्रयोग किया। पी.एस.बी. कल्चर के द्वारा खेतों में डाली गयी सुपर फॉस्फेट घुलनशील होकर पूरा–पूरा फॉस्फेट तत्व पौधों को उपलब्ध कराने का काम करता है। यही नहीं घुलनशील होने के बाद डाली गयी पूरी फॉस्फेट तत्व पौधों को मिल जाती है।

(ख) एजोटोबैक्टर खेत में डाली हुई नाइट्रोजन को घुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध करवा देता है। जिसका प्रभाव अधिक किल्ले निकलने एवं अधिक बालियों के होने के कारण, मैंने अपने खेतों पर अधिक पैदावार का अनुभव किया।

7. समय से बुआई

   समय से बीज की बिजाई अपना एक महत्वपूर्ण योगदान रखती है और इसका अधिक से अधिक लाभ मिलता है। जनपद है इसलिए सिंचित अवस्था में विलम्ब से बोये जाने वाले गेहूँ प्रजाति (हलना) के बीजों को मैंने चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर से प्राप्त किया। गेहूँ की बुआई मैंने सीड ड्रिल द्वारा संस्तुत खाद के साथ करवा दी।
8. उचित जल प्रबन्धन

   गेहूँ की फसल माह अप्रैल तक तैयार होती है। इसलिए पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है। यही नहीं पानी लगाने का समय भी निश्चित है। यदि पानी समय से नहीं लगाया गया तो उत्पादन पर विपरीत प्रभाव देखने को मिलता है। यह फसल 90 से 95 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसलिए समय से पानी लगा कर खेत में नमी को बनाए रखना अति आवश्यक

होता है। इसलिए पानी को अधिक न लगा कर साथ–साथ आखीर में लगाये गये पानी को कम मात्रा में लगवाना पड़ा जिससे कि हवा के झोंको से गेंहूँ गिर न जाये।

पहली सिंचाई– 21 दिन बाद (ताजमूल अवस्था)
दूसरी सिंचाई– 40 से 45 दिन बाद (किल्ले के समय)
तीसरी सिंचाई– 65 दिन बाद (गांठे बनते समय)
चौथी सिंचाई– 85 दिन बाद (पुष्पावस्था)
पांचवी सिंचाई– 105 दिन बाद (दुग्धावस्था)

9. खरपतवार नियंत्रण

चूंकि गेहूँ में पहली सिंचाई के उपरान्त खरपतवार का जमाव प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए इसके प्रभावशाली नियंत्रण एवं रोकथाम के लिए पानी लगने के 10 या 15 दिन बाद आइसोप्रोट्रॉन 75 प्रतिशत का छिड़काव करवाया। इससे 3 दिन बाद खरपतवार नियंत्रण के नतीजे आने लगे।

5 दिन बाद 8 कि0ग्रा0 प्रति बीघा की दर से यूरिया को खेतों में फैलवा दिया।

10. जैव फार्मूलेशन एवं पादप रोग नियंत्रण

(क) खरपतवार की दवा डालने के 10–12 दिनों के उपरान्त द्वितीय सिंचाई के पूर्व ट्राईकोडर्मा का 200 ग्रा0 प्रति एकड़ के हिसाब से घोल बना कर गेहूँ के खेतों पर कल्ले निकलते समय छिड़कवा दिया।

(ख) ट्राईकोडर्मा का दूसरा छिड़काव उपरोक्त डाली गयी मात्रानुसार घुआँ में बाली आने पर छिड़कवा दिया।

इन दोनों प्रक्रियाओं का प्रभाव अधिक कल्ले निकलने व बालियां स्वस्थ्य रूप से आयीं जिसका अन्त में अधिक उत्पादन के रूप में प्राप्त हुआ। साथ ही छिड़काव से फसल में किसी प्रकार की बीमारी से भी नहीं प्रकोपित हुई।

(ग) इस प्रक्रिया के साथ–साथ कीट नियंत्रण के लिए नीम के तेल का दो बार छिड़काव भी किया।

नोट– उपरोक्त जैव फार्मूलेशन को मैंने पूसा संस्थान, नई दिल्ली में आत्मा योजना के विजिट में वैज्ञानिकों से सीखा जो कि बहुत अधिक लाभकारी साबित हुआ।

11. कटाई मढ़ाई एवं भण्डारण :

फसल पकने के बाद दोनों तरह के बोये गये गेहूँ को अलग–अलग कटवाने के बाद 2 दिन तक खेतों पर सूखने दिया गया। उसके बाद इकट्ठा कर थ्रेसर को साफ करने के उपरान्त दोनों ही प्रजातियों को अलग–अलग कटाई करवाया। इस प्रकार दोनों ही अलग–अलग प्रजातियों के गेहूँ को धूप में सुखाने के बाद सल्फास दवा के साथ अलग–अलग बोरों में बंद कर के रख दिया।

भारत सरकार ने इस वर्ष फाउण्डेशन गेहूँ बीज का मूल्य रू0 37.50/– निर्धारित किया है। इसी मूल्य के आस–पास मैं भी अपने गेहूँ को विक्रय करने की उम्मीद करता हूँ। जैसा कि निम्नानुसार आंकलन किया।

उत्पादन तालिका

क्र. सं.	गेहूँ की किस्म	बोया गया क्षेत्रफल	कुल उत्पादन
1.	गेहूँ के 9423 उन्नत हलना	3 एकड़	67.05 कुंतल
2.	गेहूँ के 0424 गोल्डेन हलना	2 बीघा	8 कुंतल

उपरोक्त उत्पादन एवं विक्रय मूल्य तालिका से यह स्पष्ट है कि जैविक विधियां अपनाये जाने से गेहूँ का अधिक उत्पादन हुआ। जो कि शायद आज के समय में रासायनिक खाद्यों के अधिक प्रयोगों से उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता। यही नहीं इस अधिक उत्पादन से मुझे अधिक आय भी प्राप्त करने का रास्ता भी साफ हुआ।

अतः मैं अपनी तरफ से समस्त किसान भाईयों से आग्रह करना चाहूँगा कि गेहूँ की बुआई जैविक विधियों का प्रयोग एवं अनुशरण अधिक से अधिक करके उत्पादन अच्छा प्राप्त करने का मौका हाथ से न जाने दें। साथ–साथ स्वयं की अपनी आर्थिक स्थिति में भी वृद्धि करें।

क्र.सं.	गेहूँ की किस्म	उत्पादन के बाद चलना सफाई के बाद शुद्ध बीज प्राप्त		विक्रय मूल्य	विक्रय से प्राप्त कुल आय
1.	गेहूँ के 9423 उन्नत हलना	67.5 कु0	60 कु0	32 रू0	1,92,000/–रू0
2.	गेहूँ के 0424 गोल्डेन हलना	8 कु0	7 कु0	32 रू0	22,000/–रू0
कुल				शुद्ध आय	2,14,000/–रू0

मेरा खेत–मेरा अनुभव

आनंद कुमार ठाकुर, पटसारा, मुजफ्फरपुर, बिहार

फसल का आधार मिट्टी है। अतः सबसे पहले फसल लगाने में मिट्टी का चयन करना चाहिए। मैंने जीरो टिलेज से गेहूँ की बुआई किया, गेहूँ बोई करने पर जुताई के साथ–साथ सिंचाई में भी बचत हुई है। इस विधि से समय के साथ काफी लाभ हुआ है। मुझे लगता है कि अभी किसान का पेट तो भर पाता है परन्तु उसकी जेब नहीं भरती है। इसके कई कारणों में से एक प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन है।

पर्यावरण संरक्षण हेतू सुझाव :–

- हम सभी को जलवायु के लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयास करना चाहिए, हम छोटे–छोटे प्रयासों से ही अपने जलवायु सरंक्षण को बचा सकते हैं।
- सिंचाई में पानी को बचाएं, पानी जितना जरुरी हो उतना ही प्रयोग करें।
- पर्यावरण हितैषी वस्तुओं का उपयोग करें।
- हर वर्ष एक नया–पौधा अपने आवास या खेत खलिहान में लगाये तथा उसकी देखभाल करे। कहावत है:

  ''वृक्षारोपन धर्म महान,
  एक वृक्ष दस पुत्र समान।
  देश की धरती करे पुकार,
  बच्चे कम हो वृक्ष हजार।
  वृक्ष से जल, जल से अन्न,
  अन्न से ही जीवन है।
  जब होगा वृक्षों का परिवेश,
  प्रगति करेगा भारत देश।''

- कुछ–कुछ पैदल चले, साईकिल का प्रयोग करे, ईंधन की बचत करें।
- सीमित भूमि में अधिक लाभ लेने के लिए कृषि वैज्ञानिकों की सलाह लें और उस पर अमल करें।
- किसान–वैज्ञानिकों के अनुभवों का आदान–प्रदान कृषि के लिए सदैव लाभकारी होता है।
- बदलते मौसम के संदर्भ में खेती के उन्नत एवं समुचित विधियों को अपनाने के लिए किसानों का प्रशिक्षण अत्यंत आवश्यक है।
- बदलते मौसम में उत्पादन हेतु नई–नई प्रजातियों के बारे में जानकारी हासिल होना आवश्यक है।
- किसी भी फसल में कीटनाशकों का प्रयोग तब करें, जब आपको लगे कि कीड़ा 10% से ऊपर नुकसान कर रहा है। क्योंकि 10% तक कीड़ा लगने से ज्यादा हानि नहीं होती है, कीड़ा लग भी जाए तो पहले हल्के कीटनाशक का प्रयोग करें व वैज्ञानिकों की सलाह भी लें।
- फसल–चक्र अपनाना अत्यंत आवश्यक है।
- गेहूँ, जिस खेत में नमी कम हो, तो उस फसल में सिंचाई 16–18 दिन पर ही करें।
- काफी तेज हवा में सिंचाई न करें।
- सिंचाई करते समय ध्यान दें खेत में पानी कम भरे और 10–12 घंटा से अधिक समय तक खेत में पानी भरा न रहे।
- किसी भी फसल की बुआई समय पर कर देने से उत्पादन वृद्धि के साथ–साथ बचत भी होती है।
- कृषि में मार्गदर्शन के लिए हमेशा कृषि वैज्ञानिकों व कृषि अधिकारियों के संपर्क में रहें।
- वर्षा जल संरक्षण सबसे बड़ी आवश्यकता है। बदलते मौसम के अध्ययनों से ये साबित हो चुका है कि गेहूँ की फसल में अगर तापमान में थोड़ा भी वृद्धि होता है

तो उसके उत्पादन में बहुत परिवर्तन कमी आ जाती है। गेहूँ की बढ़त में तापमान की बड़ी अहम् भूमिका है क्योंकि बिहार की जलवायु तथा मिट्टी गेहूँ की खेती के लिए काफी उपयुक्त है, लेकिन अभी बिहार गेहूँ की उत्पादन में सुप्त अवस्था में है। बिहार के लिए उपयुक्त प्रभेद; एचडी 2733, के 307, पीबीडब्ल्यू 343, पीबीडब्ल्यू 502, डीबीडब्ल्यू 39, राज, एचडी 2824, अगेती बुआई एवं पिछेती बुआई हेतू सिर्फ पीबीडब्ल्यू 373 प्रभेद है और ये सब आसानी से कृषि विभाग से मिल जाता है। इसमें से कुछ प्रभेद समय से बोई करने पर उत्पादन में काफी वृद्धि होती है लेकिन महत्वपूर्ण बात हे कि चपाती हेतु गेहूँ प्रभेद के 307, पीबीडब्ल्यू 343, यूपी 262, 502 इत्यादि बहुत ही अच्छा है।

- एक आम किसान के लिए अभी के समय में रसायनिक उर्वरक की अधिक कीमत की वजह से इसका इस्तेमाल कर पानी काफी मुश्किल है, लेकिन जो ज्यादा उर्वरक प्रयोग करते है उत्पादन में वृद्धि तो होती है लेकिन उतना ही खरपतवार काफी वृद्धि कर देती है। ज्यादा से ज्यादा किसान भाई हरी खाद, ढैंचा, जैविक खाद वगैरह का प्रयोग में लाना चाहिए।

मैं कहता हूँ आने वाली पीढ़ी के बारे में भी सोचना चाहिए ताकि आज हम गर्व से कहते हैं हमारा देश कृषि प्रधान देश है वैसे हमारी पीढ़ी भी कह सके। अगर इसी तरह रसायनिक खाद का प्रयोग होता रहा तो हमारा आने वाला पीढ़ी स्वंय महसूस करेगा जो ये क्या हो गया। इसलिए मैं किसान भाई को शुभ संदेश दूंगा जो किसान के लिए मिट्टी ही सोना है एवं बुढ़ापे का लाठी मिट्टी ही है। मिट्टी में जान डाले, मिट्टी को निभायें। हमें सबसे जरुरी है कि हमे अपनी खेती और अपने जीवन के तरीकों को बदलना है, कुदरती खेती एवं भरोसे लायक विकल्प है जो हम सामान्य कीमतों पर पर्याप्त उत्पादन के साथ पेट भरकर संपूर्ण भारत को दे सकती है।

- इसलिए कहा गया है

प्रभु के साथ जीना है, प्रभु से लड़कर नहीं

मिट्टी किसी वैज्ञानिक, किसान की देन नहीं है।

मिट्टी को प्रकृति ने बनाया है,

भोजन पौधा–मानव–देवता, दानव इत्यादि सब मिट्टी से उगकर अन्न ग्रहण करते हैं।

राजभाषा खण्ड

ज्ञान-विज्ञान के किसी भी विषय की सक्षम अभिव्यक्ति हिन्दी में सर्वथा संभव है और अंग्रेजी पर आश्रित रहने की धारणा एकदम निरर्थक है।

डॉ. फादर कामिल बुल्के

राजभाषा सम्मान समारोह
भाकृअनुप
ICAR

हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट

वर्ष 2015–16 के दौरान भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल के हिन्दी अनुभाग द्वारा अनेको कार्यक्रम आयोजित किये गए जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1 इस संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चार तिमाही बैठकें (10.06.2015, 02.09.2015 तथा 09.12.2015) आयोजित की गई, जिनमें संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी की प्रगति पर चर्चा की गई। संस्थान की कार्यान्वयन समिति द्वारा सुझाये गये अधिकतम मुद्दों पर प्रगति सराहनीय रही।

2 राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी कार्यों की समीक्षा एवं निरीक्षण

भारत सरकार के गृह मंत्रालय, रा.भा.विभाग द्वारा 23 जून, 2015 को राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी कार्यों की समीक्षा एवं निरीक्षण किया गया।

3 राजभाषा उत्सव

संस्थान में राजभाषा उत्सव (14–28 सितंबर, 2015) का आयोजन किया गया। इस दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया। विजेताओं को ''राजभाषा सम्मान समारोह'' के अवसर पर दिनांक 30.09.2015 को मुख्य अतिथि के रुप में आए डॉ. डी. के. शर्मा, निदेशक, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा सम्मानित किया गया। इसी क्रम में दिनांक 29.09.2015 को नराकास स्तर पर ''गीत गायन'' प्रतियोगिता को आयोजन किया गया जिसमें सभी केन्द्र सरकार के कार्यालय, राष्ट्रीयकृत बैंक, उपक्रम, निगम, विश्वविद्यालय एवं संस्थान के अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया।

क्र.स	प्रतियोगिता	श्रेणी/वर्ग	विजेता	पुरस्कार
1	आशुभाषण	वैज्ञानिक	डॉ. रतन तिवारी	प्रथम पुरस्कार
			डॉ. सी.एन. मिश्रा	द्वितीय पुरस्कार
			डॉ. विष्णु गोयल	तृतीय पुरस्कार
			डॉ. कर्णम वेंकटेश	प्रोत्साहन पुरस्कार
2	भाषण	तकनीकी	श्री राम कुमार	प्रथम पुरस्कार
			श्रीमति सुनीता जसवाल	द्वितीय पुरस्कार
			श्री जे.के. पाण्डेय	तृतीय पुरस्कार
			श्री ओ.पी. ढिल्लो	प्रोत्साहन पुरस्कार
			श्री राजेन्द्र कुमार	प्रोत्साहन पुरस्कार
3	खुला मंच	शोध सहायक	श्री गिरीश पाण्डेय	प्रथम पुरस्कार
			डॉ. यशपाल सिंह	द्वितीय पुरस्कार
			सुश्री भारती अनेजा	तृतीय पुरस्कार
			श्री पंकज कुमार	प्रोत्साहन पुरस्कार
4	कविता पाठ	सभी वर्ग	श्री पंकज कुमार	प्रथम पुरस्कार
			श्री राजेन्द्र सिंह तोमर	द्वितीय पुरस्कार
			सुश्री भारती अनेजा	तृतीय पुरस्कार
			श्री राम कुमार	प्रोत्साहन पुरस्कार

5	अंताक्षरी	सभी वर्ग	सर्वश्री सुनील कुमार, गौरव, अश्वनी कुमार, देवेन्द्र	प्रथम पुरस्कार
			सुश्री भारती अनेजा, श्री पलविन्द्र सिंह, सुश्री मनु सांगवान, श्रीमती अमीता	द्वितीय पुरस्कार
			श्री रामकुमार, सुश्री रजनी, श्री अनिल, नरेन्द्र,	तृतीय पुरस्कार
			डॉ. पूनम जसरोटिया, डॉ. रिंकी, डॉ. अकिता झा, श्री जे.के. पाण्डेय	प्रोत्साहन पुरस्कार
6	श्रुतलेख	प्रशासनिक	श्री सुनील कुमार	प्रथम पुरस्कार
			श्रीमती ज्ञान अनेजा	द्वितीय पुरस्कार
			श्री कृष्ण पाल	तृतीय पुरस्कार
			श्रीमती प्रोमिला वर्मा	प्रोत्साहन पुरस्कार
7	सुलेख	कुशल सहायक कर्मचारी	श्रीमती सुमन थापा	प्रथम पुरस्कार
			श्री हरिन्द्र कुमार	द्वितीय पुरस्कार
			श्री यशवंत सिंह	तृतीय पुरस्कार
			श्री बीरुराम	प्रोत्साहन पुरस्कार
8	गीत गायन	सभी वर्ग	श्रीमती संगीता	प्रथम पुरस्कार
			डॉ. रतन तिवारी	द्वितीय पुरस्कार
			डॉ. सत्यवीर सिंह	तृतीय पुरस्कार
			श्री प्रवीण कुमार	प्रोत्साहन पुरस्कार

4 गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा के छठे अंक में प्रकाशित **''गेहूँ की सतही बुआईः लाभकारी एवं पर्यावरण हितैषी तकनीक''**, **''जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में खेती''** तथा **''रबी फसलों में समन्वित खरपतवार प्रबंधन''** लेखों को उत्कृष्ट लेख पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

5 किसानों के लिए एक छःमाही पत्रिका **गेहूँ एवं जौ संदेश** की शुरुआत वर्ष 2012 के दौरान की गई जिसका समयबद्ध प्रकाशन किया जा रहा है।

कार्यशालाएं

- **''विमर्श'' प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण शिक्षा''** विषय पर दिनांक 04.06.2015 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।
- **''सड़क सुरक्षा में शैक्षणिक संस्थाओं की भूमिका''** विषय पर दिनांक 24.09.2015 को कार्यशाला का आयोजन किया गया।

- **''शाश्वत यौगिक खेती''** विषय पर दिनांक 04.12. 2015 को कार्यशाला का आयोजन किया गया।

नराकास बैठकों में भागीदारी व सम्मान

- नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, करनाल ने वर्ष 2014–15 के दौरान भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान को राजभाषा (हिन्दी) में उल्लेखनीय कार्य हेतु तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

- नराकास, करनाल की समीक्षा बैठकें 24.06.2015 तथा 18.11.2015 को राष्ट्रीय डेरी अुनसंधान संस्थान, करनाल में आयोजित हुई जिसमें संस्थान का प्रतिनिधित्व डॉ. आर. के. गुप्ता, डॉ. अनुज कुमार एवं श्री जे.के.पाण्डेय ने किया।

भाव बदलने लगे हैं

अब तो एकता के भाव बदलने लगे हैं,
सच में लोगों के अरमान कुचलने लगे हैं,
जिस अखंडता की तारीफ करती है दुनिया,
लोग वतन में उसी को आज चहलने लगे हैं।
नाराज दिलों ने सम्मान लौटाया हैं अब तक,
पहुँची हैं खबर जिसकी आजकल सब तक,
जब से बदला है रुख वतन की सियासत का,
जुबानी फितरतों ने नेता फिसलने लगे हैं।
तालिम देते हैं वतन में जो औरों को अक्सर,
बेकार हो सड़कों पे आजकल टहलने लगे हैं,
खुद ही देते है सफाई सफर की महफिल में,
जिनकी गुस्ताखियों से लोग बहलने लगे हैं।
जिन ख्यालों को लोगों ने बसाया है दिल में,
बस उन्हीं को ही बेहतर लोग मानने लगे हैं,
गैरों को सुधारने को लेते हैं 'आनंद' से ठेका,
खुद गलतियों के सागर में आज तैरने लगे हैं।

रामप्रीत आनंद (एम.जे.)
जवाहर नवोदय, विद्यालय पचपहाड़
झालावाड़, राजस्थान

बेटी की जीवन कथा

खीली थी एक फूल की तरह मैं, बाबुल के आंगन में।
महकती थी खुशबु की तरह, मां के आंचल में।।
नटखट भोली गुड़िया कहलाती थी।
खुद हंसती रहती और सबको हंसाती थी।।
दीदी से सुनती थी परियों की कहानियां।
भैया से लड़ती थी, करती थी शैतानियाँ।
याद आती है वो बचपन की बातें मुझे।
संजो के रखने है ये रिश्ते नाते मुझे।
जिन्होंने मेरी जिन्दगी के पल खुशनुमा बनाये हैं,
वो आज कह रहे मुझसे हम तेरे पराये हैं।
साई तुने ही बेटी को ये गुण सीखाया है।
हर बेटी ने अपनों को पराया कर,
परायों का अपनाया है।
ये कैसा रिश्ता है, जो बेटी ने निभाया है।
बेटी ने अपनों को पराया कर, परायों को अपनाया है।।
बेगाने रिश्तों को अपनाया है मैंने, हर पराये को अपना बनाया है मैंने।
नये रिश्तों में अब घुलने मिलने लगी थी, जो अपने थे उन्हें भुलने लगी थी।
जीवन भर का साथ होगा, आँखों में थे सपना था।
पर इन परायों में, मेरा न कोई अपना था।
कही जलाई गई, तो कहीं सुली से लटकाई गई मै।।
दहेज के लिए, तिल–तिल तड़पाई गई मैं।
और बहुत जुल्म है, जो मुझ पर ढाये जाते हैं।
कुछ ही कह पाती हूं, जुबां से सारे न बताए जाते हैं।
ऐ इंसान तू अपनी इंसानियत कहा भुल आया है, ये कैसी फितरत हो गई तेरी
ये मैंने न तुझे सिखाया है।।
अब मैं नाराज हूँ तुझसे, तुझे श्राप मैं देता हूँ।
जिसे तुने त्यागा, अब उसी का आभाव मैं देता हूँ।
कन्या को इंसान ने त्यागा, उसी का आभाव मैं देता हूँ।

नीशू राघव
शोध सहायक, जैव प्रौद्योगिकी
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

सब्र वतन का

वतन के सब्र को अब क्या हो गया है,
आज की इंसानियत को क्या हो गया है,
दौलत कमाने की फितरत हुई है जब से
जाने इंसान आज का कहाँ खो गया है?

संसद में जिस मुद्दे की होती है सियासत,
शालीनता बेचारी आज वहाँ भी रो रही है,
फिक्रमंद, वतन के आसन लगाए बैठे हैं,
शायद गहरी नींद में दिमाग सो गया है।

ईमान बेचता है कलमकार सियासियों को,
बेईमान भेजता है, हर बार आतंकियों को,
चुपचाप झेलती है धरती वतन की हरदम
देश के पहरेदारों को अब क्या हो गया है?

रोज कब्र खोदते हैं यूँ ही मजहबी कारनामे,
तकदीर की अभागी जनता बेबस पड़ी हुई है,
सड़ी है जिनकी जिंदगी, अपने ही वतन में,
कानूनी नजर को 'आनंद' अब क्या हो गया है?

रामप्रीत आनंद
जवाहर नवोदय, विद्यालय पचपहाड़
झालावाड़, राजस्थान

हरियाली

हरियाली से होकर आता यह रास्ता खुशहाली का
ऋणी रहेगा जीवन सदा ही इसकी छटा निराली का
हरितीमा से निकली वायु ऊर्जावर्धक होती है
आयु वृद्धि में यह वायु दिशा दिखाती ज्योति है
होता है आभास इसी से जीवन में दीवाली का
प्रदूषण से मुक्ति पाना लक्ष्य बने हितकारी सा
ऐसे में फिर नहीं ठहरता कोप किसी महामारी का
जड़ चेतन का पोषण करना, निश्चय है वनमली का
पौधा रोपण, जल संरक्षण, दैहिक प्राण–प्रदाता है
हरे भरे परिवेश के सर्जक, भवसागर के त्राता है
आगे भी अभियान चलाना ऐसे ही प्रणाली का
ऋषि कृषि की परम्परा ही कुंजी है समृद्धि की
इससे बढ़कर और नहीं है, रीति रिद्धि–सिद्धि की
जीवन जनों में प्राण फूँकता ज्ञान इसी बलशाली का
प्लास्टिक का उपयोग देश में अब दृढ़ता से वर्जित हो
ध्वनि प्रदूषण से भी ऐसा, स्वार्थ ना कोई अर्जित हो
पर्यावरण के शोधन से ही एकता और कंगाली का
देश हरि का हरियाणा तो हरियाली की खान है
दूध दही का खाना इसका जीव जनो की जान है
इसका पग–पग सोना उगले धरती कर्मों वाली का
हरियाली से होकर जाता यह रास्ता खुशहाली का

भारती अनेजा
शोध सहायक, जैव प्रौद्योगिकी
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ में सेहूँ की पहचान

आओ जानो गेहूँ में 'सेहूँ' की पहचान
कई रोग गेहूँ में मेरी खास पहचान
सूत्रकृमि से पैदा होती 'इयर कॉकल' है नाम।

कई नामों से मैं जानी जाती
चाहे कहलो–सीडगॉल, गेगला, ममनी
'सेहूँ' धानक और ईलायचीदाना।

सूत्रकृमि 'एंग्विना ट्रिटिसाई' द्वारा पैदा होती
बड़े शौक से पूरे देश से पाई जाती
यही नहीं जीवाणु से मिल बैठ 'बीमारी टूण्डु' को भी साथ लाती।

बड़े शौक से गेगला बोला
आता हूँ मैं उन्ही जगहों पर
जहां न होती कृषि की उन्नत तकनीक।

बुरी प्रभावित क्षेत्रों में देता हूँ मैं खूब सजा
80 प्रतिशत हानि देकर
करता हूँ मैं खूब मजा

रंग है मेरा भूरा–काला
सूत्रकृमि को देता हूँ मैं खूब शरण
हजारों में होती संख्या वर्षों 32 जिंदा रहता बल पे उनकी।

यदि मिल जाए मुझे मृदा तापक्रम
15°से थोड़ी या फिर नीचे, मिले 51 की वातरंध्र
20 प्रतिशत आर्द्रता कमी।

तोड़ गेगले को कर विकास की अवस्था दूसरी
करता हूँ पोषक फसलों पर
अविलम्ब आक्रमण तभी।

आओ जानो हानि की इतिहास अभी
वर्ष 92 के समय काल में
आया था मैं मुंगेर, नवादा और गया।

आई जब 97 में बारी, दूसरी बार हमारी
कहां बची दरभंगा और मधुबनी।

दशक 99 में मैंने भारी मार मचाई
मध्य प्रदेश के पवई तहसील में
जमके अपना पांव फैलाई।

चर्चे हुए थे खूब बड़े–बड़े
छतरपुर, सतना और टीकमगढ़ से
हुई अकड़ बोला गेगले ने क्यों विचलित होते हो हमसे

आओ जानो लक्षणों को मेरे
पत्तियों का ऐंठना, तुड़ना, मुड़ना, कुंचित हो जाना।
समझो हो गया मेरा पक्का आना।

करता हूँ मै छोटा प्रभावित फसलों का
और तनों में 20 दिनों के भीतर सूजन
दानो के जगहों पे गेगले को रखता हूँ उपर

इस रोग का उत्पन्न होना
या फिर आना अपने आप में
पिछड़ी कृषि का है सूचक होना।

तभी अकड़कर गेगला बोला।
जाहिर है बीजों को
कई वर्षों तक नही बदलना।

आओ जानो बचना हमसे
संक्रमित बीज को पहले साफ करो।
प्रभावित बीज की कर पहचान, तभी खेत में बोया करो।

कद है मेरा छोटा
रंग में थोड़ा भूरा–काला
छलनी से छन जाता हूँ मैं जल्दी

वजन मेरी है थोड़ी हल्की
जब डालागे पानी में मुझको
तैर हट जाता हूँ मै जल्दी।

2–5 प्रतिशत घोल बनाकर
नमक–पानी का मुझको इसमें खूब–डुबाओ।

हल्का होकर पल में, मैं उपर आ जाऊँ
झट पानी के साथ अलग हो जाऊँ।

अगर मानोगे मेरी बात ईमान से
कर उपचारित बीजों को सही जांच पड़ताल से
होगे उन्नत और समृद्ध खेती–खलिहान से।

पंकज कुमार सिंह
(वरिष्ठ शोध अध्येता), फसल सुरक्षा
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्यार का बुखार

निकला था मैं घर से ढूंढने को रोजगार,
जल्दी ही मिल गई नौकरी और मिलने लगे कुछ नोट हजार,
करते थे काम लगन से, जितना करते हैं मिलके हाथ चार,
फिर न जाने कब और कैसे हमें चढ़ गया प्यार का बुखार।

देखा उसे जब पहली बार,
फिर क्या था बस इंतजार इंतजार,
नहीं थी हिम्मत की करु इजहार,
ये मेरा इश्क–ए–एतबार।

पर आलम ये हुआ कि दोस्तों,
मौके की तलाश में ही रह गया मेरा दिल बेकरार,
और आखिर में जाके पता चला,
कि तुम तो भई ठहरे किसी और का ही प्यार।

फिर भी हमने न मानी थी हार,
ठान लिया था कि ढूंढ के ही रहेगें नया दिलदार,
इतना सोचा ही था कि वही से गुजरी चमचमाती कार,
उतरी उसमें से एक अपसरा पहने पटियाला कुर्ता सलवार।

देखा हमनें, देखा उसने, बस होने ही वाली थी आँखे चार,
लेकिन फिर हुआ वो जो नहीं है बताने को शुभ समाचार,
जब पीछे पीछे उतरा उसका ही छोटा अवतार,
हमारे तो सपने ही हो गए फिर से तार–तार।

फिर भी हमने न मानी थी हार,
ठान लिया था कि ढूंढ के ही रहेंगे नया दिलदार,
अब और न होंगे मायूस, रहेंगें दिल टुटने को तैयार,
न छोड़ेगे ये जिद जब तक उतरेगा नहीं ये प्यार का बुखार।

दीपेन्द्र कुमार
शोध सहायक, जैव प्रौद्योगिकी
भा कृ अनु प–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

के छठे अंक (वर्ष 2014) में

इन तीन आलेखों को उत्कृष्ट पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

1. गेहूँ की सतही बुआईः लाभकारी एवं पर्यावरण हितैषी तकनीक

जे.के. पाण्डेय, अनुज कुमार, रणधीर सिंह, आर.एस. छोकर एवं आर.के. शर्मा

2. जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में खेती

सीमा सेपट व नवल सेपट

3. रबी फसलों में समन्वित खरपतवार प्रबंधन

एस आर वर्मा, राजपाल मीना, हेमराज गुर्जर एवं तारेश कुमार झा

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा का आठवाँ अंक (वर्ष 2016) ''हाइटेक एग्रीकल्चर'' पर आधारित होगा।

कृपया अपने लेख 31 जुलाई 2016 तक anujp2001@gmail.com/ dwrrajbhasha@gmail.com **पर** Kruti Dev 10/16 **में तथा फोटो** JPEG **प्रारूप में भेजें।**

Design & Print :
SHRIKOSHI # 9812053552

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

पोस्ट बॉक्स-158, अग्रसेन मार्ग, करनाल - 132001

दूरभाष : 0184.2267490 फैक्स : 0184-2267390 वेबसाईट : **www.dwr.in**